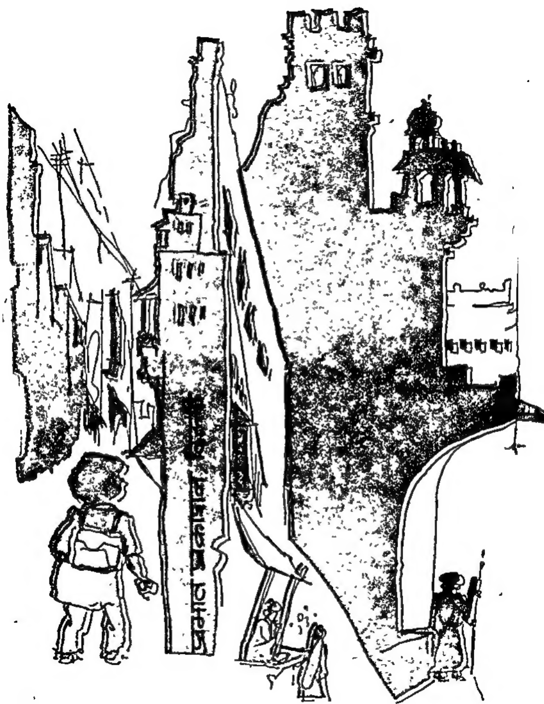


आंगन गलियां चौबारे

रामकुमार 'भ्रमर'

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६
संस्करण : प्रथम, १९८२

मूल्य : चालीस रुपये
मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

GALIYAN *(novel) by* Ramkumar Bhramar Rs. 40.00

अभिन्नतम मित्र
राजेन्द्रसिंह कुशवाह को
आदर और प्यार के साथ···

'आंगन' और 'चौबारे' के बीच...

जीवन अपने आपमे सबसे बड़ा उपन्यास है। उसके हर क्षण मे सुख, दुख, संवेदना और सत्यासत्य की इतनी तीव्र अनुभूति होती है कि किसी क्षण को बटोरकर ही एक समूची कृति बन सकती है। और इस दृष्टि से ये तीन खड (आगन, गलिया, चौबारे) बहुत कम हैं। एक प्रयत्न भर कहे जा सकते है, जहा अजित की उम्र के कुछ वर्ष समेटे गये हैं—वे भी काल-खडों मे। तीनों ही खड क्रमशः चौबीस वर्षों का एक दौर है, जब कस्बेनुमा शहर का अजित समय-खंड के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलाव को झेलता है। इस उम्र में वह न सिर्फ सामाजिक बदलाव को कौतूहल से देखता-भोगता है, बल्कि उससे प्रभावित हो रही अपनी और दूसरों की मानसिकता से भी गुजरता है। यह मानसिकता और परिवर्तन व्यक्ति भर का नही है—उस वातावरण का भी है, जिसे उसकी समझ से परे बैठी राजनीति अजाने ही जनम रही है।

स्वतन्त्रता के बाद किशोर-वयस् अजित राजनीतिक परिवर्तन से *प्रभावित आर्थिक जकड़न को महसूस करना शुरू करता है*—जिसने परिवार, मूल्यों और व्यवहार की समूची सामाजिकता के ढाचे को लडखडाना शुरू कर दिया। 'आंगन' के बाद 'गलिया' उस समय की एक तस्वीर भर है। इस तस्वीर में रंग कितने हल्के या गाढ़े हैं—यह पाठक पर छोडता हूं।

—रामकुमार भ्रमर

५३/१४, रामजस रोड,
करौलबाग, नयी दिल्ली-५

प्रथम खंड (आंगन) की भूमिका

'देश, काल, समाज और जीवन को देखने-पहचानने का सबसे बढ़िया तरीका है—निरक्षर शिक्षितों और साक्षर अशिक्षितों के बीच एक साथ जीना।...'

उपरोक्त शब्द किस मित्र से सुने है या कहा पढ़े है—कह नही सकता, पर इतना जानता हूं कि मैंने पिछले लगभग बीस वर्ष उक्त दो पंक्तियों पर ही जिये है और लेखक के नाते निरंतर महसूस करता रहा हूं कि मुझे इससे लेखन मे बहुत शक्ति, सहयोग और नये-नये विषय मिले है।

आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक स्तरों पर विभिन्न संघर्षों या सुविधाओं मे जीने वाले अनेकानेक लोग मेरे मित्र है, पर व्यक्ति से सहज व्यक्ति स्वर पर भेंट करके मुझे जितना लिखने के लिए मिला है और जितना समझने के लिए मिला है—पुस्तकों या लेखक मित्रो से नही।

समाज, जीवन और देश-काल को देखने-समझने मे मुझे स्वयं को देखने और अपने बारे मे ईमानदारी से कह पाने की प्रेरणा और शक्ति भी मिली है। और यह शक्ति मैंने उस समय महसूस की जब इस उपन्यास का जन्म मेरे भीतर हुआ। जो देखा, उससे कही ज्यादा जो पिछले तीन दशकों में विभिन्न हैसियतों, स्तरों और पात्रों के बीच रहकर जानने को मिला—वही इस उपन्यास की धरती है।

स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के तुरंत बाद, जिस उम्र, जिस सोच और जिस जिज्ञासु-भाव से मैं स्वयं परिवर्तनों को देखता, भोगता रहा हूं और मेरे गिर्द के मेरे जाने-पहचाने पात्रों ने भोगा है—वही सब प्रस्तुत कृति की आत्मा भी है, कथानक भी। सुनहरी, मोठे बुआ, सहोद्रा, रेशमा,

केशर मां, जया, मिन्नी, चन्दनसहाय सभी पात्र जितने जाने-पहचाने अजित के लिए हैं—उतने ही जाने-पहचाने मेरे लिए भी है। मैंने कोशिश की है कि वे सारे परिवर्तन इसमें उसी रूप में प्रस्तुत हों, जिस रूप में स्वतंत्रता के बाद मेरे देश के औसत कस्बों या छोटे नगरों में हुए हैं। कपड़े, वाहन, मकानों के डिजाइन, आसनों की जगह आयी डायनिंग-टेबलों के बावजूद जिस विशिष्ट मानसिक धरातल पर आज तीन दशक बाद के भारतीय नगर-महानगर का आदमी जीता है—वह उपन्यास में परिलक्षित हो—यह मेरा प्रयत्न रहा है।

सामान्य मानवीय गुण-दोषों के साथ-साथ पात्र की अपनी मानसिकता के अनुसार उसके द्वन्द्व का चित्रण हो सके और उसमें किसी तरह लेखकीय मानसिकता और बौद्धिकता भाषा पर हावी न हो, यह भी मैंने कोशिश की है और यथाशक्ति साहस बटोरता रहा हूं कि जो जैसा है, उसी तरह रह सके। उस पर आदर्श का मुखौटा ओढ़े हुए व्यक्ति, भाषा या थोथा आदर्शवादी विचार हावी न हो जाये।

मैं स्वयं केवल लेखक या समाज-जन्तु ही नहीं, व्यक्ति-स्तर पर भी विभिन्न स्थितियों में गुजरा हूं, जिया हूं, जीवित मैंने अपने आपको किसी पल पति-रूप में जिम्मेदार महसूस किया है, किसी पल पुरुष रूप में, किसी पल महज एक ऐसे आदमी के नाते जिसके माथे पर एक पूरे परिवार का बोझ है और किसी पल अकेले आदमी के नाते जो इस भ्रष्ट व्यवस्था, ढोंगी आदर्शवादियों और भारी भीड़ के बीच अपने वांछित अधिकार और प्राप्तव्य को न पाकर कुंठित भी होता है, विद्रोही भी होता है और लाचार भी होता है। और मुझे लगता है कि इन समूची स्थितियों के साथ जुड़े रहकर ईमानदारी से यदि लिखा जायेगा तो व्यक्ति, समाज, देश विभिन्न स्तरों पर जूझते सही आदमी की तसवीर खड़ी होगी। शालीनता, सौजन्य और भद्रता का नाम लेकर धोखेबाजी से भरी स्थितियों, भाषा, कथानक, नारों और तथाकथित कृत्रिम राजनीतिक सांस्कृतिक कल्पनाओं की सृष्टि भले हो जाये—सत्य और नीर-क्षीर की शाश्वत कला नहीं उभर सकती। यदि ऐसा कुछ किया जाता है और किया जा रहा है तो तो वह एक झूठे आदमी की रचना है। झूठ ने कभी किसी व्यक्ति और समाज को चेतना

नहीं दी—गलतफहमियों और अवास्तविकता के कर्महीन अंधेरे भविष्य में भले फेंक दिया हो। एक ऐसी हिन्दी भावुक फिल्म जिसमे भावना, त्याग, तपस्या, आदर्श, कुरबानी आदि-आदि फार्मूलों की भीड़ जुटायी जाये, मेरा लेखकीय मिशन नही है।

और मैं मानता हूं कि जो व्यक्ति, विचार, प्रचार और आधार इस तरह के 'झूठे और कल्पित आदमी' की रचना करता है—वह समाज और देश सापेक्ष्य नही हो सकता। मेरे विचार मे वह केवल तात्कालिक आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक उपलब्धियों को पाने का माध्यम-भर है, इससे अधिक कुछ नही।

मनुष्य की शाश्वत सत्-शक्तियों या मूल्यों की तरह ही मानवीय दोष भी शाश्वत हैं। केवल सद् की शाश्वतता यदि मान ली जाये तो ससार-चक्र पाप और अपराध से मुक्त होकर मानवीय ही नही रह जायेगा। यह संसार है, मानव है, इसलिए गुण भी है, दोष भी। उसी तरह जिस तरह शरीर है और उसके शरीर-सुख है, अतः शरीर-दोष, दुख-व्याधियां भी उसी तरह अस्तित्व मे है, जिस तरह सुख है। और किसी भी लेखक या कलाकार का यह पवित्र धर्म है कि वह समय सत्य का चित्रण-निरूपण करे। समय-सत्य का निरूपण निरंतर चली आयी मानव सभ्यता की प्रगति का अनवरत क्रम है। एक वैज्ञानिक खोज का सिलसिला। कोई भी वैज्ञानिक खोज विना विरोधी पहलू के नही होती। किसी भी पाजिटिव को बिना निगेटिव के नहीं बनाया जा सकता। सत्य की पहचान असत्य को जतलाये वगैर नहीं हो सकती। रावण के बिना राम, कंस के बिना कृष्ण, कौरवों के बिना पाडव, या असत् के बिना सत् की स्थापना, कल्पना महज खुद और समाज से धोखा देते है। सत्य की स्थापना कलाधर्म है, पर यह कलाधर्म तभी निर्वाह किया जा सकता है, जब सत्यासत्य का चित्रण किया जाये।

इस देश मे ही क्यो, समूचे ससार और मानव-सभ्यता के इतिहास में ढोंगियो को पूजने की परम्परा रही है। साहित्य, राजनीति और समाज-क्षेत्र से लेकर आर्थिक और धार्मिक स्तर पर भी यही होता है और इसके साथ यह भी होता रहा है कि कटु सत्य के साथ विवेचित सही मूल्यों की

ओर बढ़ने वाले व्यक्तियों का बहुविधि शोषण, अवमानना यहां तक कि साक्षर अशिक्षितो से शिक्षोपदेश भी सुनने पड़े है —विभिन्न स्तरों पर क्षति भी उठानी पडी है। पर यह क्रम निरतर है, रहा है, रहेगा···असल मे यह भी सत्-असत् के कभी न खत्म होने वाले संघर्ष की अन्तहीन महागाथा है।

इन विचारों पर ही इस उपन्यास की रचना हुई है और इसका हर पात्र अपने वर्ग, स्थितियों और क्षेत्रों में वही सामान्य मानव है जो गुण-दोष का पुतला है। वह ढोंगियो के उपदेश का उद्धरण नही।

दस वर्ष पूर्व जब मेरा पहला वृहद् उपन्यास 'कच्ची-पक्की दीवारें' प्रकाशित हुआ तो अनेक पण्डित बन्धुओं और समीक्षकों ने न सिर्फ उसे अश्लील करार दे दिया था, वल्कि अखवारों मे भी खासी भाषणवाजियां की थी, फिर जब वही उपन्यास 'अखिल भारतीय प्रेमचन्द पुरस्कार' से सम्मानित हो गया तो सहसा उन्होंने भूल-सुधार कर लिया कि पहली बार मे समझ नहीं आया। अतः मैं इस समझ के फेर के बारे मे आश्वस्त हूं।

देशी-विदेशी विचारकों, लेखकों और उपदेशकों के उद्धरण देकर अपने लेखकीय विचारों को 'सही' का जामा पहनाना भी मुझे नहीं आता अतः जो कुछ मैं लिखता हूं, वह मेरे निज के सोचे-समझे या पढ़े-लिखे, देखे-भोगे का निष्कर्ष है। वह मेरा निजी है, अतः उससे मेरे किसी पाठक मित्र को कष्ट हो तो मैं उनका अपराधी हूं और यदि सुख मिले तो उस श्रेय का अधिकार भी मेरा और सिर्फ मेरा ही है।

—रामकुमार भ्रमर

बहुत पहले एक पेंटिंग देखी थी। अनगिन स्त्री-पुरुषों की एक भीड़ आकाश की ओर बाहें पसारे, हथेलियां फैलाए माग रही हैं—न्याय, दया, क्षमा, सुरक्षा···

पर जया मौसी ने मांगा था सिर्फ न्याय। कहा था, 'अगर कभी लिखना ही हो, तो मेरे साथ न्याय करना। मेरे साथ न्याय न कर सका तो न सुरेश के साथ कर पाएगा, न अपने साथ···'

अजित के पास तो दया, क्षमा और सुरक्षा देने की शक्ति नहीं इसीलिए उससे सिर्फ न्याय ही मागा जा सकता था। वही चाहा था उन्होंने। पीक-भरे, बदबूदार जीने से चढ़कर जो कोठा मिलता है, उसीमें न्याय मागा गया था, पर जब तक पूरी बात का पता न हो, तब तक कोई किसी के साथ कैसे न्याय कर सकता है ? फिर जया मौसी के बारे में तो ठीक तरह कुछ भी पता नहीं था उसे। पते के नाम पर इतना कि बचपन की जया मौसी को एक दिन अचानक ही अजित ने अपनी जवान उम्र में कोठे पर देखा था। नाम चन्दारानी। कहानी के नाम पर सिर्फ इतना मालूम कि अपनी मासूम उम्र में जिस मुहबोली मौसी जया के सीने से लगकर जीवन देखना शुरू किया था, वही जया एक दिन गली से भाग गयी थी सुरेश जोशी नाम के एक युवक के साथ···उसके बाद होश सभालने पर उसे दिल्ली के जी० बी० रोड की चन्दारानी पाया···कुल कहानी इतनी···इस पर से न्याय कर पाना असंभव !

न-न; कुछ भूल रहा है अजित। कहानी का एक पंख नैनीताल में भी है। पब्लिक स्कूल में। तुली नाम की एक छोटी-सी लड़की के पास। रज्जि-

गलियां ।

स्टर में मां के नाम की जगह जया लिखा और बाप के नाम की जगह सुरेश जोशी नहीं है—कुछ और !···तब सुरेश जोशी कहां गया ?···जानने की सहज उत्कंठा ने बार-बार कोठे के चक्कर खिलाने शुरू कर दिए थे···तुली और जया के रिश्ते को जान ही न पाता, अगर घूमने के लिए नैनीताल पहुंचे अजीत की बच्ची ने तस्वीर न दिखाई होती। बाद में कोठे के कितने चक्कर लिए और कितना जान पाया ?

नहीं के बराबर···कहानी हर बार तीसरे पैग पर आकर रुकने लगती थी···उस दिन रुक गयी थी और न्याय की मांग पहले आ गिरी !

कहानी से भटककर अनायास ही सोचने लगा था अजित। कर सकेगा न्याय ? लगा था कि बचकाना मांग कर रही है जया—चन्दारानी—रजिस्टर में दर्ज तुली की मां ! पर तुरन्त लगा था—शायद ठीक ही है। लेखन-कर्म और न्याय-कर्म में अन्तर कितना है ? शायद बहुत कम। न्यायालय के बोर्ड पर आकर जब न्यायाधीश सुनने, समझने और निर्णय करने बैठते हैं तो काला लबादा ओढ़े रहते हैं। क्या अर्थ है—यह तो पता नहीं, पर अजित को लगता है कि वह काला रंग ही सत्यासत्य के विश्लेषण का आरंभ है। जो अपने सीने से सत्य-सूर्य को जन्म देता है। बिना अन्धेरे के सूर्य-जन्म कठिन। सदा अज्ञात से ही ज्ञात की खोज हुई है—यही चिरन्तन सत्य।

इसलिए लेखक और न्यायाधीश में बहुत कम अन्तर। नहीं के बराबर। केवल इतना कि सपाट कागज पर शब्दांकन से पूर्व उसे भी कथा-पात्र को पूरी तरह सुनना-समझना पड़ता है···हर पात्र अपने गुण-दोषों के साथ न्याय मांगता हुआ उसके सामने मौजूद होता है। उसे न्याय देना लेखक का धर्म। यह न कर पाने पर लेखन-कर्म कलंकित होगा।

जया मौसी की मांग गलत नहीं। अगर न्याय न कर पाया तो कलंक-मय। बहुत सम्हलकर सब कुछ लिखना होगा। लिखने से पहले सब कुछ उसी भाव और तटस्थता के साथ सुनना भी होगा, जिस भाव से न्यायाधीश फरियादी और अपराधी की बातों को सुनता है।

न्याय की मांग सुनकर अजित की निगाहें उनके चेहरे पर ठहरी रह गई थीं। फरियादी हैं जया मौसी। कहती है—'न्याय दो ···!' और अपने लिए ही क्यों, सुरेश के लिए भी उन्होंने न्याय मांगा है !

अजित को न्याय देना होगा। केवल जया मौसी को ही क्यों, जब लिखने बैठ गया है तो सबको देना होगा। उन सबको, जो कागज पर उतरेंगे। वे सब जो इस वृहद् उपन्यास के पात्र है···लगता है कि सब अजित के सामने बाँहें पसारे हुए है—हथेलियां फैली हुई···'न्याय! न्याय···!'

न्याय-कर्म सहज नही। बहुत मथना होगा अपने-आपको। बहुत झेलना भी पड़ेगा। इस कारण तो कुछ ज्यादा ही झेलना होगा, क्योंकि अजित स्वय एक पात्र है। समूची कथा-सरिता की एक चुल्लू जलधारा।

कहां मालूम था कि जया मौसी पर लिखते हुए उस समूची कथासरिता को बटोरना होगा, जो अब से बरसों पहले शहर नामधारी कस्बे की गली से मानव-सागर मे जुड़ने चली थी? अनगिनत जलधाराओं के इस सयुक्त अभियान को शब्दांकित कर पाना आसान है क्या?···सरिता से एक चुल्लू जया मौसी की कहानी उठाओ तो दूसरा चुल्लू छूट जाता है। उसके करीब की जलधारा कब, कितनी दूर चली गई, पता ही नही पडता। साथ बहती हुई हर जलधारा से एक-एक चुल्लू लिए कहानी बढती है। यह असामान्य कष्ट वही भोगते हैं, जो वृहद् उपन्यासो की रचना करते है। तीव्रगति से बहती जलधाराओं से चुल्लू-चुल्लू पानी बटोरकर संसार-चक्र का एक छोटा-सा कोष रच पाने की चेष्टा ही वड़े उपन्यास का रचना-प्रयत्न है।

अजित को यही प्रयत्न करना होगा। वह तटस्थता और निस्पृहता भी सजोये रहनी होगी जो कथा विश्लेषण करते, गुण-दोषों की विवेचना करते हुए न्यायाधीश में होती है।

···कलंक न लगे कि भागी हुई जया मौसी के साथ न्याय हो पाया और भगाने वाले सुरेश जोशी के साथ अन्याय हो गया। और सिर्फ ये दो ही क्यों, दर्पनिधा, भी है—उस दिन जब अजीत ने चीखलाकर कहा था—'रोती क्यो है? जी होता है कि तुझमें एक चाटा दूं···!'

'हां, दे !···मार मुझे···भइया ने भी मारा है—तू भी मार !' वह रोती-बिलखती एकदम उठ पड़ी थी —'मां नही है न मेरी' 'फिर मैं पढ़ी-लिखी भी नही हूं। चलना आता नही है मुझे। बात करने का भी शऊर नही—मैं गुण को क्या समझू ? फिर मुझे लड़की की तरियां रहना भी तो नही आता ? मेरे मारे सारा घर परेशान है ! गुणी लड़का खोज लिया है चन्दन भइया ने—औरत या मर्द का रूप-रंग कोई हमेशा रहता है क्या ? ···' वह हिचकियां भर-भरकर कहे गई थी—'ये शरीर तो माटी है। एक न एक दिन मिटेगा ही···'

बटनिया को जैसे-तैसे थाम पाया था वह। डर गया था।···और इतना ही क्यों अजीत तो कायर निकला था। बटनिया के विश्वास को छोड़कर चला गया···

पर अजीत न जाता तो क्या करता ?···बटनिया ने कितने स्तरों पर तो डरा दिया था उसे ?···

क्या यही सच है न्याय के लिए ?···अजीत बटनिया से डरा था या आपसे ?

जब न्याय ही करना है तो वह सब लिखना होगा। केशर मां, सहोद्रा, सुरगो के बारे मे सब ! वह सब भी जो चुल्लू-चुल्लू इस कथासरिता से बटोरा गया है। तब बनेगा यह छोटा-सा सागर।

पर सरिता में जल की कितनी सतहें तो होती है जो तल के अवरोधों और समतलता पर से बहती हैं···? उसी क्रम मे उन्हे भी बटोरना होगा ·· कुछ जल अवरोधहीन बहता ही चला जाता है, और उसीके साथ वाली जल की एक सतह अनायास ही तल के किसी अवरोध को पाकर धीमी हो जाती है। अजाने ही दोनों के बीच एक फासला भी आ जाता है···

सबसे पहले उस अवरोधहीन मुक्त धारा से चुल्लू जुटाने होंगे, जो तेजी से बढ़ती ही चली गयी थी···यही जया मौसी की कथा-धारा···

ये धारा बड़ी तीव्रगति मे बही थी···तूफानी शक्ति से और उस दिन जी० बी० रोड के कोठे पर इस तरह मिली जैसे किसी विशालाकार चट्टान से टकराकर सहस्रों बूंदों में छिटक गई हो ! विस्फोट की तरह !

कैसे हुआ था वह विस्फोट ?···

कांपते, लड़खडाते, जर्जर सुरेश जोशी को सीढ़ियों से लुढकने की चाल मे उतरते पाकर घबराया हुआ अजीत बोला था—'मौसी !···कही···कही वह किसी मोटर या ट्रक से टकरा न जाए ?'

और उपेक्षा से मुस्कराकर सवाल पर सवाल दाग दिया था जया मौसी ने—'सच ?···तुझे लगता है कि जोशी के पास पैर है ?'

स्तब्ध देखता ही रह गया था अजीत।

'नहीं रे !···पैर ही नही है उसके। पैर होते तो इस तरह मिला होता तुझे ?' फिर ह्विस्की के कई घूट उतारने के बाद वह बुदबुदायी थी—'निश्चिंत रह ! ऐसे टकराने का कोई मतलब नहीं होता। टकराते तो वे है, जिनके अपने पैर होते है। उधार के पैर लेकर कही जीवन-यात्रा की जाती है रे ?···'

यही से तो जया मौसी की. वह कहानी फिर से शुरू हुई थी जो गली-पार हो जाने के बाद अजीत को मालूम नहीं रही थी। और यही से वे बहुत-सी कहानियां भी चुल्लू-चुल्लू आ जुड़ी थीं जो गली मे घुट रही थी और जब गली-पार जया मौसी कहानी झेल रही थी, तब गली में अजीत से जुडे लोग भी कहानिया झेल रहे थे ··

पर इस समय जया मौसी की कहानी···

'तुम्हें कितना खोजा था मौसी ?···मास्टरजी खुद पुलिस स्टेशन गए थे। पर उन्होंने कोई मदद नही की। मोठे बुला ने बतलाया था—सारे पुलिसिए सिर्फ नया भविष्य खोजने में लग गए थे—पन्द्रह अगस्त था न उस दिन ?···' अजीत ने उन्हें झकझोर कर ह्विस्की से जगाया था। इसी तरह झकझोरकर कहानी कुरेदनी होगी···

जया मौसी—चन्दारानी—ने घूंट भरा था। पलकें मूदकर बोली थीं—'हा अ्···भविष्य की खोज मे ही मैं निकली थी उस दिन ··सुरेश भी उसीकी खोज में था।···असल मे अजीत, नया कुछ नही था वह ! सब अपना-अपना भविष्य ही तो खोजते हैं—भूत को सहेजे हुए·· भूत को छेड़ने की कोशिश करते हुए···'

अजीत को एकदम जोशी याद हो आया था —'उस दिन ठीक से पहुंच तो गया होगा ना, जहां उसे जाना था ?'

'कौन ?' जया ने पलकें खोलकर सवाल किया था।

'सुरेश जोशी !'

'मुझे नहीं मालूम !' उन्होंने पलकें मूंद ली थीं और जाने क्यों अजीत को लगा था कि नहीं पहुंचा होगा। कैसा तो हो गया था···एकदम नर-कंकाल !···पैर चलने की कोशिश में उछलते हुए लगते थे···

सड़क पर जाते ही किसी ट्रक, टायर, बस ··या थ्रीह्वीलर की चपेट में आ गया होगा। अजीत ने सोचा था। इस शहर में ढेर-ढेर लावारिस लोग रोज जीते-मरते हैं। किसीका, किसीको पता नहीं होता।

पर सोचते हुए चिढ़ हो आई थी अजीत को। सुरेश जोशी, जया मौसी के रहते लावारिस तो नहीं कहा जा सकता। पूछा था —'तुम्हें उसकी बिलकुल चिन्ता नहीं है मौसी ?'

'हूं ?···' उन्होंने सुना-अनसुना कर दिया था।

'मैं सुरेश जोशी के बारे में कह रहा हूं।' अजीत बोला था।

'अच्छा, अू !···तू सुरेश के लिए कह रहा है ?···' उन्होंने आखिरी शब्दों को दबाव के साथ बोलकर फिर से पलकें मूद ली थीं।

और अजीत कल्पना करने लगा था···क्या हुआ होगा ? शायद किसी वाहन के नीचे दबकर उसके बदन का कचूमर निकल गया होगा। पसीना बह निकला था बदन में। खून से सराबोर जोशी खत्म हो गया होगा !··· पर अगले ही पल वह खुद से असहमत हो गया था —मरने को बचा ही क्या है उसमें ? ··खून निकलेगा कहां से ? ··जितना होगा, किसी टायर से ही चिपककर रह गया होगा ! ··एक गहरी सांस लेकर सिटपिटाया हुआ-सा देखने लगा था जया मौसी को। न···कोठे की चन्दारानी को।

जिस सुरेश जोशी को लेकर जया मौसी ने कभी अपने-आपको दाव पर लगा दिया था···अपने दुख-सुख का हर पल जोशी की विश्वास-भरी अजुंलि में उंडेलकर निश्चिन्त हुई थी—उसीके प्रति इस कदर बेरहम होने पाया है उसने ?

आखिर क्यों ?

फिर उसे लगा था कि 'क्यों' की ज़रूरत भी नहीं रह गयी है। उसे सिर्फ़ उस महिला को धिक्कारना होगा?···गालियां बकनी होंगी! वे सारी गालियां, जो आज तक वह अपनी उम्र में सीख-बटोर सका है। यही काफी होगा इस औरत के लिए!···पर बात को जब अगला मोड़ दिया उन्होंने तो अनायास ही अजित को फिर से चुप रह जाना पड़ा था। बोली थी—'···मैं पहले ही कह चुकी हूं कि मैं भी उन बिना पैर वालों से अलग नहीं थी···इसीलिए मैंने उधार के पैर खोजे थे। सोचा था कि जोशी के पैरों पर चलकर गली के नर्क को पार कर जाऊंगी···पर उसके तो अपने ही पैर नहीं थे...बहुत दिन बाद पता चला था रे!···बहुत दिन बाद!' ···एक हिचकी आ गयी थी उन्हें। उन्होंने फिर से पैग बना लिया था···ज़िद करके अजित को जो पैग दिया था—उसमें भी कांपते हाथों ढालने लगी थी। अजित ने टोक दिया था—'न-न, रहने दे मौसी! बहुत हुआ मेरे लिए···'

पर पैग भर ही दिया था उन्होंने। बोली थी, 'उठा!···'

अजित ने कुछ गुस्से से कहा था, 'नहीं।···मैं बेहोश नहीं होना चाहता!'

वह हंस पड़ी थी। नशे में आंखें सुर्ख थीं—बदन तमतमाया हुआ-सा। कहा था, 'होश में रहकर तू कहानी पर क्रोध करने लगेगा। उसका अहसास नहीं कर सकेगा!···और कहानी क्रोध या आंसू की नहीं होती—सिर्फ़···अहसास की होती है···चिन्ता मत कर! एकदम बेहोश नहीं होने दूंगी तुझे।'

चिढ़ उठा था अजित। तिलमिलकर कहा था—'मेरे होश तुम सम्हालोगी जो ख़ुद···' उसकी निगाहें नफ़रत से दीवान पर फैले उनके जिस्म को घूरने लगी थीं। वह साड़ी, जो पिंडलियां पार करके घुटनों तक सरक आयी थी। वह आंचल, जिससे उनके भारी-भारी गोरे स्तन उबलकर लगभग खिलखिलाने लगे। वह तरेट, जो मर्यादा को मुंह चिढ़ाती लग रही थी···

पल-भर के लिए अजित ने अपने भीतर ही भीतर लावा महसूस किया था। झुलसाने—राख कर डालने वाला तपता लावा!···फिर उसी

चन्दारानी में उसने वह जया देखी थी— गली की जया। पढ़ी-लिखी, शालीन, संवेदनशील। पल-पल अपनी उम्र के अहसास में दबती-सिमटती घरेलू लडकी—अजित की सारी उत्तेजना एकदम से चिढ़ और घृणा में बदल गयी थी। जो हुआ था – थूक दे! ··थूक भी देता तो शायद गलत न होता। हर कोठा एक थूकघर ही तो होता है। समाज के किसी वर्ग, जाति, उम्र से कोई परहेज नही। सिर्फ एक थूकदान! सीढियों से लेकर रसोई तक सिर्फ थूक और थूक!

जया मौसी ने उसकी घूमती नजरों पर नजरें घुमायी थीं। न साडी सम्हाली थी, न आंचल। उलटे इठलाकर लोढ़ पर ज्यादा ही लमलेट हो गयी थी। इस तरह कि तरेट और खुल जाए···कहा था, 'सुन!···यह होश-बेहोशी की सीमा रेखाएं मैं कब की पार कर आयी हूं···सब कुछ इतने पीछे छूट गया है कि अब दिखता तक नहीं · और, जो दिखता है उसका अहसास होना बन्द हो गया है···जो कुछ शेष है, सिर्फ दूसरे के अहसास है···तू इस उघडी टाग और नंगी तरेट को देखकर ही इतना बौखला रहा है ना? पर निश्चिन्त रह—यह बेहोशी के कारण नही है और न किसी होश के कारण ही है। यह तो बस है—इसलिए है। इसलिए है कि अब से बरसों पहले, इनके उघडने-दीखने का देखने वालों से अहसास ज्यादा मुझे होता था रे। लाज से मरी-मरी जाती थी मैं पर अब लाज नही है – जो बचा है वह है सिर्फ मरना। मुझे कुछ अहसास नहीं होता—कुच्छ नही होता! जो अहसास होता है, वह खरीदार को होता है। ·· तुझे हो रहा होगा। खरीदने का न होगा तो गुस्से का होगा···पर मुझे कुछ नही! · '

'अच्छा-अच्छा, बहुत हुआ।' अजित ऊबने लगा था। ऊब में ज्यादा क्या था - मालूम नही। शायद यह कि वह अपनी श्रद्धा को लगातार थूक में लिसडता महसूस कर रहा था···जया मौसी से ज्यादा अपनेको ही नहीं सह पा रहा था। बोला—'कहना है तो कहो—वरना मैं चलता हूं···'

सहसा वह स्नेहिल भाव से बोल पड़ी थी, 'ठीक है···तू बैठ मत!··· सुन!···' उन्होंने कुछ घूंट लिए थे। बुदबुदायी थी, 'उस दिन देश भी

आजाद हुआ था ना ?···हम दोनों ने सोचा था—हम भी आजाद हो लें !···उसी शाम को सुरेश जोशी आया था···'

न्याय करना होगा।···जया मौसी के साथ, सुरेश जोशी के साथ··· और···और शायद अपने साथ भी···

और न्याय कर पाना इतना आसान है क्या ? पर, जब यह सब करने ही बैठा है तो सबसे पहले लगता है—अजित ही अपराधी है ! उस दिन जया मौसी के यह पूछने पर कि 'तू मुझसे गुस्सा है रे ?'—अगर अजित ने कह दिया होता कि 'हैं'—तो वह गणित वही ख़त्म हो जाता जो आज इस जया—चन्दारानी का मीजान लेकर उसके लेखक से न्याय माग रहा है ?

पर भोला अजित !···बोला था—'नही मौसी।···मैं—मैं तो गुस्सा ही नही हुआ था तुमपर···'

बस, इसी बहाने उस दिन जया मौसी ने उसे सुरेश वाला ख़त पहुचाने के लिए तैयार कर लिया था···

अब लग रहा है कि वह खत न ले गया होता तो···पर सब व्यर्थ। जिस गणित का मीजान एक बार हो चुका !···कितना वक्त तो बीत गया है ? अब महज उन आकड़ो को—भाग्य पर जड़े जा चुके उन आकड़ों को सिर्फ देखना ही है—नियति। यह देखना ही जया मौसी की कहानी ! हर नियति एक कहानी ही तो होती है।

उस समय चिट्ठी का महत्त्व नही समझा था। सिर्फ इतना समझा था कि यह चिट्ठी सुरेश जोशी के पास पहुंचाने से जया मौसी का दुख कम होगा। इससे भी ज्यादा चिढ़ इस बात पर थी कि वह एक आंख वाले बिसन माथुर···गन्दे···अपढ़···आदमी से जया मौसी की रक्षा कर रहा है अजित। छोटा है, इसलिए किस तरह रक्षा होगी—यह नही जानता।

रणनीति जया मौसी ने ही बनायी है। अजित के लिए यही सुखकर था कि उस रणनीति पर काम कर पा रहा है।

सचमुच रणनीति ही बनायी थी जया मौसी ने। आज, बरसों बाद यह मालूम हुआ है। उसी पत्र के कारण तो सुरेश जोशी पहुंच गया था उनके घर···जया मौसी ने पत्र में यह ख़बर भी दे दी थी कि शाम को कोई नहीं होगा। मिन्नी भी नहीं···वही समय ठीक रहेगा।

बिलकुल ठीक समय था। मायादेवी मिन्नी को साथ लेकर किसी सहेली के यहां गयी थी। अजित को याद है—वड़ी ऊबड़-खाबड़, मोटी-सी सहेली थी उनकी। बस, एक वही। उसीको ज्यादातर देखा था मायादेवी के पास। उसीसे उनकी घुटती। जब-जब मायादेवी के यहां आ जाया करती—उनके कमरे से फुसफुसी हंसियां सुनायी देतीं। कभी-कभी 'हट री !···' 'अरे तेरी कसम !'···'अरे, तू बड़ी बदमाश है !' किस्म की प्यार-भरी झिड़कनें, सवाल आदि उछलते···फिर ठहाका उठता या 'चुप···अरी चुप भी कर !' किस्म की आवाजें आतीं।

तो—किस्सा कोताह यह कि वही अकेली सहेली। उसके साथ माया-देवी घड़ी-चार घड़ी नहीं, कहती थी—'पूरी जिन्दगी बिता सकती हूं !' उसीके घर गयी थी मायादेवी। सुरेश जोशी ने फुसफुसाकर कहा था—'जया, तुम्हारे घर आने में अब डरता हूं। मैं तो हैरान हूं कि तुमने उस···लड़के को—क्या नाम है उसका भला-सा ?···'

'अजित।' जया बोली थी।

'हां !···' सुरेश जोशी कुर्सी में बैठ चुका था, पर उखड़ा हुआ-सा। उसकी निगाहें बार-बार सीढ़ियों वाले दरवाजे पर चली जातीं। किस पल धम्-धम् करती मायादेवी आ पहुंचेंगी···वह और मौत—अविश्वस-नीय थे सुरेश के लिए। सकपकायी आवाज में कहे गया था—'तो,'अजित ने जब मुझे चिट्ठी दी और तुम्हारा बुलावा देखा तो विश्वास ही नहीं हुआ था···'

मुस्करा पड़ी थी जया। कहा था, 'डरो मत। आराम से बैठो। दीदी अब तीन-चार घण्टे तक नहीं आने वाली।'

'गयी कहां हैं ?' सुरेश ने कुछ अविश्वास से सवाल किया था।

'उनकी सहेली है ना··· वही कस्तूरी···'

'अच्छा-अच्छा !···' सुरेश जोशी ने हंसकर कहा था, 'वही—मर्द-औरत दोनों !···'

'छिः !···क्या-क्या बोलते रहते हो तुम। उसे छोड़ो··· ' जया ने कहा था।

'अच्छा, समझो छोड़ दिया !' कस्तूरी का नाम सुनकर सुरेश जोशी भी बहुत निश्चिन्त हो गया था। हाथ बढ़ाकर जया की कलाई थाम ली थी उसने। एक झटके में अपने करीब खींचकर कहा था, 'तुम भी तो बैठो ···'

जया एकदम सिहर गयी थी। झिड़कती हुई-सी बोली, 'क्या करते हो !··· छोड़ो मेरा हाथ' फिर उसने कलाई छुड़ा ली थी जोशी से—कुछ गुस्से से कहा था, 'देखो सुरेश, तुम जानते हो ना, यह सब मुझे पसन्द नहीं है···'

तेवर देखकर एकदम मिनमिना उठा था सुरेश, 'अच्छा-अच्छा, बाबा !···माफ करो। असल में—असल में बात यह है जया, कि तुम्हें अकेली पाता हूं तो···तो पता नहीं क्या हो जाता है मुझे।'

जया ने उत्तर नहीं दिया था। सिर्फ 'चाय लाती हूं' कहकर भीतर चली गयी थी। चाय लेकर लौटी तो जोशी सिगरेट पीता हुआ आराम से कोई फिल्मी गीत गुनगुना रहा था। जया ने चाय दी। वह चुपचाप सिप लेने लगा···सहसा जया ने बहुत धीमी आवाज में कहा था—'वह···वह *बिसम वाली बात करीब-करीब पूरी हो चुकी है—मालूम है ना ?'*

'हूं !···' सुरेश जोशी ने जैसे बोलने के लिए बोला था, फिर चुपचाप घूंट सिप करता रहा···

'मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता।' जया ने फिर से बुदबुदाकर कहा था।

सुरेश ने आखिरी सिप लिया और प्याला टेबल पर सरकाकर बोला, 'तुम्हारी समझ में कभी कुछ नहीं आएगा।'

जया के चेहरे की उदासी

बोली थी, "तुम···तुम समझते ॰

हमारा ये समाज···नहीं-नहीं, ऐसा नही हो सकता !'

सुरेश जोशी ने लापरवाही से सिगरेट जलायी और तीली कमरे में उछालते हुए बोला—'···तो कुछ भी नही हो सकता !' उसकी आवाज मे अचानक ही एक चाकू-जैसी धार पैदा हो गयी थी। कश खीचकर बड़-बड़ाया था—'तुम्हारा लड़की होना भी सच है। समाज भी सच है।··· और-और वह विशन भी सच है। तब···तब अगर कुछ झूठ बचता है तो वह मैं हू···या, या मेरा आइडिया है—बस !'

जया की आखें छलछला आयी थी, 'तुम—तुम तो गुस्सा हो गए ?'

'तो मैं क्या करू ?···रोज एक ट्रेजिडी सीन सुना देती हो। मगर याद रखो जया, मैं दिलीपकुमार तो होने से रहा। मैं सुरेश जोशी हू और रहूगा। जो रास्ता है, वह बतला चुका हू। अब बार-बार मैं वही कुछ कहता रहू और तुम वही कुछ सुनाती रहो—इसमें टाइम खराब करने की कोई तुक नही है।'

'मगर यह भी तो हो सकता है कि हम लोग यहा—इसी शहर मे···' जया आगे बोल नही सकी थी। लगा था कि अगले शब्द ठंड की एक सिहरन बनकर जिस्म के पोर-पोर मे घुल गए है।

पर सुरेश जोशी ने वही से बात पकड ली, 'इस शहर मे शादी करना तो दूर—ऐसी कोशिश तक मुझमें जूते पडवा सकती है !···और-और क्या तुम समझती हो—यह सब इतना आसान है ?···जरा-सी जगह है। आदमी छीके तो बगल के बाजार में जुकाम फैल जाता है और तुम···तुम हो कि···' झुझलाकर सुरेश जोशी ने बात आधी छोड दी। एकदम बडबडाने लगा था—'अब तुम्हे कैसे समझाऊ ?···मैं तो थकने लगा हूं !'

'इस—इसका मतलब है कि हमे···हमे···'

'जी हा !' सुरेश ने मर्दाना अधिकार के साथ कहा था, 'इसका मतलब हर बार की तरह एक ही है कि हमे यहां से निकल चलना होगा···किसी और अजनबी शहर में। वहां जाकर आगे सोचा जा सकता है···मेरा—मेरा मतलब है कि बहुत कुछ किया जा सकता है।'

'पर—पर तुम्हें मालूम है ना कि यहां तुम्हारे पास एक काम है।

अच्छी-खासी जगह पर लगे हुए हो···' जया के स्वर में चिन्ता थी।

'पी० डब्ल्यू० डी० का एल० डी० सी० होना कोई काम है?···' एकदम बौखला पड़ा था सुरेश—'सारे डिपार्टमेंट का घरजवाई होता है—समझी!·· दो-दो टके के बाहरी लोग···ठेकेदार, ओवरसियर भी—'कैसे हो? ठीक चल रहा है ना?' कहकर रहम थूकते चले जाते हैं।··· तुम क्या समझती हो अगर भाग में ये कुत्ताघसीटी लिखी हुई है तो बाहर नहीं मिलेगी?·· जरूर मिलेगी! मुझे इस सबकी चिन्ता नहीं। तुम अपना दिल पुख्ता कर लो!'

जया उसका चेहरा देखती रही थी। वह भी सिगरेट के कश लेता रहा था। सहसा दोनों के बीच एक चुप आ बैठा था। थोड़ी देर बाद जया ने कहा था, 'ठीक है, मगर···'

सुरेश ने उसे देखा।

'तुमने कहा था कि कुछ पैसा-वैसा···'

'वह तो करना ही होगा।' सुरेश ने एकदम जवाब दिया था, 'बाहर जाने का मतलब है कदम-कदम पर पैसा···मेरे पास कुछ होता तो सब कुछ साथ ले लेता, पर तुम अच्छी तरह जानती हो कि पिछले एक साल में दो बार बम्बई जा चुका हूं—सब···'

'मुझे मालूम है।' जया ने कहा था—फिर वह सोचने लगी थी कि क्या ऐसा करना ठीक होगा?···

एक बार नहीं—हजार बार सोच चुकी थी। हमेशा यही कुछ सोचती थी। किसी भी बार इतना साहस नहीं जुटा सकी थी कि घर से भाग निकले ··पर जिस तेजी से बिशन का रिश्ता करीब बढ़ा आ रहा था—जया को लगा था अब इस जलजले से बचने की और कोई राह नहीं है। शायद सुरेश जोशी के साथ भागना ही होगा। असल में जायेगी पर लोग कहेंगे भागी है और एक बार फिर से सोचने लगी थी वह। सुरेश जोशी ने ऊबते हुए कहा था, 'भई, फायनल करो! बहुत हो चुका। तुम्हें चाहता हूं, तुमपर विश्वास कर करता हूं—यही शायद मेरा दोष है···'

'तब क्या कहते हो···'

'तब क्या कहूं?' सुरेश जैसे फूट पड़ा था अचानक—भीतर का ढेर-

सा तब वह निकला था—'रोज-रोज तुम्हें लेकर ही सोचता हुआ सो जाता हूं, फिर तुम सामने खड़ी होती हो।···वही हां-ना में उलझा हुआ चेहरा। मैं तो किसी भी बार, कुछ भी नहीं कर सका। करूंगा भी क्या, जब तुममें ही साहस नहीं है। एक दिन यही मलाल रहेगा कि···कि मैं मूर्ख था! · प्रेम सामाजिक कायरता के पैरों से नहीं चलता। विश्वास और निर्भीकता से चलता है।···देख रहा हू जया कि वह सब तुममें नहीं है।'

जया ने भी कह देना चाहा था—'गलत समझा है तुमने!—जिसे तुम कायरता कह रहे हो—वह सामाजिक मर्यादा भी तो हो सकती है।' मगर बोली नहीं थी। सुरेश को अच्छी तरह समझ-जान चुकी थी। तब यही कुछ खयाल था जया का। वह तर्कहीन होकर बौखला जाता है।

'बोलो, क्या बोलती हो?···' सुरेश जैसे निर्णायक और चुनौती की भाषा में पूछ रहा था।

'ठीक है।' गहरी सांस लेकर जया ने कहा था, 'तुम प्रोग्राम बतलाओ।'

सुरेश जोशी ने उठते हुए उत्तर दिया था, 'प्रोग्राम के लिए कुछ खास नहीं है। तुम तैयार होकर स्टेशन पहुंच जाओ। मैं भी स्टेशन पहुंच रहा हू···' कलाई घड़ी पर नजर टिकाकर उसने बात खत्म कर दी थी—'ट्रेन ठीक सवा ग्यारह पर है।' जाते-जाते वह फिर से कह गया था, 'और··· और उस पहलू से तैयारी भी कर रखना।'

और धड़कते दिल से ही सही, पर जया ने फैसला किया था—यही करना था। इसके अलावा और कोई राह नहीं! प्लेटफार्म पर घुसते ही सुरेश जोशी दीख गया था। टिकिट ले चुका था। छोटे शहर से बचाव की सावधानी में ट्रेन आने तक वे दोनों स्टेशन से बाहर, दूर मालगाड़ियों की लदानवाले हिस्से में जा बैठे थे···जया मौसी के दिल में उस समय भी हड़बड़ी थी। कितने ही सवाल, कितने ही जवाब, कितने ही पहलू·· तय नहीं कर पा रही थीं—ठीक कर रही हैं या गलत।···या यों कि ठीक कर चुकी है या गलत?···

देर की खामोशी के बीच कभी-कभार सुरेश का कोई सवाल उन पर उछल आता···जया मौसी अपने में ही सिकुड़ी-दुबकी जवाब में देर करतीं

तो सुरेश ही जवाब दे लेता। जया मौसी जान रही थी—उसके भीतर भी शायद वही कुछ घट रहा होगा, उसी तरह जैसा उनके भीतर घट रहा था··· .

चुप फिर से उनके बीच लम्बे चादरे की तरह फैल जाता।

'आखिर तुमने फैसला कर ही लिया।···' अचानक सुरेश बुदबुदाया था।

'हूं ?' जया मौसी ने दूर यहां-वहां अन्धेरे में बदहवास, परेशान नजरें बेमतलब ही घुमाते हुए कहा था···

और सुरेश बोला था —'अच्छा ही हुआ !···'

शब्दों की दिशा में चेहरा मोड़कर जया देखने लगी थीं—बहुत धुंधला-धुंधला-सा अक्स दीखता था सुरेश का···लगता था काले, सीमाहीन आकाश के अन्धेरे में दूर कोई किरण जैसी चीज चमक रही है···सोचने लगी थी वह···सच ही तो ये सुरेश अब उनके भविष्याकाश के अन्धेरे में एक किरन है। इसी किरन पर निगाहें टिकाए हुए जीवन का विस्तृत अन्तहीन मार्ग पार कर जायेंगी···यही किरन चलायेगी उन्हें—रास्ता देगी।

इसी किरन ने जया के भीतर साहस जगाया था। उस जया के भीतर, जो हर पल अपनी ही सहम के वजन से लदी-दबी रहती थी।···किस पल और कैसे यह किरन जया मौसी के भीतर उग आई थी या कि उन्होंने उसे सुरेश के भीतर महसूस कर लिया था—पता नहीं। बस, जया मौसी और सुरेश जोशी के साधारण परिचय की शायद किसी पहली मुलाकात ने ही इस किरन को जनम दे डाला था···

फिर इसी तरह कौंधती रही थी किरन। इसी किरन को अपने में सहेजे हुए जया घर की सारी मान-मर्यादा ताक पर रखकर निकल आई थीं···मालगाडी के गोदाम के करीब बैठी हुई किसी पल सोच रही थी कि इस घुप्प अन्धेरे को एक चीख के साथ चीरती, रोशनी का उपहार लिए हुए अभी वह ट्रेन आ खडी होगी —जिसमें सवार होकर जया जीवन-यात्रा का एक मोड लेकर नई तरह से जीना शुरू कर देगी···उस जीने में—संसार में—न तो बडी बहन मायादेवी का क्लेश होगा, न उनकी स्वार्थी

साधें और न ही कुन्दन दरजी की नीलाम बोलती-सी नजरें···

ऐसा होगा —सिर्फ सोचती रहती थी कभी। हर बार लगता था कि नही हो पाएगा ··सिर्फ यह डर लगता था कि एक दिन किसी विसन मायुर के गले मे वरमाल डाल देनी होगी···विद्रोह करने पर वह भी नही। सफेद धुली साड़ी-जैसी कुवारी उम्र बितानी होगी। इस साड़ी पर सारी इच्छाए, कामनाए सिकुड़नें बनकर अंकित हो जायेंगी और एक दिन वह मोड़ आ जाएगा, जब कराहते-खासते कह दिया करेगी—'अब क्या है !···यात्रा ही कितनी बची ?···'

सोचकर खुद से ही डर जाती थी जया। ऐसा नही होना चाहिए।··· हुआ तो आज की कल्पना मे बटोरे इस दुख का अहसास ही सहन नही हो पाता—कल का सत्य कैसे सहन कर सकेगी ?

तब क्या था रास्ता ?···यही—चोर भाव से भाग निकलना। सो निकल आयी थी जया···

गोदाम के अन्धेरे में भी कुछ चीजें बहुत साफ-साफ नजर आयी थी उन्हें—माया देवी लौटेंगी और जया को न पाकर सारे घर और गली-मुहल्ले मे एक हड़बड़ी फैला देंगी···फिर वक्त बीतेगा। जीजाजी—यानी मास्टर राजनाथ भटनागर चिन्तित भाव से नाते-रिश्तेदारों और दोस्तो के यहा भटकते घूमेंगे —'कहा है जया ?···यहां आई थी क्या ?···मालूम नही किधर चली गई ?···' सुवह-सबेरे तक सब जान जायेंगे। हर घर मे फुसफुसाहटें होंगी···हर घर में जया ही एक चर्चा। मिन्नी बहुत रोयेगी। एक तरफ आजादी का जलूस चला जा रहा होगा, दूसरी तरफ उस शोर-हंगामे के बीच जया के घर से भाग जाने को लेकर दो-चार लोग तलाश करते, बुदबुदाते घूम रहे होगे। यही कुछ होना था।

पर अब उस सबसे जया को कोई सरोकार नही। सरोकार सिर्फ सुनने का रहेगा। सिर्फ उसी दिन तक रहेगा, जिस दिन सुरेश के नाम का सिन्दूर माथे चढाए हुए जया इस शहर मे लौटेगी···

लोग देखेंगे—एक बार फिर फुसफुसाहटें उभरेंगी पर ज्यादा देर नही। कहेंगे—'यह तो होना ही था। बहुत पहले तय था। हो गया··· बात खत्म !' उस समय यही सोचा था जया ने।

करीब बैठे हुए सुरेश जोशी ने अचानक कहा था—'मैं तो सोच भी नहीं सकता था···' फिर हंस पड़ा था वह—'तुमने हिम्मत खूब की !···'

जया का मन हुआ था, पूछे—'हम कहां चल रहे है ?' तभी सुरेश फिर से बड़बड़ाया था—'देखो, अब कैसे क्या होता है !'

जया के मन मे अगला सवाल उमड़ आया था—'एक बार तुमने कहा था ना कि मेरठ मे तुम्हारे कोई रिश्तेदार है···मदद देंगे···?' पर सिर्फ घुमड़ा ही रहा था सवाल। जया पूछ नही सकी थी। अपने ही भीतर जवाब दे लिया उसने—'आखिर बाहरी दुनिया तो जया से ज्यादा ही जानता है सुरेश। वह खुद ही कुछ सोच चुका होगा।'

ट्रेन प्लेटफार्म पर आ थमी तो सुरेश के पीछे-पीछे जया कम्पार्टमेंट में जा पहुंची थी। वे तब तक खामोश रहे थे, जब तक कि ट्रेन ने प्लेट-फार्म न छोड दिया था। काफी देर बाद सुरेश जोशी ने एक गहरी सांस लेकर कहा था—'अब राहत मिली !' फिर वह सीट से टिक गया था।

जया के कूल्हे से सुरेश का शरीर बार-बार टकरा जाता। एक सहम भर जाती थी उसके बदन में। डर भी लगता था···साथ ही रोमांच भी होता। होंठ भींच लेती दांतों में—मुस्कराकर रह जाती।

अन्धेरे को चीरती ट्रेन आगे बढ़ रही थी और जया पल-पल अपने भीतर सनसनी का अहसास किए जा रही थी···लगता था रोशनी के किसी तेज नश्तर से जया ने अपने विगत आकाश का अन्धेरा चीरना शुरू कर दिया है···यह अनुभव किस कदर रोमांचित कर डालने वाला है···।

बहुत जल्दी अन्धेरा कट जाएगा···

मालूम नही जा कहां रहे हैं वे ?···मेरठ, आगरा या कहीं और ? ···एक बार फिर मन हुआ था उसका कि सुरेश से पूछ ले, पर चुप रहना ही ठीक। वह ज्यादा जानता है। ज्यादा समझकर फ़ैसला किया होगा उसने। जया को इस सबमे दिमागपच्ची करने की कोई जरूरत नहीं।

सामने बैठे मुसाफिरों में जब बातचीत हुई, तब सुरेश जोशी ने ही बतलाया था, 'बम्बई जा रहे हैं हम लोग।'

बम्बई !···जया ने हल्का धक्का महसूस किया था। बम्बई की चर्चा तो कभी नहीं करता था सुरेश ? ··जब-जब बात हुई थी—यही मेरठ,

आगरा या ऐसा ही नाम आया था—बम्बई कभी नहीं। तब बम्बई किस लिए निश्चित किया उसने ?

सामने वाले यात्री ने पूछा था, 'वहां—कहां ?'

'बान्द्रा में रुकेंगे हम लोग।' सुरेश ने बतलाया था, 'मेरे एक पुराने दोस्त हैं। वहीं रहकर दो-तीन दिन शहर घूमेंगे।'

यात्री चुप हो गया था···जया ने उसे देखा—अनजाने ही नजर जा भिड़ी थी उस यात्री की निगाहों से। लगा था जैसे वह जया और सुरेश की हर जेब टटोल रहा है। जया के भीतर एक झुरझुरी उग आयी थी—क्या यह आदमी समझ गया होगा कि 'जया भाग रही है !···' उसने नजरें झुका ली थी —पर भय मन से नहीं हटा था···

यात्री भी जा रहा था बम्बई। सारी राह जया उससे नजरें चुराए रही। पल-पल लगता रहा था जैसे अभी पूछ लेगा—'ऐ, लड़की !···सच-सच बता ये साथ वाला लड़का कौन है ?' और फिर मुश्किल !···

जया ने पहली बार चोरी की है। भागना भी तो चोरी ही है ··अपने सच को चुराए रहना और यह भी जानती है कि बहुत देर झूठ पर टिके रह पाना उसका स्वभाव नहीं। पहली बार में ही बिखर जाएगी···वह बिखरी और खेल खत्म ! किसी स्टेशन से वापसी ट्रेन में दोनों फिर से ग्वालियर लौट रहे होंगे। फर्क यही होगा कि उनके इर्द-गिर्द दो सिपाही बैठे होंगे।

लगा था कि गलती की है। अगर ग्वालियर या करीब के ही किसी शहर से आर्यसमाज में जाकर विवाह कर लिया होता तो माथे का दम-दमाता सिन्दूर हर शक की आंख चीर देता। न इतनी उलझन होती, न घबराहट—पर सुरेश की जिद। और सच में सुरेश की जिद भी क्या। गोदाम के अन्धेरे में एक बार बुदबुदाया था—'ठीक तरह प्लान करने का वक्त ही नहीं मिला !···सब भगदड जैसी बात हुई !' फिर अपने-आप ही जवाब दे लिया था उसने—'सच में ऐसे मामलों में ठीक से प्रोग्राम बन नहीं पाते। बन भी जायें, तब भी होती भगदड़ ही है···'

जया ने कुछ सुना था—कुछ अनसुना।

···और भगदड़ में सब कुछ अस्त-व्यस्त ही होता है। दिमाग़, मन, शरीर। इसी अस्त-व्यस्तता की देन थी, जिसके परिणाम मे सुरेश ने यात्री के एक सवाल का जवाब देते हुए जया के परिचय मे कह दिया था—'जी, जी···मेरी छोटी बहिन है—'

'अच्छा-अच्छा !' कहकर यात्री हंस दिया था और जया सुलगकर रह गयी थी। सुरेश की जाघ से टकराते उसके कूल्हे का बिजली की तरह सनसनाता, झकझोरता हुआ स्पर्श अनायास ही इस जवाब के कारण मुरदा हो गया था। एकदम शून्य तक ठंडा ! अच्छा नही लगा था उसे। जी हुआ था कहे—'शर्म आनी चाहिए तुम्हे !···मुझे बहिन घोषित कर रहे हो ?' पर उस समय क्या कहती ? चुप रही। यही नियति।

जब वह यात्री नासिक में प्लेटफार्म पर उतर गया तो जया से रहा नही गया था। कुछ घुरघुराती फुसफुसाहट मे उसने सुरेश से पूछा था—'छि. !···तुमने बहिन क्यों कहा था मुझे ?'

और सुरेश एकदम से हंस पड़ा था···यह हसी और भी चुभ गयी थी जया के भीतर। न-न यह सम्बोधन···और फिर एक मर्यादित रिश्ते के सम्बोधन को इस कदर अर्थहीन झूठ बनाना अच्छी बात नही है। बोली थी, 'क्या खिल-खिल करते हो—ऐसा क्या कहा तुमने ?'

सुरेश ने उत्तर दिया था—'इसलिए कि तुमने बीबी जैसा कोई करिश्मा तो अब तक दिखाया नही मुझे ?···' फिर वह दोबारा हंसा था।

जया ने इस जवाब मे ज्यादा गहरा थप्पड़ महसूस किया। किस कदर उथली भाषा बोलता है सुरेश ?···यह भाषा जया को कभी नहीं रुची। असल मे इस भाषा और अर्थवत्ता के लिए जया के भीतर संस्कार की धरती ही नही है। जो है, उसमे इस सबकी नही—एक शालीनता और सौजन्य-मर्यादा की गुंजाइश है। पर सुरेश से यही भाषा सुनने को मिलती रही है उसे···एकदम हल्की। कुछ-कुछ फिल्मों जैसी, जिसका पहला शब्द सड़किया दर्शक को लुभाता है, तो दूसरा शब्द किसी सभ्य शिक्षक से 'वाह-वाह' ले लेता है। यह दोरंगापन जया को कभी पसन्द

नहीं आया…जब-जब इस ढंग से अपने को और सुरेश को लेकर उसने सोचा है—तब-तब लगा है जैसे बहुत दूरी है उनके बीच। सोच-समझ में, रिश्ते में, दिमाग, मन और संस्कार में।…इसके बावजूद उसने सुरेश जोशी में किरन पायी थी…सोचा है कि इसी किरन के सहारे अंधेरा पार कर जाएगी…जया अपने ही भीतर कसमसाकर रह गयी थी… पहले भी दसियों बार सुरेश के मुह से इसी तरह की शब्दावली सुनकर कसमसायी है—पचा गयी है। उस डर को भी पचा लिया है, जो इस तरह की भाषा वालों के कारण मन में उपज आता है…पर मन ही मन तय जरूर किया है—किसी दिन इस मुद्दे पर सुरेश से बात करेगी। कहेगी—'क्या यह अच्छा लगता है कि तुम जैसे पढ़े-लिखे शालीन आदमी के मुह से हलकी भाषा निकले?' और जया को अहसास है—सुरेश 'एडजस्ट' करना जानता है। जरूर करेगा। वह अपनेको बदल भी लेगा।

बस, वह एक दोष दूर कर लिया तो सुरेश आदमी नहीं है—सोना है! भगवान का भाग!…जया ने उसे पाया है—यह जया का सौभाग्य।

जिस दोष को लेकर कभी-कभी इस क़दर चिढ़ उठती है जया, वह भी सुरेश का शायद निजी नहीं—उसके हालातों की देन है। नाटक और फिल्म में रुचि रखता रहा है हमेशा। इसी ख़ातिर बार-बार बार बम्बई में धक्के खाए हैं। खास तरह के सवादों और माहौल में सुरेश की अपनी भाषा गुम गई है…इसीलिए गड़बड़ हो जाती है शायद। जया ने संतोष कर लिया था। अक्सर यू ही सन्तोष कर लिया करती थी।

यह सोचते-सोचते जया को एकदम समझ आ गया था—मेरठ, आगरा, लखनऊ न जाकर बम्बई किसलिए जा रहे है वे लोग?…सुरेश की असली मंजिल वही है। वही शहर और दुनिया। एक दिन बहुत भावुक होकर बड़बड़ाया था—'जया! ''जीवन में एक यही साध लेकर दौड़ता जा रहा हूं—किसी दिन अशोककुमार की जगह परदे पर दिखू…'

काश !···जया उस दिन समझ सकी होती कि माहौल भाषा नहीं देता—बल्कि संस्कार भाषा देता है···और संस्कार सिर्फ भाषा देता हो—यही तो नहीं है ?···यह संस्कार ही होता है—जो समूचे आदमी को गढ़ता है, उसके सोच, समझ, कर्म और इरादों को ··भाषा केवल इस सबकी अभिव्यक्ति है और यह अभिव्यक्ति देख-समझ लेने के बाद समूचे व्यक्तित्व का पोस्टमार्टम कर डालना कठिन नहीं है ।

मगर जया ने उस तरह सोचा ही न था। सोचने का अवसर ही कहा था उसके पास ? उसने तो सिर्फ सोचा था —घर से मुक्ति के बारे में !··· उस लिप्सागृह से मुक्ति के लिए जो दौड़ चाहिए थी —उस दौड़ के लिए सुरेश के पैर देखे थे उसने—उन्हीको अपना कर दौड़ पड़ी थी···

क्या सचमुच दौडी थी ?···

शायद नही । हालाकि उस वक्त यही समझी थी—सुरेश के पास पैर है—और उन पैरो पर चलकर वह गली का नर्क पार कर रही है···

ट्रेन मे बैठे बम्बई की ओर दोड़ते हुए यही कुछ सोचा था जया ने।···सुरेश जोशी—एक अजनबी के हाथ में अपनेको सौंपकर वह निश्चिन्त हो ली थी। समझी थी कि बस, मुल्क की आजादी के साथ-साथ वह भी आजाद हो गई है···

मुल्क की आजादी की औसत कहानियों की तरह जया को भी यह मालूम नही था कि किसी भी स्तर की आजादी जितनी सहज है—उसे सजोना, संवारना उतना ही कठिन है। बल्कि असल तो वही है···

पर एक जया ने ही क्यों, किसीने यह नही समझा था। खुद अजित ने भी नहीं। पहले गणतन्त्र दिवस की प्रभातफेरी और झडावन्दन के फौरन बाद महाराजबाड़े पर गाधी-नेहरू के जिन साथी-चेलों ने भाषण किए—उनसे यही तो निष्कर्ष निकला था कि अब करने को कुछ नही रह गया है···जो है, वह बड़ी आसानी से कर लिया जाएगा और वह सब कुछ शुभ है ··

सबने यही कुछ सोचा था···बिल्कुल इसी तरह···

जया ने सोचा था कि गुलामी तो कट गई। अब सिर्फ उसे अपना एक संसार बसाना होगा। संसार बसाने मे संघर्ष होता ही है। वह करेगी।

साथ होगा सुरेश जोशी। दोनों मिलकर सब कुछ जमा लेंगे। अब कुछ भी कठिन नहीं।

अजित, मोठे बुआ, छोटे बुआ···सहोद्रा, सुरनो, मैनपुरी वाली और सुनहरी—सभी तो इसी तरह सोच रहे थे। आजादी के बाद की सुबह के बारे मे···लगा था कि सब कुछ इतना ही सहज है जैसे रात के बिस्तरे की सिकुड़नें साफ कर डालो। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसी भाव से पूरे देश को नेताओं ने भी देखा था, उसका प्रशासन, सचालन, निर्धारण··· सब!

पर वह सब बाद की बात। इस समय तो जया मौसी की कहानी···

उनकी हालत देखकर अजित को बार-बार लग रहा था, जैसे अब आगे नहीं सुना पाएगी···किस कदर तो उखड़ने लगी है! फिर जल्दी-जल्दी कुरेदने लगा था अजित—'···सुरेश के बवइया दोस्त के घर में पहुचकर जब तुमने सब कुछ समझ लिया था तो निकल क्यों न आयी वहा से?'

नशे से झुकती मुद-मुंद जाती पलकें अचानक ऊपर उठाकर जया मौसी बोली थी—'क्या बोला तू?···निकल आती मैं···ह-हा-हा··· ठीक-ठीक कहा है तूने, मुझे निकल आना था···पर, पर कैसे—कैसे निकलतीऽ—ई?···'पीते-पीते उनका शरीर धीमे-धीमे गीला होता जा रहा था···इतना कि अजित को लगा था, थोड़ी देर में झूलने लगेगा—एकदम गीला कपड़ा!

अजित ने भुनभुनाकर कहा था, 'एक थप्पड़ देती सुरेश के मुह पर···और···' वह बोलते-बोलते रुक गया था। देखा—जया मौसी का, नशे मे धीमे-धीमे बेसुध होता जाता शरीर हौले से थिरका था, फिर एक फुसफुसी हसी—अपने पर ही थूकती हुई हसी—होंठों पर फैल गयी। बुदबुदायी—'तू भी खूब है रे!···कह तो चुकी हूं—उधार के पैर लिए थे मैंने?···फिर-फिर एक दिन मालूम पड़ा—अऽ···कि उन पैरों मे घुन लगा हुआ है···स्वार्थ का घुन!···'

वह चुपचाप देख रहा था। ह्विस्की के पैगों ने उसके अपने भीतर भी हल्की-सी सनसनी भर रखी थी, पर जया मौसी ने जितना कहा-सुनाया था···वह जानने के बाद ये सनसनी सिर्फ एक लस्त झुंझलाहट बनकर रह गयी थी।

पर आगे जान नहीं सका था वह···यों भी जानने लायक मौसम नहीं रहा था। जया मौसी ने पलकें मूंदे हुए धीमे से बुदबुदाकर कहा था, 'बस, अब नहीं बोला जाता रे!···वह सब बोलने से वही सब दोबारा भी तो सहना होता है ना?···इसीलिए आज रहने दे···'

'तुमने इतनी पी ही क्यों ली मौसी?' अजित जैसे रुआंसा हो उठा था—घर से भागकर बम्बई पहुंचने और बम्बई में आज़ादी के बाद का संसार बनाने की बदहवास कोशिश तक पहुंची कहानी ही तो जया मौसी के *वेश्या चन्दारानी बनने तक का यात्रा-वर्णन नहीं था?*···पर *जितना* मिला—वही काफी। इसी तरह टुकड़े-टुकड़े जुटाना होगा। अजित ने सोचा था—उठ पड़ा। कस्तूरी को बुलाकर कहा था, 'कहना—कल फिर आऊंगा!'

वह चला आया था···

दो

सुध और बेसुधी के दौर में उस दिन जया मौसी से जो कुछ सुना-जाना—उससे उनकी कहानी पूरी नहीं होती···बस, इतना कुछ लगता है जैसे बरसों तक गुमी रही कहानी का एक सनसनाता मोड़ पार कर आया है। यह मोड़ इस बात का गवाह भी है कि उनकी कहानी लगातार मोड़ों की कहानी है···उस खौलते पानी की तरह जो एक खास गरमाहट पा जाने के बाद उबलता ही चला जाता है···बुलबुले और बुलबुले। किसी समय भी शान्त जल की सतह नहीं।

यह सतह तो इस समय भी नहीं है···

हो भी कैसे सकती है?···अजित ने माथे से तलवों तक हल्की झूम महसूसते और कोठे की सीढ़िया उतरते हुए सोचा था—जया मौसी के ही शब्द याद हो आए थे। एक तो नशे ने बेसुध कर रखा था उन्हें, तिसपर विगत ने बुरी तरह खोला डाला। कहा था—'बस, अब नहीं बोला जाता रे!···उस बीते हुए को बोलने से वह सब दोबारा भी तो सहना होता है ना? ' इसीलिए आज रहने दे!'

चल पड़ा था अजित। जया मौसी कोठे पर छूट गयी···

मगर रँगरपुरेवाले अपने घर में आकर बिस्तरे से चिपक जाने के बावजूद अजित को लगा था—नहीं। जया मौसी नहीं छूटी। अब भी पास है—एकदम सामने।

बम्बई के भीड़-सागर में पहली-पहली बार उतरती हुई···आगे-आगे जवान, खूबसूरत सुरेश जोशी। बैग कन्धे पर। हाथ में जया मौसी वाली

अटैची। चेहरा एकदम भयहीन। प्लेटफार्म पर भीड़ के रेले चीरती हुई जया संकोच मे भरी हुई थी। वही ऊहापोह। घर से भागी है। किसी पल लगता है कि विद्रोह किया। किसी पल अहसास कि भगोड़ी है। सुरेश ने फुसफुसाकर कहा था—'अब भी डरी हुई हो?···' फिर खुद ही जैसे जवाब दे लिया था—'यहां कैसा डर?—व्ही० टी० के इस विशाल स्टेशन पर एक-दूसरे को जानना तो दूर, आदमी अपनेको ही नही जान पाता···अगर कोई बिना कपड़े पहने भी निकल जाए तो दूसरा 'लुक' नही ले सकेगा!···किसे किसके बारे में चिन्ता है?'

जया ने ब्लाउज के भीतर एक सिहरन महसूस की थी। वही कस्बाई संकोच की सिहरन···फिर कोशिश करने लगी थी कि इस सिहरन से मुक्त हो जाए। चाल तेज कर दी थी। टैक्सी मे सवार होने के बाद सोचने लगी थी—क्या सच ही यहा भगोड़ी जया को पहचानने वाला कोई नहीं है? फिर लगा था कि बेकार बात है! कोई पहचाने—न पहचाने। सुरेश तो पहचानता ही है कि वह उसके साथ भागकर आयी है। खुद जया नही जानती क्या?···इस खयाल के साथ ही उसने फिर से अपने भीतर उसी सिहरन को लौटते महसूस किया था। जाने क्यों—अच्छा नहीं लगा था उसे।

टैक्सी मे बैठते ही सुरेश ने रोबीले अन्दाज में कहा था—'बान्द्रा!···बान्द्रा टाकीज के पास।'

टैक्सी दौड़ पड़ी थी। जया ने शहर को चीरती टैक्सी के शीशों से पार ऊंचे, भव्य भवनो और बदहवास स्त्री-पुरुषों के चेहरों को देखना शुरू किया था। ग्वालियर में रहते हुए कितना कुछ सुन रखा था इस शहर के बारे मे? चौपाटी, हैंगिंग गार्डन, जुहू बीच और न जाने क्या कुछ। अमीरी की चकाचौंध और नियोनलाइटों के दमदमाते शब्दों का सिलसिला···कारें, युवतियां, फैशन, फिल्में···बहुत कुछ। इस नाम-भर से जया के भीतर तब एक रोमांच होता था। दिल में हूक-सी उठती—किसी पल कभी पहुंचना हुआ तो सौभाग्य होगा···खूब घूमेगी, खूब देखेगी···

पर इस तरह, इस हाल मे देखना होगा—कब सोचा था?" वह

सब, जो बम्बई के नाम से एक हूक पैदा करता था—आज गायब !··· लग रहा है जैसे जया की पुतलियां शहर में घूम रही हैं—मन स्तब्ध भाव से किसी फुटपाथ पर थमा रह गया है। अजब-सी उत्साहहीनता। देखकर भी न देख पाने का अहसास।

मन और शरीर के बीच पड़ी किसी दरार मे सिर पीटते अहसासों वाला आदमी कैसा तो हो जाता है ? होकर भी न होने जैसा।

इसी दौर में टैक्सी की स्पीड कम होने लगी थी। सुरेश बोला था, "बस, लैफ्ट साइड में ले लीजिए।"

टैक्सी ने मोड़ा लिया था यों कि शायद जया के जीवन ने ही मोड़ ले लिया था।

वे उतरे थे। सुरेश जोशी ने अपने सिर पर अजब-सा गाभीर्य ओढ़े हुए बैग कन्धे पर लटकाया था, अटैची हाथ में ली। कहा, "आओ!"

जया चुप। पीछे-पीछे। ऐसे ही चलता है संसार। मर्द बोझा उठाए हुए आगे-आगे और स्त्री उसकी अनुकृति बनी पीछे-पीछे। अनुकृतियां, रुकने-मुड़ने, और चलने के निर्णय नही लिया करतीं। स्त्री की यही नियति। कम से कम इस देश की स्त्री यही है। है, या बना दी गयी है, बन गयी है—बहस की बात नही। फिलहाल जया का यही रूप। यही स्थिति। इसी तरह सुरेश की अनुकृति बने रहना होगा।

छह मंजिला शानदार इमारत की लिफ्ट मे समाते हुए जया अपने भीतर कुछ बेचैनी-सी महसूस कर रही थी। सुरेश का कोई मित्र है। जया को उस तरह सुरेश के साथ पाकर क्या सोचेगा ?···यह भी कुछ अच्छा नही लगा था उसे। वही अहसास। मांग में सिन्दूर पड़ा होता तो इस तरह की बेचैनी हजार मील दूर खड़ी होती।

लिफ्ट रुकी। शायद पांचवी मंजिल है। जया ने याद किया था—लिफ्ट मे घुसते ही सुरेश ने शायद पांच नम्बर का बटन दबाया था···

नाम सुना था कभी ग्वालियर मे। जितने बड़े शहर है, उतनी ही बड़ी-बड़ी इमारतें हैं—पचीस-पचीस मंजिली। लिफ्ट होती है उनमे। आदमी बार-बार चढ़े-उतरे तो न सिर्फ जिन्दगी के चौथाई साल खर्च हो जाएं, बल्कि हाथ-पैर भी बग़ावत कर बैठें—इसीलिए यह लिफ्टें बनी

हैं। बटन दबाओ और आदमी जिस मंजिल पर चाहे, वहां पहुंच जाए। जया सुनकर बदन में एक कल्पित झुरझुरी महसूस करती थी—कैसा लगता होगा लिफ्ट में चढते हुए?

पर अजीब बात! शहर में आते ही लिफ्ट से साबका पड़ गया, पर कैसा मृत संवेदन? कुछ लगा ही नहीं। न रोमांच, न सनसनी, न कौतूहल। जया को अपने से ही डर लगने लगा था। ऐसे अपने भीतर क्यों मर रही है जया?···जीवन एकदम शुष्क हो जाएगा। इस भय को निकालना होगा। एक मुक्ति मन में पैठाकर दुविधा में पड़े अहसास सहज करने होंगे···यह कि खुद को सहज होना पड़ेगा। तभी आनन्द मिलेगा।

सुरेश जोशी की अंगुली कालबैल पर दबी हुई थी···

एक पल्ले वाले शानदार चमचमाते दरवाजे में पुतली के बराबर ही एक गोल शीशा जड़ा हुआ। जया को याद आया था—यह होता है 'आई-क्यू' भीतर वाला बाहर वाले को देख-पहचान सकता है।

द्वार खुला। एक खूबसूरत युवती सामने। गोरी, चमचमाती हुई। महंगी नायलानी मैक्सी बदन पर···आंखें कुछ चढ़ी-हुई-सी। जया के भीतर कुछ धड़धड़ाने लगा था। शायद शराब पिए है···

'दिवाकर है?' सुरेश ने एकदम से सवाल किया था।

'यस।' युवती ने कहा, 'आप···?'

'कहिए कि ग्वालियर से सुरेश आया है। सुरेश जोशी···'

युवती ने एक नजर जया पर दौड़ायी। कहा, 'आइए···' वे भीतर घुसे। 'प्लीज सिट डाउन।' युवती ने बड़ी शालीनता के साथ दोनों को ही बैठने के लिए कहा, फिर भीतर जाती हुई बोली, 'मैं उन्हें भेजती हूं।'

'उन्हें भेजती हूं'—यानी यह शायद दिवाकर नाम के सुरेश के मित्र की पत्नी है। मगर शराब पीती है?···कड़वाहट के साथ जया ने सोचा था, फिर यह सोच थूक डाला। क्या कस्बाई दिमाग लगा रही है जया। यह है बम्बई। यहां वह सब सही, जो कस्बे में गलत। यहां वह सब गलत, जो कस्बे में सही। यह कोई सोचने जैसी बात नहीं है।

सुरेश कमरे में नजरें दौड़ा रहा था। सहसा बोला था, "देखा

जया, क्या फ्लैट है !···' वह जैसे अपनी नजरों से ही हर चीज छू-छूकर देख रहा था। पैरों के नीचे पड़ा शानदार कालीन, दीवारों पर पेन्टिंगें, चमकता फानूस, गुदगुदी सोफा-कुरसी···कमरे की सजावट। रैक पर रखी कई शील्ड्स···जया ने भी बहुत कुछ देखा। ये शील्ड्स फिल्मों की थी। कोई सिल्वर जुबली, कोई गोल्डन जुबली···जया ने सोचा था—'यह दिवाकर कोई फिल्मी आदमी लगता है।' और तभी उसे खुशी हुई थी। सुरेश ने सम्बन्ध बहुत अच्छे बना रखे हैं।

'हैलो !···' अचानक एक आवाज गूंजी थी। जया और सुरेश सतर्क होकर बैठ रहे थे। अधेड़ उम्र का एक रोबीला आदमी उनके सामने था। आंखों के पपोटे सूजे हुए-से। शायद उसने भी काफी शराब पी रखी थी। क्लीनशेव्ड चेहरा। सांवला रंग। खिचड़ी बाल। कनपटियों तक खिंची हुई कलमें। उसकी निगाहें जया पर टिकी, फिर हट गयी। उतने-भर से जया ने घबराहट महसूस की थी। इतनी उम्र का आदमी और सुरेश का दोस्त? उसने सिलकिन तहमद पहन रखा था। वैसा ही कुरता। उसे देखते ही सुरेश एकदम खड़ा हो गया था। जया उसकी देखादेखी।

'नमस्ते !···' सुरेश ने हाथ जोड़ लिए थे। उसे देखकर जया ने भी।

'नमस्ते-नमस्ते—बैठो ! प्लीज सिट डाउन।' दिवाकर उनके सामने सोफा-कुरसी में धंसते हुए पूछने लगा था, 'कब आए आप लोग ?···' सहसा उसकी नजर एक ओर, कोने में रखे बैग और अटैची पर जा ठहरी थी—'अच्छा-अच्छा, यानी आप लोग स्टेशन से आ रहे हैं—आई सी !'

'जी···खबर नहीं दे सका···' सुरेश ने जैसे मिनमिनाकर कहा था। जया को यह भी अच्छा नहीं लगा। भला दोस्तों के सामने मिनमिनाने की क्या जरूरत? पर···पर लगता है—दिवाकर से दोस्ती नहीं है। उसका वरदहस्त प्राप्त कर रखा है सुरेश ने। तभी तो पल-पल, उसका बोलना, मुसकराना, हथेलियां मसलना गवाही दे रहा है कि दिवाकर रुतबे, मर्तबे, हैसियत, साधन, उम्र सभी में उससे बड़ा है और

वह ओछा। जया ने अपने भीतर जैसे-तैसे कर जगता साहस एकदम बुझता महसूस किया था।

'तो…तो आप लोग कपड़े-वपड़े बदलिए, फिर बातें करते है।' अचानक ही दिवाकर उठ खड़ा हुआ था—उसने फिर उसी तेज कुरेदती नज़रों से जया को छीला था। कहा, 'आइए, आपको आपका कमरा दिखाता हू।' कहकर वह आगे हो लिया। दिवाकर पीछे।

जया वहीं बैठी देखती रही थी। दिवाकर ने सुरेश को कमरा दिखाया था, फिर दूसरे कमरे की ओर जाते हुए कहा था—'मैं पास वाले कमरे में हूं— आप फ्री होकर वहीं आ जाइए।'

'जी।' सुरेश बोला था, पर जया को लगा कि दिवाकर ने उसके उत्तर की प्रतीक्षा भी नहीं की थी—अपने कमरे में धसकर गायब हो गया था।

कमरा शानदार था। एक ओर डबलबैड लगा था। दूसरी ओर श्रृंगार-टेबिल रखी थी। अटेच्ड लेटरीन-बाथ। सब सजा हुआ। पहली नजर में ही जया ने समझ लिया था— दिवाकर बहुत पैसेवाला आदमी है। यह भी साफ कि सुरेश जोशी उसका मित्र नहीं है। पर जया डबलबैड को देखती हुई कुछ सहम गई थी। उसने सुरेश की ओर देखा। वह मुसकरा रहा था। कहा— घबराओ मत। इस शहर में किसीके यहां रुकने पर कई-कई कमरे नहीं मिल सकते…फिर सच तो यह है जया, कि होटल में रुकने लायक हमारी हैसियत नहीं है। रुक भी सकते तो शायद एक कमरे के अलावा दूसरा कमरा लेने की हिम्मत न कर पाते !'

जया को भी लगा था—गलत नहीं है। बहुत सुना है बम्बई के बारे में। बड़े-बड़े लखपति-करोड़पति तीन-चार कमरों के फ्लैट में रहते हैं। उसने सहम को कुचल लिया था। अब सुरेश को लेकर इस तरह परायेपन से सोचना ठीक नहीं होगा। कृति-अनुकृति हो चुके है सुरेश और जया।

दिवाकर के कमरे की ओर देखते हुए सहसा सुरेश जोशी बडबडाया था, 'तुम 'चेंज' कर लो। तब तक मैं सिगरेट पीता हूं…' कहकर उसने सिगरेट सुलगाई थी—बैड पर जा लेटा था।

जया अटैची से कपड़े निकालकर बाथरूम में समा गई थी। शानदार

जया, क्या फ्लैट है !...' वह जैसे अपनी नजरों से ही हर चीज छू-छूकर देख रहा था। पैरों के नीचे पड़ा शानदार कालीन, दीवारों पर पेन्टिंगें, चमकता फानूस, गुदगुदी सोफा-कुरसी...कमरे की सजावट। रैक पर रखी कई शील्ड्स...जया ने भी बहुत कुछ देखा। ये शील्ड्स फिल्मों की थी। कोई सिल्वर जुबली, कोई गोल्डन जुबली...जया ने सोचा था—'यह दिवाकर कोई फिल्मी आदमी लगता है।' और तभी उसे खुशी हुई थी। सुरेश ने सम्बन्ध बहुत अच्छे बना रखे हैं।

'हैलो !...' अचानक एक आवाज गूंजी थी। जया और सुरेश सतर्क होकर बैठ रहे थे। अधेड़ उम्र का एक रौबीला आदमी उनके सामने था। आखों के पपोटे सूजे हुए-से। शायद उसने भी काफी शराब पी रखी थी। क्लीनशेव्ड चेहरा। सांवला रंग। खिचड़ी बाल। कनपटियों तक खिंची हुई कलमें। उसकी निगाहें जया पर टिकीं, फिर हट गयीं। उतने-भर से जया ने घबराहट महसूस की थी। इतनी उम्र का आदमी और सुरेश का दोस्त? उसने सिलकिन तहमद पहन रखा था। वैसा ही कुरता। उसे देखते ही सुरेश एकदम खड़ा हो गया था। जया उसकी देखादेखी।

'नमस्ते !...' सुरेश ने हाथ जोड़ लिए थे। उसे देखकर जया ने भी।

'नमस्ते-नमस्ते—बैठो ! प्लीज सिट डाउन।' दिवाकर उनके सामने सोफा-कुरसी में धंसते हुए पूछने लगा था, 'कब आए आप लोग ?...' सहसा उसकी नजर एक ओर, कोने में रखे बैग और अटैची पर जा ठहरी थी—'अच्छा-अच्छा, यानी आप लोग स्टेशन से आ रहे हैं—आई सी !'

'जी...खबर नहीं दे सका...' सुरेश ने जैसे मिनमिनाकर कहा था। जया को यह भी अच्छा नहीं लगा। भला दोस्तों के सामने मिन-मिनाने की क्या जरूरत? पर...पर लगता है—दिवाकर से दोस्ती नहीं है। उसका वरदहस्त प्राप्त कर रखा है सुरेश ने। तभी तो पल-पल, उसका बोलना, मुसकराना, हथेलियां मसलना गवाही दे रहा है कि दिवाकर रुतबे, मर्तबे, हैसियत, साधन, उम्र सभी में उससे बड़ा है और

वह ओछा। जया ने अपने भीतर जैसे-तैसे कर जगता साहस एकदम बुझता महसूस किया था।

'तो'''तो आप लोग कपड़े-वपड़े बदलिए, फिर बातें करते हैं।' अचानक ही दिवाकर उठ खड़ा हुआ था—उसने फिर उसी तेज कुरेदती नज़रों से जया को छीला था। कहा, 'आइए, आपको आपका कमरा दिखाता हूं।' कहकर वह आगे हो लिया। दिवाकर पीछे।

जया वहीं बैठी देखती रही थी। दिवाकर ने सुरेश को कमरा दिखाया था, फिर दूसरे कमरे की ओर जाते हुए कहा था—'मैं पास वाले कमरे में हूं—आप फ्री होकर वहीं आ जाइए।'

'जी।' सुरेश बोला था, पर जया को लगा कि दिवाकर ने उसके उत्तर की प्रतीक्षा भी नहीं की थी—अपने कमरे में धसकर गायब हो गया था।

कमरा शानदार था। एक ओर डबलबैड लगा था। दूसरी ओर शृंगार-टेबिल रखी थी। अटेच्ड लेटरीन-बाथ। सब सजा हुआ। पहली नज़र में ही जया ने समझ लिया था—दिवाकर बहुत पैसेवाला आदमी है। यह भी साफ कि सुरेश जोशी उसका मित्र नहीं है। पर जया डबलबैड को देखती हुई कुछ सहम गई थी। उसने सुरेश की ओर देखा। वह मुसकरा रहा था। कहा—'घबराओ मत। इस शहर में किसीके यहां रुकने पर कई-कई कमरे नहीं मिल सकते'''फिर सच तो यह है जया, कि होटल में रुकने लायक हमारी हैसियत नहीं है। रुक भी सकते तो शायद एक कमरे के अलावा दूसरा कमरा लेने की हिम्मत न कर पाते!'

जया को भी लगा था—गलत नहीं है। बहुत सुना है बम्बई के बारे में। बड़े-बड़े लखपति-करोड़पति तीन-चार कमरों के फ्लैट में रहते हैं। उसने सहम को कुचल लिया था। अब सुरेश को लेकर इस तरह परायेपन से सोचना ठीक नहीं होगा। कृति-अनुकृति हो चुके हैं सुरेश और जया।

दिवाकर के कमरे की ओर देखते हुए सहसा सुरेश जोशी बड़बड़ाया था, 'तुम 'चेंज' कर लो। तब तक मैं सिगरेट पीता हूं'''' कहकर उसने सिगरेट सुलगाई थी—बैड पर जा लेटा था।

जया अटैची से कपड़े निकालकर बाथरूम में समा गई थी। शानदार

हौले से जया ने दांतों में होंठ दबाया—झनझनाती हुई-सी सुरेश के साथ सोफे में बैठ रही।

'डॉली !...' दिवाकर ने कहा, 'अपने दोस्तों के लिए भी पेग बनाओ...' जया बुरी तरह घबरा गई। क्या...? क्या जया को भी शराब पीनी होगी ? न ! कभी नहीं। यह सोच पाना भी कठिन। उसने अपने भीतर छींक महसूस की। कांपकर कहा, 'जी नहीं...नहीं बहिन। मैं नहीं लूंगी...' उसका मन तो हुआ था कि सुरेश से भी कह दे—'तुम भी मत लो अभी। मुझे तो मालूम ही नहीं था कि तुम पीते हो ?' पर यह अधिकार, आदेश शक्ति अभी नहीं है उसके पास। चुप रहना होगा। चुप रही।

'ओ, नो !...' दिवाकर ने झूमते हुए जिदभरी आवाज में कहा था—'मुझे मालूम है मिस...सॉरी...' वह सुरेश की ओर मुड़ा था—'एक्स-क्यूज मी, जोशी। शी इज़ मिस और मिसेज ?...'

'मिस...' जोशी ने जवाब दिया। जया ने नजरें झुका ली। दिवाकर ने कहा, 'तो मिस जया !...मुझे मालूम है कि आप छोटे शहर से आयी हैं, पर आप बम्बई आयी हैं...यह मत भूलिए !'

जया को उससे चिढ़-सी होने लगी। क्यों—पता नहीं। न चाहकर भी उत्तर दे बैठी—'मेरा ख़याल है दिवाकर साहब, बहुत-सी लड़कियां बम्बई आती हैं, पर...'

दिवाकर हंसा, 'ठीक कह रही हैं आप, मगर मिस...जया ! वे लड़कियां जरूर आती हैं पर उनका होस्ट दिवाकर नहीं होता !' सहसा वह डाली की ओर मुड़ा, जो मुस्कराती हुई दो पेग बना चुकी थी, 'मिस जया को दो...' एक बार वह पुनः जया की ओर मुड़ा—'टेक इट ईज़ी, मिस जया !"

सुरेश उसकी हंसी में हंस रहा था...पर जया को सकोच, घिन और बेचैनी-सी महसूस करते पाकर फसफुसाया, 'लो भी यार !...'

जया का चेहरा तमतमा आया था—वही भद्दी और हल्की शब्दा-वली !...'यार !' जबड़े कसकर रह गई। कहा, 'नहीं-नहीं, मुझे माफ कर दीजिए, दिवाकर साहब !' बेशक मैं आपके यहां ठहरी हूं, पर... प्लीज !' सहसा उसे सूझा नहीं—क्या कहे ? किस तरह कहे ?

सुरेश दबाव देने लगा था—'फॉर माई सेक जया !···दिवाकर साहब का दिल टूट जाएगा।'

'नो !···' दिवाकर ने हंसकर कहा—'नो दिल !···अपने को दिल नही है जोशी। दिल होता तो इधर बम्बई में फिल्म का धन्धा नही कर सकता था ! करता तो साले दिल की वजह से जमता नही। इसलिए मिस जोशी···सॉरी, मिस जया···आप अगर ये पैग लेंगी तो मुझे खुशी होगी, बस !···अगर नही लेंगी तो थोड़ा फील होगा ··आगे कुच्छ नही !·· ये दिल-विल टूटने वाली बात गलत है !···' दिवाकर ने होंठों से जाम लगाया—खाली कर दिया।

हैरत से जया उसे देखती रह गई। अजीब मुंहफट आदमी है। शायद यह जो कुछ दिखाता है—वह नहीं है। कुछ और भी है। अलग। उसे ठीक-सा लगा।

डॉली ने जाम उसकी ओर उठा रखा था, 'प्लीज !···इसकूं वापिस करने का नईं —अभी आप एकदम नया सोसायटी में आयाय···टेक इट !···' ऐसा ना-नुच करने से पार्टी का मज़ा खराब होताय—लो !'

'ले-लो, जया। एक घूंट तो लो···कुछ एडजस्ट करना सीखो—प्लीज !' सुरेश ने कुछ घूंट लिए, बड़बड़ाया।

जया ने एक नज़र उस जाम को देखा, फिर दिवाकर को। दिवाकर ने हंसकर कहा—'अब अपुन नहीं बोलेगा, मिस जया !···दिस इज़ माय नेचर ! अगर मन होता है, तो ठीक। नही होता है तो ठीक।'

जया ने डॉली के हाथ का जाम लिया और टेबल पर रखते हुए कहा, 'सॉरी भाभी···'

'भाभी ?···' डॉली बुदबुदायी—जोर से हंस पड़ी। दिवाकर भी हसने लगा था। जया हक्की-बक्की हो गई, 'कोई भूल हुई मुझसे, मिस्टर दिवाकर ?'

डॉली हसे ही जा रही थी···हंसते-हंसते एक सिगरेट सुलगाने लगी थी वह। दिवाकर ने कहा था, 'नही मिस ! भूल तो हमसे हो गयी है। आपको ठीक से डॉली का इन्ट्रोडक्शन नही दिया है। दिस इज़ माय ब्लडर !···पर कोई बात नही—लिसिन ! शी इज़ माय गर्लफ्रेंड। और···

और अगर हमारी वाइफ भी होती तो हम आपको ये हक़ नहीं देते कि आप उसे भाभी बोलें। मेरा मतलब है कि मैं आपको बहन नहीं मानता। न आप मेरी बहिन हैं।'

दिवाकर ने जैसे एक बार फिर से स्तब्ध कर दिया था उसे। वह सकपकायी हुई देखती ही रह गई। आदमी भी अजीब, भाषा भी अजीब और तर्क एकदम अजीब !

'मुझको इतना साफ बोलने के लिए एक्सक्यूज दीजिएगा मिस जया ! मैंने आपको बहिन करके देखा ही नहीं। सच्ची में मैं औरत को इस तरह देखता ही नहीं। यह समझ लीजिए कि मुझे औरत-औरत के अलावा कुछ नहीं दिखती।···ये जो हम लोगों की लाइन है ना—फिल्म लाइन। इसमें ऐसा ही होता है···पर हमने हमेशा मार खाई है—पूछो क्यों ?'

सुरेश ने पूछा, 'क्यों ?'

दिवाकर ने अपना पैग भरा, कुछ घूंट लिए, बोला—'इसलिए जोशी, कि हमको थोड़ा ट्रुथ पसन्द है। अपुन ऐसा ड्रामा करना नहीं मांगता कि मिस जया को देखने की कोशिश करेगा— भीतर तक, और कहेगा— सिस्टर !···नो-नेव्हर !···आई कैन नॉट !' वह पीने लगा।

जया अपने ही भीतर बुरी तरह थरथरा उठी। दिवाकर या कोई आदमी इस तरह अपने-आपको उगल सकता है—कल्पनातीत था !···पर यह कल्पनातीत साकार मौजूद था। जया के सामने ही पीता हुआ—खुश, हंसता हुआ।

'यू आर ओरीजनल मिस्टर दिवाकर !' डॉली ने कुछ घूट लिए।

सुरेश हंस रहा था। पैग उसके गले से उतर चुका था। डॉली नया भरने लगी। सहसा दिवाकर ने कहा, 'तुम बोला डॉली कि हम ओरीजनल हैं। पर हम स्साला ऐसी ओरीजनल्टी में ही मार खाता है। एक दिन अपनी रचना है ना...?'

'हां-हां', सुरेश उछलता हुआ-सा बुदबुदाया, 'हीरोइन !···क्या बात है साहब !···चीज है !'

जया बुरी तरह चिढ़ उठी—भाषा···

'बस—रचना।' दिवाकर ने कुछ घूट फिर लिए 'अरे, वह भी

स्साली कोई चीज है? वह तो चींजा है···चींजा···' उसके चेहरे पर तनाव घर आया था।

'हां, तो फिर क्या हुआ था डीअर?···' डाली पूछ रही थी। 'तुम कुछ अपना ओरीजनल्टी को लेकर बोलता था···?'

'ओ-यस! तो हुआ ये कि एक पार्टी था। 'जलवा' के प्रॉड्यूसर ने दिया था।' रचना उसमें हमको बोला—'हैलो ब्रदर, हाऊ आर यू?' हम इसको बोल दिया—'देखो बेबी, अपनेको ब्रदर-ब्रदर बोलने का नई।' ओ पूछा—'ऐसा काए को बोलता है?' हम बिसको खरा-खरा बोल दिया—'बेबी!···हम तुम्हारे साथ सोयाय···अब ये ब्रदर स्साले को बीच मे कायको लाताय?···' बोलो? ठीक किया ना?'

जया और ज्यादा सिटपिटा गयी। सुरेश ने जैसे बेहद-बेहद खुश होकर पूछा, 'आपने रचना को···दिवाकर साहब?'

सहा नहीं गया जया पर। उठ पड़ी। 'अरे-रे!···बैठो मिस जया!' दिवाकर बोला। पर जया बुरी तरह उखड़ चुकी थी। कुछ माहौल से, कुछ सुरेश के सवाल से। यह आदमी?···यही आदमी उसके अन्धेरे की किरन है?···छि.! जया को लगा था—रो पड़ेगी। जिस तरह उस हीरोइन को लेकर उसने उत्साहित ढंग से घिनौनी बात की थी—क्या वह इस बात की गवाही नही थी कि वह—वह बिल्कुल नहीं है—जिसकी कल्पना संजोए-संवारे जया घर से निकल आयी है···एक अजब-सा डर समा गया था उसके भीतर।

दिवाकर ने जया की कलाई पकड़कर एक झटके में बिठा दिया था कुर्सी पर। घबराकर बैठ रही वह। मन हुआ था उसे डपट दे—'तुमने कलाई पकड़ने की हिम्मत कैसे की गन्दे आदमी?' पर नहीं कहा। कहेगी भी नहीं। लगता है यह आदमी सुरेश की तुलना मे एकदम गन्दा नही है। बेहद उजला-धुला, साफ-पाक! दिवाकर ने कहा, 'मिस जया!···हम आपके साथ ये जो फिजिकल ऐक्शन किया है—इसका एक्सक्यूज मांगता है।'···फिर वह पुरानी वार्ता पर मुड़ा था, 'अब देखो सुरेश···लिसिन इट! ये हम जो रचना को बोला तो ओ स्साली हमसे भिड़ गयी? हमको गाली दिया, झगड़ा किया। इसलिए कि उस स्साली का भांडा फूट गया।

फूटा इसीलिए कि हमको फालतू मे उसने ब्रदर बोला। अपनेको समझ नही आता डॉली पार्टनर ?···ये स्साला कैसा इण्डस्ट्री है—वर्ल्ड है, कन्ट्री है ?···एक औरत मर्द को बोला—'ब्रदर !···' जिसके साथ सोया—ओ ब्रदर कैसा हुआ ? ··नो-नो ! आई नेव्हर थिंक इन दिस मैनर···नेवर !··· आई नेवर टॉक नान्सेंस ! सो आई एम सफरर !'

'एकदम ठीक है डार्लिंग !···यू आर राइट ! परफेक्टली राइट !' डॉली हिलने लगी थी।

'थैंक यू !···' दिवाकर ने कहा, फिर बड़े कामुक ढंग से हंसता हुआ बोला—'इसी बात पर एक किस हमको मार दो डॉली डार्लिंग !···कम-आन !' उसने प्याला नीचे रखा—दोनों हाथ फैला दिए। डॉला खुश, चहकती और झूमती उठी और उसने एक झटके में झुककर दिवाकर के भद्दे चेहरे को इस तरह चूमा जैसे कपास छुआ दिया हो। जया का जिस्म कपड़ो मे कांप रहा था···नजरें झुकी हुई। अजीब लोग हैं ! गन्दे !

'हा-हा-हा···! स्वीट !···फाइन ! 'दिवाकर चिल्लाया। पूरा पैग गले में उतार गया। बोला, 'बस, अब खाना होयेंगा !' वह उठ पड़ा।

उठते-उठते सुरेश ने जया के लिए भरा रखा पैग उठाया···

'नो ! नो !···' एकदम चीख पड़ा था दिवाकर, 'उसको टच मत करो जोशी।···उसपर मिस जया का नाम लिक्खा है। शी विल टेक इट !···'

'मैं आपसे पहले ही माफी माग चुकी हू मिस्टर दिवाकर···!' घबराए स्वर मे जया बोल गयी थी। भयभरी एक झुरझुराहट दिल-दिमाग में फैली थी—शराबी, मुहफट आदमी है दिवाकर···यही नही—यह है उसका घर। अगर दबाव डालने लगा तो जया क्या कर सकेगी ! कातरता और निवेदनों से ही काम लेकर समय गुजारना होगा। फिर सुरेश जोशी किस कदर दबा-पिटा है, कितना समर्पित, कायर और उथले दिल-दिमाग़ का है—? कुछ-कुछ दीखने लगा था।

दिवाकर ने कहा था—'डाण्ट बी आफरेड मिस जया !···हमने आपको पहले ही बोल दिया था—आपको पीने को नही बोलेगा। अभी बोला भी नही है, पर ये जो आपके नाम से भरा हुआ गिलास है ना···?

ये ऐसे ही मेण्टेन रहेगा—इसी कमरे में।' वह झुका—उसने गिलास उठाया और सामने लगे शीशे के रैक में रख दिया। कहा—'इन दिस पोजीशन ! ऐसे ही मेण्टेन रहेगा ! अभी आप हमारे साथ हैं पन एक दिन आप खुद इसको यूज करेंगी। दैन आई विल बी हैपी ! आलराइट ?'

सुरेश जोशी सिटपिटाया हुआ हैरान-सा खड़ा था। दिवाकर ने डॉली से कहा, 'खाना लगाओ, डार्लिंग !'

डॉली खाना लगाने लगी। सुरेश जोशी बोतल देख रहा था। आखों पर इच्छा आ ठहरी थी। दिवाकर ने कहा—'नाव, टेक एनअदर पैग जोशी।···पियो ! फिर वह जया की ओर मुड़ा, 'कम ऑन, मिस जया।' वह खाने के टेबल की ओर मुड़ गया।

वे खाना खाने लगे थे···जया कभी सुरेश जोशी को देखती रही थी, हिलता हुआ सुरेश जोशी···फिर उसकी नजरें दिवाकर पर जा ठहरी थी, जो डॉली से कह रहा था—'डॉली डार्लिंग !···सुबह तुमको इधर से शिफ्ट करना है। अभी तुमने देखा ना—हमारा गेस्ट लोग···'

'आई नो डीअर—आई नो !' डार्लिंग डॉली ने रुनझुनभरी आवाज में लापरवाही से जवाब दिया।

जया बहुत धीमे-धीमे संकोच के साथ ग्रास ले रही थी···उसकी नजरें बार-बार शीशे के रैक में रखे उस पैग पर जा ठहरती, जिसे लेकर बड़े विश्वास से दिवाकर बोला था—'अभी आप हमारे साथ हैं पन एक दिन आप खुद इसको यूज करेंगी···!'

जया का मन हुआ था, धीमे से हंस दे—शराबी कहीं का !···भला जया क्यों उपयोग करने लगी उसका ?···एकदम ही नशे में है !···मगर जिस तरह खा-पी रहा है—उससे तो नहीं लगता कि वह ज्यादा नशे में होगा ?

मगर शराबी दिवाकर ही सही निकला था !···जया को बहुत बाद में मालूम पड़ा।

जया बोली थी—'सच मान अजित !···उस दिन दिवाकर नही, मैं ही नशे मे रही थी शायद। सुरेश जोशी के नशे में···अंधेरे की किरन के नशे मे !···इसी वेसुधी के कारण मैं उस पल समझ नही सकी थी कि वह जो अधेड़, सावला, खिचड़ी वालों वाला वेतुका-सा आदमी दीख रहा है··· जिसके मुह पर भद्दी कहानियां और सस्मरण लिखे हुए हैं···इस आदमी को लेकर एक दिन रोना पड़ेगा···उसके लिए दुआएं करनी होंगी · उसके लिए कहना होगा—'दिवाकर !···आखे खोलो दिवाकर !···जवाव दो कि उस दिन झूठ क्यों बोले थे तुम ?···क्यों कहा था कि तुम्हारे दिल नही है।···ये दिल का दौरा क्या विना दिल वालों को पडता है ?'

मगर उस पल जया ने सिर्फ यही सोचा था कि किसी तरह इस दिवाकर से मुक्त हो जाए। खाने के टेवल पर वैठे हुए जब उसने दिवाकर को अपनी तरफ घूरते और होंठ दात मे चवाते देखा था तो अनायास ही आचल सवारने लगी थी···एकदम दो तेज नश्तरों की तरह उसकी निगाहें जया के नीले ब्लाउज में धसती चली जा रही थी। जया की हरकत पर वह मुस्कराकर खाने लगा था।

जया की नजरें करीब वैठे सुरेश जोशी की ओर उठी थी। एक अपेक्षा लिए हुए दिवाकर जैसे आदमी की ये नजरें और उनके अर्थ सुरेश ने जरूर पढ़े होंगे। बहुत गुस्सा भी आया होगा उसे···पर यह देखकर जया उदास हो आयी थी कि सुरेश निश्चिन्त भाव से खाने में ही जुटा था···ऐसे, जैसे अर्से का भूखा हो। इसके विपरीत जया ने उसके चेहरे पर आश्वस्ति देखी थी। निश्चिन्तता। लगता था कि वह सब कुछ पा चुका है—या किसी किनारे पर आकर खड़ा हो गया है—किश्ती सामने। कही पार उतरने की राह पा गया है···

ऐसे क्यों निश्चिन्त हो गया है वह ?···जया ने सोचा था। क्या उसे कल की फिक्र नही है ? घर वसाने, सवारने, काम ढूढ़ने की ओर···और सबसे बड़ी वात—जया को पार उतारने की ?

यह सब सोचते-सोचते जाने क्यों जया पहली-पहली वार डरी थी··· यह डर पराया नहीं—उसका अपना डर था !···अपने से, अपने लिए !

अनजाने ही जया सुरेश को लेकर वह विश्वास, वह किरन ढूढ़ने लगी

थी—जो लग रहा था कि हाथ से फिसलने लगी है'''अंधेरे में डूबती-सी लगती है। भय की लकीर उस समय' और ज्यादा बढ़ गयी थी, जब वे परस्पर डायनिंग टेबल से विदा हुए थे। दिवाकर ने कहा था—'आल-राइट फ्रेंड्स ! अब हम सभी को आराम करना चाहिए !' बात अधूरी छोड़कर उसने डॉली के गले में हाथ डाल दिया था—वह उससे चिपक-सी गयी थी। सुरेश जोशी की ओर देखकर कहा था उसने—'अच्छा, गुड नाइट !...'

सुरेश और जया अपने कमरे की ओर चल पड़े थे।

कमरे की ओर बढ़ते हुए जया के भीतर एक अजब-सी हिचक समायी हुई थी। सोच रही थी, क्यों होती है यह हिचक ? सुरेश जोशी तो उसके अंधेरे की किरन है ? इसी किरन के सहारे चलकर अंधेरे से दूर दौड़ आयी है जया'''तब इस किरन से किसलिए भय ?...

पर नहीं जानती थी। बस, लग रहा था कि भय है। पहली-पहली बार यह भी लगा था कि जिसे किरन समझती थी—शायद किरन नहीं है। तब क्या है ? '' सुरेश जोशी क्या है ?

सुरेश जोशी क्या हो सकता है ? पहचानने-समझने के लिए बहुत कुछ उभरने लगा था जया के भीतर। यह कि वह एक परदे की परछाईं को लेकर कोई बेशर्म सवाल उठा सकता है'''यह कि वह जया पर अजनबियों के सामने दबाव डाल सकता था कि जया शराब पिये ?'''यह कि वह जया को वासना-प्रेरित नजरों के लिपटाव से बचाने की बात तो दरकिनार, उन्हें देखता तक नहीं'''? यह कि वह एक क्षणिक बचाव के लिए जया का परिचय उसे अपनी छोटी बहिन बताकर दे सकता है ?...

क्या था सुरेश जोशी ? जया तय नहीं कर पा रही है। अंधेरा या अंधेरे की ही एक किरन ?

इस अव्यक्त, अप्रकट व्यक्तित्व के साथ जया एक कमरे में होगी ? शायद एक ही पलंग पर ! बम्बई शहर—पाचवीं मंजिल, अजनबी घर, परायों के बीच ! बीते हुए चालीस घंटों में पहली बार जया को ऐसा क्यों लगने लगा है कि वह अकेली गयी है ? सुरेश जोशी को पहचानते हुए भी न पहचानती हुई !

जया के भीतर अनायास ही भय का स्रोत फूट पड़ा था। फिर मस्तिष्क से रिसता हुआ हौले-हौले उसके समूचे तन-बदन में घुल गया...इसी भय से निचुड़ती हुई जया कमरे में पहुंच चुकी थी...लगा था कि एक बार फिर से इन कुछ पलों मे ही जया ने वह सारा रास्ता पार कर लिया है—जितना ग्वालियर से यहां तक है। हजारों मील! बुरी तरह थक उठी थी। शायद पसीना आ जाएगा...जया ने महसूस किया था। और तभी एक तेज कसमसाती महक का झोंका जया ने अपने नथुनों में महसूस किया। घबरा उठी थी। सुरेश जोशी ने एक गहरी सांस लेकर हवा बाहर छोड़ी थी...ह्विस्की की गैस उडेल दी थी कमरे में। बोला था, 'अटैची खोलकर देखो तो...मैंने एक शीशी डाल दी थी उसमे।'

जया ने चौंककर उसे देखा, 'शीशी?...कैसी शीशी?'

'च्यवनप्राश का लिक्विड है उसमे!' हंसकर जोशी बोला था।

जया को ज्यादा ही हैरत हुई। च्यवनप्राश का लिक्विड भी होता है—? पहली बार सुना। जवाब न देकर चुपचाप अपनी अटैची खोली। अटैची जया की है, पर सुरेश ने उसमें कोई शीशी रख दी है...अचानक उसका मुंह ज्यादा ही बिगड़ गया था। ह्विस्की की शीशी रखी थी उसमें। बुरी तरह घिन से भर उठी थी जया। उसके कपड़ों के बीच इस गलीज चीज को क्यों रखा गया?...कुछ गुस्से से कहा था उसने, 'तुमने मेरे बक्से मे इसे क्यों रखा?...'

सुरेश का जवाब था—'इसे ग्वालियर से ही लिया था मैंने। पर कई बार रास्ते में चैकिंग हो जाती है। सोचा कि बैग में रही तो ठीक नहीं होगा, इसीलिए...खैर, लाओ, मुझे दो।'

'नहीं। मैं छुऊंगी तक नहीं इसे!' उसी तरह उखड़ाव में उत्तर दिया था जया ने। बेहद गुस्से से उबल रही थी, पर समझ में नहीं आ रहा था कि क्या जवाब दे! बस लग रहा था कि धिक्कार दे...

हंसता हुआ सुरेश उठ पड़ा था, 'तुम्हारी मरजी!...' फिर उसने वह अद्धा उठाया था। हिलता हुआ-सा पलग पर आ बैठा। गर्दन पर लगा ढक्कन हल्की-सी पकड़ के साथ ऐंठते हुए उसने उसे खोल डाला था। अगले ही पल मुंह मे शीशी लगाकर कुछ घूंट गले में उतार लिए थे। बड़

बढ़ाया—'दिवाकर ने ठीक तरह गले भी नही उतरने दी ! और इस कम्बख्त का यह दोष है कि मुंह से न लगाओ तो भली। एक बार गले से छू गयी तो तब तक आत्मा तृप्त नहीं होती जब तक कि सारे बदन में न फैल जाए !...'

भय और गुस्से के अजब-से हौल को अपने भीतर महसूसती जया देखती रही थी। लग रहा था कि अंधेरे मे अब किरन नहीं दीखती।... लगता है कि वहम हो गया था जया को। यह आदमी आतिशबाजी के एक छल की तरह जया के मन-आकाश में फूटा होगा और जया समझी कि किरन पा गयी है !...सच में शायद किरन थी ही नही। एक बार फिर उसे अपना कस्बा याद हो आया था...ग्वालियर—वह छोटा-सा गलीनुमा बाजार, बाजार में खरामा-खरामा चलती जिन्दगियां...अगले ही पल जया ने यह भी महसूस किया था कि शायद उसकी पलकों और पुतलियों के बीच कोई चीज पर्त बनकर फैल गयी है—शायद आंसू !

उसने अद्धे का मुंह बन्द किया और अजब-सी लापरवाही के साथ उसे पलंग के नीचे डाल दिया—जया पर एक नजर डाली। पूछा, 'सोओग नही ?'

और जया को एकदम से याद आया था कि सोना है। फिर लगा था कि थकान बदन में तेज हवा बनकर बह रही है। सोना होगा... पर कैसे ? बेचैन हो उठी थी। सुरेश जोशी पलग पर लेट गया था। आखे मूंदकर चित पड़ा था—'ये फिल्म लाइन भी खूब है...पहला कदम रखते ही लगता है कि गुलदस्ते मे आ लगा है आदमी। जिधर चेहरा घुमाओ—एक ताजा फूल...अब बतलाओ, ये दिवाकर भी कोई आदमी है ? उम्र, चेहरा, बदन कुछ भी नही है—पर रचना जैसी हीरोइन को पा गया ?... वाह ! वाह !'

छिः !...मन उबकाइया लेने लगा था जया का। एकदम झूठ !... यह आदमी किरन-विरन नही है—है सिर्फ कचरे का ढेर। बदबू उगलता, बदरंग, घिनौना ! ऊबती हुई वह बाथरूम में समा गयी। इस तरह की बददिमाग बातें सुनने का मन नही। असल में सुरेश से कही ज्यादा जया अपने पर ही चिढ़ उठी थी। अपने से नाराज !...पांच मिनट बाद बाहर

आयी तो देखा था कि वह उसी तरह पलकें मूंदे पड़ा है—शायद सो गया···जया ने सोचा था।

इधर-उधर निगाहें दौड़ाती हुई पलंग के पास पहुंची। इस डबलबैड का एक हिस्सा खींचकर सुरेश से अपने को अलग कर लेना होगा। उसने संकोच से पलंग का एक किनारा पकड़कर हौले से उसे खींचा था···अगले ही पल धक्का-सा लगा। दो टुकड़ों वाला पलंग नही है। वह बेचैन हो उठी। चादरा भी एक—ओढने का हो या बिछाने का—सब एक।

बेबसी मे वह यहां-वहा देखने लगी···देर तक कोई रास्ता ही नहीं सूझा था उसे। सुरेश तेज-तेज खर्राटे लेने लगा था। जया उस बड़े पलग के एक कोने से सिमटकर लेट रही थी। तेज थकान के बावजूद नीद नहीं आ रही थी उसे···कैसे आ सकती थी? इन पलों की कभी कल्पना की थी जया ने? उसके सजोए नए ससार में तो यह सब, इस तरह होने वाला ही नही था···

क्या-क्या सोचा था जया ने?···लगता था कि सब ग़लत हो गया है। पहले सोचा था कि घर बसेगा···फिर सोचा था कि मुक्ति लेकर सुरेश के साथ निकल जाएगी। यह भी सोच लिया था कि कुछ दिन भुखमरी और अभावो से जूझते हुए काटने होंगे···यह भी कि फिर बेहद साधारण ढग से ही सही, पर जया और सुरेश सदा-सदा के लिए अदृश्य बंधाव में बंधकर एक हो जाएगे···

मगर सब गलत हुआ! अविश्वसनीय ढंग से गलत!···

इस गणित में कहा था ये फ्लैट, पाचवा माला, दिवाकर, ह्विस्की की पार्टी, डबलबैड, कालीन···कहां था ये सब?

पर यह हुआ है। जया के सामने। जया का डर हजार गुना बढ़ गया था। क्यों हुआ है यह?···क्यों?···

और लगा था कि अगर झुग्गी के सत्य पर अचानक कालीन आ गिरे तो सत्य नही हो सकता!···डर बढता ही गया था···बढता ही जा रहा था—

सारा गणित गलत!···

पर गणित इस सीमा तक गलत होगा—जया कहा जानती थी?

जाना था। उस समय, जब अचानक ही हल्की-सी झपकी में गिरफ्तार जया ने अपने-आपको सुरेश जोशी की बाहों मे जकड़े हुए पाया था···हल्की-सी चीख़ के साथ उठने को हुई थी वह, पर सुरेश की बाहें कसी हुई थी। नशे के तेज-तेज झोंके मुह पर थप्पड़-सी मार रहे थे···

'सुर्-सुरेश !···' जया ने जंबड़े भीचकर कहा था। कसमसा उठी।

'हु ?···क्या है ?' वह गुनगुनाता हुआ उसके चेहरे के करीब अपना चेहरा ले आया था, 'क्या हुआ ?···हैं ?'

'छोडो ?···छोड़ो मुझे ?' वह उसकी बांह का कमरे से लिपटाव हटाने की कोशिश कर रही थी—सुरेश लगभग पूरा ही सट गया था उससे। इस सटाव के कारण कसन ज्यादा बढी हुई।

'एक···कोई पराया हूं मैं ?···' कहते हुए उसने जया की गरदन में मुह गडा दिया था।

'उफ्फ !···' जोर का एक झटका देकर जया ने उसे अपने से परे धकेल दिया था, लगभग चीखती हुई बोली थी—'शर्म आनी चाहिए तुम्हे ! ···नशे मे तुम यह भी भूल गए कि मैं···मैं कोई बाजारू औरत नही हू !··· हम—हम घर बसाने का सपना लेकर आए है। यह विश्वास लेकर तुम्हारे साथ आयी हूं कि···कि···तुम, पर,' सहसा ही जया का गुस्सा पिघलकर वह पड़ा था। वह सिसकियां भर-भर कर रो उठी। 'तुम—तुम जानते हो ना कि मैं अकेली हू ?···बेबस हूं, पर···छिः छिः ! सुरेश तुम इस कदर गिरे हुए होगे—सोच भी नही सकती थी मैं।'

'अरे ?···' सुरेश जोशी हकबकाया हुआ-सा देखने लगा था, 'तुम—तुम तो बुरा मान गयी ?···अमां मैं तो यू ही···और—और फिर, जया अब हम अलग कहां है ? हम लोग···आओ भी ! क्या कस्बाई दिमाग से काम ले रही हो ? अब—अब तुम इस मॉडर्न शहर में हो···शादी-वादी तो सब फार्मेलिटी होती है मर्द-औरत के बीच। ठीक है कि हम वह भी करेंगे, मगर इसमें है भी क्या !···कम-ऑन !' वह उठा था।

'शटअप !···मुझसे दूर रहो !' जया अचानक ही हिंस्र भाव से उसे देखती हुई दो कदम पीछे हटी थी।

'जया···प्लीज !' वह आगे बढ़ रहा था। जया के करीब पहुंचा ही

आयी तो देखा था कि वह उसी तरह पलकें मूदे पडा है—शायद सो गया···जया ने सोचा था।

इधर-उधर निगाहें दौड़ाती हुई पलंग के पास पहुंची। इस डवलबैड का एक हिस्सा खीचकर सुरेश से अपने को अलग कर लेना होगा। उसने संकोच से पलंग का एक किनारा पकड़कर हौले से उसे खीचा था···अगले ही पल धक्का-सा लगा। दो टुकड़ो वाला पलंग नही है। वह बेचैन हो उठी। चादरा भी एक—ओढ़ने का हो या बिछाने का—सब एक।

बेबसी में वह यहा-वहा देखने लगी···देर तक कोई रास्ता ही नही सूझा था उसे। सुरेश तेज़-तेज खर्राटे लेने लगा था। जया उस बड़े पलंग के एक कोने से सिमटकर लेट रही थी। तेज थकान के बावजूद नींद नही आ रही थी उसे···कैसे आ सकती थी? इन पलों की कभी कल्पना की थी जया ने? उसके सजोए नए ससार मे तो यह सब, इस तरह होने वाला ही नही था···

क्या-क्या सोचा था जया ने?···लगता था कि सब ग़लत हो गया है। पहले सोचा था कि घर बसेगा···फिर सोचा था कि मुक्ति लेकर सुरेश के साथ निकल जाएगी। यह भी सोच लिया था कि कुछ दिन भुख-मरी और अभावों से जूझते हुए काटने होंगे···यह भी कि फिर बेहद साधारण ढग से ही सही, पर जया और सुरेश सदा-सदा के लिए अदृश्य बंधाव में बंधकर एक हो जाएगे···

मगर सब गलत हुआ! अविश्वसनीय ढग से ग़लत!···

इस गणित में कहा था ये फ्लैट, पाचवा माला, दिवाकर, ह्विस्की की पार्टी, डवलबैड, कालीन···कहा था ये सब?

पर यह हुआ है। जया के सामने। जया का डर हजार गुना बढ़ गया था। क्यों हुआ है यह?···क्यों?···

और लगा था कि अगर झुग्गी के सत्य पर अचानक कालीन आ गिरे तो सत्य नही हो सकता!···डर बढता ही गया था···चढता ही जा रहा था—

सारा गणित गलत!···

पर गणित इस सीमा तक गलत होगा—जया कहां जानती थी?

जाना था उस समय, जब अचानक ही हल्की-सी झपकी में गिरफ्तार जया ने अपने-आपको सुरेश जोशी की बाहों में जकड़े हुए पाया था···हल्की-सी चीख के साथ उठने को हुई थी वह, पर सुरेश की बांहें कसी हुई थीं। नशे के तेज-तेज झोंके मुंह पर थप्पड़-सी मार रहे थे···

'सुर्-सुरेश !···' जया ने जबड़े भींचकर कहा था। कसमसा उठी।

'हूं ?···क्या है ?' वह गुनगुनाता हुआ उसके चेहरे के करीब अपना चेहरा ले आया था, 'क्या हुआ ?···हूं ?'

'छोड़ो ?···छोड़ो मुझे ?' वह उसकी बांह का कमरे से लिपटाव हटाने की कोशिश कर रही थी—सुरेश लगभग पूरा ही सट गया था उससे। इस सटाव के कारण कसन ज्यादा बढ़ी हुई।

'एक···कोई पराया हूं मैं ?···' कहते हुए उसने जया की गरदन में मुंह गड़ा दिया था !

'उफ्फ !···' जोर का एक झटका देकर जया ने उसे अपने से परे धकेल दिया था, लगभग चीखती हुई बोली थी—'शर्म आनी चाहिए तुम्हें ! नशे में तुम यह भी भूल गए कि मैं···मैं कोई बाजारू औरत नहीं हूं !··· हम—हम घर बसाने का सपना लेकर आए हैं। यह विश्वास लेकर तुम्हारे साथ आयी हूं कि···कि···तुम, पर,' सहसा ही जया का गुस्सा पिघलकर बह पड़ा था। वह सिसकियां भर-भर कर रो उठी। 'तुम—तुम जानते हो ना कि मैं अकेली हूं ?···बेबस हूं, पर···छिः छि ! सुरेश तुम इस कदर गिरे हुए होगे—सोच भी नहीं सकती थी मैं।'

'अरे ?···' सुरेश जोशी हकबकाया हुआ-सा देखने लगा था, 'तुम—तुम तो बुरा मान गयी ?···अमा मैं तो यूं ही···और—और फिर, जया अब हम अलग कहां हैं ? हम लोग···आओ भी ! क्या कस्बाई दिमाग से काम ले रही हो ? अब—अब तुम इस मॉडर्न शहर में हो···शादी-वादी तो सब फार्मेलिटी होती है मर्द-औरत के बीच। ठीक है कि हम वह भी करेंगे, मगर इसमें है भी क्या !···कम-ऑन !' वह उठा था।

'शटअप !···मुझसे दूर रहो !' जया अचानक ही हिंस्र भाव से उसे देखती हुई दो कदम पीछे हटी थी।

'जया···प्लीज !' वह आगे बढ़ रहा था। जया के करीब पहुंचा ही

था कि उढका हुआ दरवाजा एक झटके से खुल गया था। दोनों ने चौंककर देखा था—दिवाकर खड़ा है। नशे में सुर्ख आंखें···नंगा बदन—बिचले हिस्से पर एक तौलिया लिपटा हुआ। कुछ गुरगुराते हुए सवाल उछाला था उसने, 'ह्वाट इज गोईंग ऑन?···'

लज्जा—अपने ही प्रति घृणा और पीड़ा से जया सिसक पड़ी थी।

'सॉरी, दिवाकर साहब!···हम लोगों ने आपको डिस्टर्ब किया!···आय एम वैरी सॉरी, सर!' सुरेश मिनमिना उठा था।

दिवाकर रोती हुई जया और फिर एक नज़र सुरेश जोशी को देखकर बोला था, 'सुरेश!···यू आर ऐजुकेटेड फेलो। आई नो, शी इज योअर गर्लफ्रेंड, बट डांट ट्राइ टू रेप हर!···दिस इज क्राइम डीअर? एण्ड—एण्ड यू नो, दिस इज माय हाउस? एण्ड···एण्ड आय विल नेवर परमिट ऐनीवन हियर टु क्रिएट दिस टाइप आफ न्यूसेंस!···समझा तुम!' उसने आखिरी शब्द दो तेज थप्पड़ों की तरह सुरेश जोशी के चेहरे पर जड़ दिए थे।

'सॉरी सर!···मुझे बहुत दुख है। ऐक्सक्यूज मी!'

'ओ!···शटअप! लिसिन जोशी। हमारा यह बात अच्छी तरह समझो।' दिवाकर ने उसी तरह क्रोध से बिफरते हुए जवाब दिया था, 'हम अच्छा आदमी नहीं है—बैड मैन। खराब आदमी है। बट, आय हैव सम वैल्यूज। हमको शर्मिन्दा किया तुम?' फिर वह जया के पास जा पहुंचा था—"दिस इज माय हाउस, मिस जया। सो आय एम सॉरी फार···फार आल दिस!' फिर वह जोशी की ओर जा पहुंचा था—'कम विद मी, मिस्टर जोशी···कम-ऑन!···' वह अपने कमरे की ओर चल दिया था—एक नज़र जया को देखता हुआ, सुरेश उसके पीछे।

जया अब भी हौले-हौले सिसकती हुई खड़ी थी, तभी उसने देखा था—झिलमिली नाइटी में अपना नग्न बदन लहराती हुई डॉली उसके सामने आ खड़ी हुई थी, 'कम-ऑन, मिस जया!···आई विल स्लीप विद यू। दिवाकर साहब हमको बोला है। जोशी उदर—विसके साथ सोएंगा।'

और इस बार जया एकदम भौचक्की हो गयी थी। यह गणित भी

ग़लत !···दिवाकर की वे शरीर छीलती निगाहें, उनके कामुक अर्थ··· और यह सारी घटना? क्या सच में आदमी अपना सारा जीवन, अपना हर गणित इसी तरह झूठ होते पाता है? विश्वास नहीं हो रहा था···पर अगले कुछ ही दिनों में जया को विश्वास करना पड़ा था। कितनी-कितनी परतों मे जीता था वह आदमी?···कितना काला अंधेरा उसके ऊपर घिरा हुआ···पर जया ने पाया था कि उसे जितना-जितना देखो—उतना-उतना चमकता हुआ है···उस वर्फ की तरह, जिस पर सूरज की अनगिन किरनें आ गिरी हों। पर दूर, एकांत गहराइयों मे फँसी ऐसी चमचमाती बर्फ को बाहरी संसार कब देख पाता है?

अगले दिन डाली चली गयी थी। सुरेश ने उससे नाश्ते पर क्षमा माग ली थी। दिवाकर बोला था, 'दैट्स राइट सुरेश!···दिस इज प्रापर वे। आदमी को जीतना सीखो—डाट ट्राई को टु मैक मिसचीफ!··· इस अक्खा बम्बई शहर मे मिस जया तुम्हारा है—सिर्फ तुम्हे जानता है।···नेव्हर ट्राई टु मैक हर फूल!···छोटे शहर से इस जगल मे आया हुआ सेवन्टी साल का बूढा भी बच्चा का माफिक हो जाता है। कोई बच्चा को मिसचीफ करके मजा है क्या?···नो-नेव्हर!'

जया सोचती रही थी···मन हुआ था, कहे—'मिस्टर दिवाकर!··· इस शहर में आने के बाद शायद जया तुम्हे ही जानती है। सिर्फ तुम्हे। अपने से भी ज्यादा जानने लगी है···'

पर डरती थी जया···ऐसे दिवाकर से भी डरती थी। क्यो डरती थी—मालूम नही · शायद इसलिए कि पहली भेंट में ही बोला था वह— '···मेरा मतलब है कि मै आपको बहन नही मानता, न आप मेरी बहिन हैं।'

दिवाकर के कमरे में रखा जया के नाम का पैग उसी तरह मौजूद था। कई दिन बीतने के बाद जब एक दिन जया ने हंसकर पूछा था, 'कब तक इसे इसी तरह रहने देंगे मिस्टर दिवाकर?···'

'बैठो !···बैठो। प्लीज—सिट डाउन्।' दिवाकर आदत के अनुसार बड़बड़ाया था, 'वह तुम्हारे नाम वाला पैग दूं···?'

'नो—थैंक्स !'

'ऑलराइट।' दिवाकर उठ खड़ा हुआ था। एक ओर जाकर फ्रिज से कोक निकाल लाया था—'ठीक है—तुम ये लो।'

'मैं आपसे कुछ कहना चाहती थी दिवाकर साहब ?' हिचक के साथ उसने बात शुरू की थी—तीन महीने हो चुके थे रहते-रहते। दिवाकर को लेकर जया के मन का भय-सकोच गुम हो चुका था।

'यस ! बोलो, क्या बात है ? ऐनी ट्रबुल ?' दिवाकर ने आराम से घूंट लेते हुए सवाल किया।

'मैं—मै कोई काम करना चाहती हूं।'

'ऑलराइट। करो !'

'सोचती हू कि आप पर इस तरह बोझ कब तक बनी रहूंगी···'

दिवाकर एकदम चौंक गया—उसके चेहरे पर निगाहें जड़ दी।

जया ने सिर झुकाकर कहा, 'मैंने एक काम भी देखा है···'

'किधर ?'

'अपनी ही बिल्डिंग थर्ड फ्लोर में जो केमिकल्स फर्म के मैनेजर है ना'

'दास···दासगुप्ता ?'

'जी हा।' जया ने बतलाया था, 'उन्ही के यहा सेक्रेटरी का जॉब है।'

'गुड—करो !' पैग खाली कर दिया था दिवाकर ने, 'जरूर करो। बट, बी केअरफुल !—'

'क्यों ?'

'लिसिन, मिस जया !' दिवाकर ने नया पैग भरा था, 'इधर जितना आदमी है ना···औरत लोक भी है ? बोथ···बोथ आर मेन एण्ड वुमैन !··· हम ये नही बोलता—कि सब घपला ही है—पर घपला ज्यादा है। इसलिए बोला कि केयरफुल ! ये भी नही बोलता अगर यह मालूम नहीं कि तुम वुमैन है—पर जरा अलग किस्म का वुमैन है। इसलिए बोला ! ऑलराइट ?'

जया चुप हो गयी थी। जाने क्यों, मन हुआ था, पूछे—'कैसे आदमी हो तुम ?' पर सवाल नहीं किया था।

असल में दिवाकर को लेकर हजार-हजार सवाल थे जया के भीतर। सब भीतर ही भीतर उबलते रहते। वह मुंहफट था, खुला था, पर जया को लगता कि वह बहुत-बहुत गहरा—एकदम अनपहचाना आदमी है। वाचालता के बावजूद अजब-सी शालीनता से भरा हुआ।

शराब पीना, फूहड़ मजाक करना, कभी-कभार किसी जवान और खूबसूरत लड़की को अपने फ्लैट पर ले आना···यह सब दिवाकर के लिए सहज था। बल्कि यही था दिवाकर। सुरेश जोशी कहता था—'स्साला बदमाश है ! ईट ड्रिंक बी मैरी !···वाला आदमी !' पर जया को लगता कि शायद नहीं—दिवाकर कुछ अलग है। वह बिल्कुल नहीं है, जो दीख रहा है। यह होता तो सुरेश और जया को अपने घर ठहराता ही क्यों ? खिलाता-पिलाता क्यों ?···और जया को, अपनी आश्रिता को पाना चाह कर भी, पाता क्यों नहीं ? जया को उसकी अधबूढ़ी उम्र, बेडौल बदन, शराब, फूहड़ बातें सभी कुछ अच्छा लगने लगा था। बहुत कुछ था, जिसे उसने गाहे-बगाहे कुरेदा था, कुछ अचानक ही दिवाकर के भीतर से निकल पड़ा था···ऐसे ही एक बार पता चला था कि क्या कारण है जो वह सुरेश जोशी को पनाह दिए है ?

सवाल सुनकर खूब हंसा था दिवाकर···हंसता ही रहा···बुदबुदाया था, 'ओह् सच ए चाइल्डिश क्वैश्चन !···जया—तुम—तुम एकदम बच्चा है। एकदम !'

जया ने कुछ चिढकर कहा था, 'मैं तो कहूंगी कि आप ही शायद इस शहर में चाइल्डिश हरकतें करते हैं दिवाकर बाबू।···भला यहां कोई किसीको इस कदर अपने सिर पर उठाए रह सकता है ? आखिर किसलिए?···'

'यू आर परफेक्टली राइट !···' दिवाकर ने जवाब दिया था, 'पर तमको क्या ऐसा लगा कि हम कोई उपकार कर रहा है। तुम लोग पर ?'

'यह उपकार नहीं तो क्या है ?'

'तब तुम एकदम बच्चा है जया !' दिवाकर ने जवाब दिया था—'ये

बंबई शहर है। सिक्ख लोग का गुरद्वारा नहीं है। यहां लंगर नहीं चलता है कोई। हम भी कोई लगर नही चलाता है।'

'और सुरेश, मैं···ये किस सिलसिले मे यहां खा-पी रहे हैं?' जया ने जैसे उसपर हसते हुए सवाल किया था।

'बताता है, बताता है—जस्ट वेट!' दिवाकर ने सिगरेट सुलगायी थी, 'ये जो सुरेश है ना—हीरो के लिए ट्राई मार रहा है। ओ० के० ?···'

'हा।'

'और ये हीरो होयेंगा, कि नही होयेंगा—गाड नोज!—ओ० के० ?'

'हूं।'

'अब समझने का—जस्ट इमेजिन दिस कि हीरो हो गया! सुरेश जोशी हो गया हीरो!···ऑलराइट ?'

जया चुप रही।

'अब हीरो हो गया तो इसका प्राइज सीधा लाख पर जाता है... आगे और भी जायेंगा। राइट ?'

जया ने एक गहरी सास ली। लगा जैसे सवाल के जवाब में यू ही तर्क देने लगा है दिवाकर।

दिवाकर ने कहा, 'अभी ये लाख का आदमी होयेंगा, दस लाख का होयेंगा, तो हम भी उसका साथ राइज करेगा ना···ये जो सुरेश के साथ आज करता है—ये लागत है। क्या है ये···लागत! इन्वेस्टमेंट! इस बात को इस माफिक समझो!'

जया चौकी—अजब-सा गणित है—पर लगा कि बेतुका है!

'नाव कमं, आन यू।···'दिवाकर ने कहा—'तुम इधर हमारा घर में है? खर्चा करता है? खाता है, सोता है, रहता है—आलराइट ?"

'हां।'

'समझता है कि दिस इज लगर!···क्या है ये—लंगर आफ गुरद्वारा! पर नही, डान्ट थिंक दिस मैनर। अबी इस बाजू से सोचो कि तुम घर सम्हालता है। खाना बनाता है। हमारा बिजनिस का आदमी हो, पार्टी हो, अरेंज मारता है। इस स्साले फ्लैट को शेप मे रखता है—जरा इस बाजू से सोचो।"

मुस्करा उठी थी जया। क्या भोंड़ा हिसाब लगाया दिवाकर ने?···

'सो दिस इज विजनिस। गिव एन्ड टेक है ये। इसमें लंगर किदर भी नही है। कोई उपकार नही।' दिवाकर हंस दिया था, 'अबी तुम कस्बे का छोकरी है ना—सो इमोर्शंट एन्ड इमोशनल! डान्ट वी फूल योअर-सेल्फ!—दिस इज आल विजनिस! ओ० के०?' फिर वह उठा था, हंसता हुआ काम से चला गया था।

ये अजीवोग़रीब आदमी—ऊवड़-खावड दिमाग, ऊबड-खावड़ व्यक्तित्व ऊवड-खावड़ बातचीत। ये था कुल दिवाकर।

मगर क्या यही था दिवाकर?—समय ने परतें खोल दी थीं—एक दिन जया को अचानक ही मालूम हुआ था कि दिवाकर का हसना झूठ, बोलना झूठ, शब्द झूठ, यहा तक कि वह सारा गणित ही झूठ—जो वह सुनाया करता था—

पर बहुत बाद की बात है ये। तब की, जब सुरेश जोशी हीरो न होकर सिर्फ शराबी बना रह गया था—तब की, जब सुरेश जोशी के बारे मे एक दिन दिवाकर से ही पता चला था कि वह एक्स्ट्रा लडकियो की सेक्स की दलाली कर रहा है—तब की, जब एक दिन कापती, लडखड़ाती जया पसीने से सरोबार इस फ्लैट मे आयी थी और धडाम् से दरवाजा बद करके उस कमरे मे, उस टेबल के सामने आ बैठी थी—जिसके सामने बैठकर दिवाकर शराब पिया करता था, फोश बातें करता था—और साफ-साफ घोषणा कर चुका था कि वह एक बेदिल इन्सान है, पत्थर!

पर दिवाकर की कहानी कही और···तब थी सिर्फ जया की कहानी। उस जया की, जो सुरेश मे अन्धेरे की किरन देखकर बम्बई आ पहुंची थी—उस जया की, जिसने अब भी अपने दिमाग में कुछ आकड़े बिठा रखे थे—दिवाकर की कृपा के सहारे ही सही, पर एक-न-एक दिन वह जरूर ही किरन ढूंढ लेगी—आखिर लाखो की आबादी के इस शहर में क्या सिर्फ अन्धेरे ही होंगे?—एक भी किरन नही? और ये जो सडकें दमदमाती हैं, जूहू बीच के कोनों पर जलती रोशनियों में समुद्र की लहरें झिलमिलाती हैं—मैरिन ड्राइव पर शहर के गले नेकलस पड़ा हुआ है ··? सब यूं ही होगा? नही! यहां तो किरनें-ही-किरनें। रोशनी-ही-रोशनी!

काश ! जया समझ सकी होती कि किरन और नियॉन लाइट में बहुत फर्क होता है। इन्सान की बनायी किरनें इन्सान के ही खटका दबाने से जलती-बुझती है। अन्धेरों को छलने के लिए !

पर जया के साथ तो ऐसा बहुत था, जिसे वह कभी नहीं समझी। एक के साथ ही क्यों, अजित के साथ भी था···उस पूरी गली-बाजार के साथ था जो उस समय भी इस धरती के कस्बे में अपनी-अपनी तरह अन्धेरे के बीच किरनें ढूंढ रही थी। कोई प्यार की, कोई अर्थ की, कोई भविष्य की और कोई अपने आज या कल की···

रेशमा—श्वेत साड़ी में अपने जिस्म की हर ऐंठन को कसती हुई मोक्ष की राह तक रही थी। ये मोक्ष—उसके अन्धेरे की किरन थी ! मोठे बुआ लोगों के सर तोड़कर और कभी अपना तुड़वाकर पूरी व्यवस्था से अजब-सा विद्रोह कर रहा था। यह विद्रोह—उसकी अपनी किरन !···खुद अजित शरत् और प्रेमचन्द की पुस्तकों के गत्ते फाड़कर तम्बाकूवालों की दुकान पर उन्हे बेचता, पोस्टेज खरीदता और कहानियां पोस्ट करता—इस तरह लेखक बनेगा। ये लेखक बनना—उसकी किरन···

किरनें-ही-किरनें···अन्धेरा-ही-अन्धेरा—

गणित-दर-गणित—

न्यूनलाइटें !—किरनों का छल !—

· · ·

'बस !'—उस दिन पहली बार मैंने दिवाकर की शीशेवाली आलमारी से अपने नाम पर रखा पैग निकालकर गला तर किया था, रे !—कैसी तो कड़वी और कसैली लगी थी व्हिस्की ?—पर बड़ी राहत मिली।—अब भी बड़ी राहत मिली है !' यही कहा था जया मौसी ने।

एक हिचकी लेकर जया—चन्दारानी ने बात आगे बढ़ायी थी—'जिस पल जया होंठों से वह गिलास छुआया तो लगा था जैसे करीब ही खड़ा दिवाकर कह रहा है—'एक दिन आप खुद इसका यूज़ करेगा। दैन आई विल बी हैपी !—ऑलराइट ?' सोचा था—दिवाकर खुश हो

जाएगा।'

अजित टकटकी बाघे देखता रहा था उन्हे—नशे में पलकें मिचमिचाते हुए सहसा वह बुदबुदायी थी—'और—और तुझे एक मजेदार बात बत-लाऊ—मुझे वह स्साला दिवाकर ही याद आता था उन दिनों। सुरेश भी साथ ही रहता था हमारे—पर आता था याद दिवाकर!—है ना मजेदार बात?' वह हंसना चाहती थी—ऐसा ही लगा था अजित को, पर वह बुरी तरह सिटपिटा गया था, जब देखा कि बजाय हंसने के जया अपने पल्लू से आंखें पोंछने लगी है।

एक पल खामोश रहकर चन्दारानी ने कहा था—'तो वह पैग—मेरे नामवाला, फिर और पैग—दिवाकर आया तो मैंने ही दरवाज़ा खोला था। वह थप्पड़ खाया हुआ-सा खड़ा ही रह गया था सामने। शायद विश्वास नही कर पा रहा था कि मैं पीये हुए हूं—या कि पी सकती हूं?—मैंने कहा था—'क्या देखते हो मिस्टर दिवाकर!—यू-अर नॉट माय ब्रदर!—आई नो—दैट यू आर—नॉट माय ब्रदर?—' मैं उसके गले मे झूल गयी थी। वह लगभग धकेलता हुआ भीतर घुसा था—'

उसकी निगाहों मे नफरत थी। उससे भी कही ज्यादा बेचैनी। उसने दरवाज़ा बन्द किया था फिर एक पल घूरता रहा था।

हिलती हुई जया उसके सामने खड़ी थी। वे निगाहें—जो हमेशा ही नीले आसमान-सी गहरी और गम्भीर हुआ करती थीं, 'अचानक वासना की बदली बन आयी थीं। जिस सीने के प्रति वह पल-पल आवश्यकता से अधिक ही संयत रहा करती थी, वह अचानक उघड़ गया था। पल्लू कन्धे मे ढुलककर धरती छू रहा था और वह बुदबुदा रही थी—'तुमने बहुत अच्छा किया था, दिवाकर!—मेरे नाम वह पैग रख छोड़ा था तुम—तुम जानते थे न कि एक दिन—एक दिन, मैं—मैं—मान ही जाऊंगी—दैट आय एम नॉट योअर सिस्टर?—ओ—हाऊ नाइज यू आर!—'

वह हाथ का अधूरा पैग एक ही बार मे गले उतार गयी थी। दिवाकर

नफरत से बड़बड़ाया था—'इट्स ऑल शेमफुल जया !—कन्ट्रोल योअर सैल्फ !' वह आगे बढ़ा था—'कम-ऑन !—तुमको रेस्ट होना। चलो—अपना रूम में चलो।' उसने बाह थामकर जया को सहारा दिया था, फिर लगभग धकेलता हुआ बैडरूम की ओर ले चला था।

जया व्यर्थ ही हसती हुई और लगभग दिवाकर पर झूलती हुई बिस्तर मे आ गिरी थी। दिवाकर चुपचाप उन्हें देखता रहा था—उसके माथे पर हैरानी से कही ज्यादा उलझन थी। पूछा था, 'कुछ खाना पसन्द करोगी ?'

'नो !—'सिर जोर से दायें-बायें हिलाते हुए जया ने जवाब दिया था और धप् से माथा तकिये मे घुसेड़ दिया।

'ऑलराइट !—' दिवाकर बोला—'टेक रेस्ट !' वह जाने के लिए मुड़ा, सहसा जया सिर उठाकर बुदबुदायी—'दिवाकर—सुनो।'

उसने मुड़कर उसे देखा।

'मुझे थोड़ी-सी और दोगे ?' जया लगभग घिघिया उठी।

'नो !—तुम शायद बहुत ज्यादा पी चुका है जया ! [हम तो सोच भी नही सकता था कि तुम···ओह !···हम कभी नही सोचा था'...वह बेतरह बेचैन होने लगा था।

वह हसी, 'हम भी कब सोचा था दिवाकर?···हूं—कब सोचा था ? पर तुम्हारे या हमारे सोचने से कुछ होता है क्या ? नही होता !···नही होता है ना ?' अचानक उसका गला भर्रा गया था—कुच्छ नही होता है !'

दिवाकर कुछ भौचक होकर उन्हे देख रहा था···

'दिवाकर !···' जया जैसे-तैसे बैठ रही थी पलंग पर, 'एक दिन तुमने कहा था ना कि वी ऑल लिव्स इन फ्यूचर ?···हम सब आज को छोड़कर कल में जीते हैं—कहा था ना ?'

'यस, बोला था···बट···?' वह कुछ घबराने लगा था। शायद उसे लगा था कि यह 'नाम वाला पैग' यू ही नही उतरा है जया के गले में—उससे पहले कुछ ऐसा उतर चुका है—जिसे पचा नही पा रही। ओवर···

'तो बस !' जया कहे गयी थी—'हम भी कल मे जिया—फ्यूचर में। नतीजा देख रहे हो ना तुम—? मैंने शराब पी है। है ना मजेदार बात? ·· जया ने शराब पी है ? और—और अब मुझे लग रहा है कि ठीक किया।

दिस इज द राइट वे—टु लिव्ह !'

दिवाकर गंभीरता से उसके पास वापस मुड़ आया था। कुर्सी खींचकर करीब बैठते हुए उसने सवाल किया था—'हमको बोलो—क्या हुआ है ?···व्हाट इज राग विद यू ?'

जया एकदम से उदास हो गयी थी। आंखें पनीली हो आयी।

दिवाकर ने ज्यादा ही सहानुभूति से भरकर सवाल किया था, 'प्लीज जया ! टेल मी ऑल दैट। क्या हुआ ?'

जया लगातार उसकी ओर देखती रही थी, ऐसे जैसे दिवाकर एक मां है। ऐसी मां—जो बिछुड़े हुए बच्चे को अगले ही पल सीने से भर लेगी। उसकी अपनी तकलीफ से हजार गुना आहत होती हुई। जाने क्यों दिवाकर उसे मां की तरह ही दीख पड़ा था···वह एकदम रो पड़ी थी···इस तरह सिसकियां भर-भर कर, जैसे सचमुच ही मा के सीने से लगकर रोयी हो। वह ज्यादा घबरा गया था, 'प्लीज !···स्टाप इट ! बोलो—क्या हुआ ?···' उसकी आवाज कई-कई चीखो से भरी हुई थी।

रोते-रोते ही जया ने कहा था—'तुमने बोला था कि···कि दासगुप्ता···'

'क्या किया उसने ? क्या बोला तुम्हारे को ?···'

'कुच्छ नही ! कुछ भी नही, पर···पर···'

'बोलो ? प्लीज टैल मी !' वह चिल्ला पड़ा था।

'बोला तो कुछ भी नही दिवाकर···मगर···' जया ने आगे कुछ न कहकर रोते-रोते अचानक अपना ब्लाऊज चीर डाला था, 'दे-देखो !···' फिर एकदम से वह बिस्तर मे गिर पड़ी थी। फूट-फूटकर रोती हुई, 'अब कुछ नही बचा दिवाकर ! सब खत्म !···हमारा विश्वास, कान्फीडेंस, सचाई···सब ! मुझे मालूम नही था दिवाकर, मैं—मैं सिर्फ औरत हूं—सिर्फ···और दुनिया में सब सिर्फ मर्द हैं···'

दिवाकर के जबड़े भिंच गये थे। उसने जया के उस उघड़े सीने को देखा था। सीना, जिस पर खरोचें थी। छलछलाकर सूख चुका लहू ·· ऐसे, जैसे किसी लाश को नोचा गया हो। अब कुछ भी तो सुनने को नही बचा था दिवाकर के पास···कुछ भी नही। वह बिना कुछ कहे उठ खडा

हुआ था—'बास्टर्ड !···आई विल सी हिम !' फिर वह तेजी से अपने कमरे में चला गया था। क्या किया था उसने—जया को मालूम नहीं था, सिर्फ इतना मालूम था कि कुछ ही मिन्टों बाद एक धड़ाके की आवाज़ के साथ दरवाज़ा खोलकर वह बाहर निकल गया था···जया के दिमाग में झुनझुनी-सी हुई थी। नशे की कई परतें उसके जिस्म से इस सनसनी ने उतार फेंकी थी···वह कुछ परेशान, बौखलायी हुई बाहर वाले कमरे में आयी थी। दरवाज़ा खुला था···

तो दासगुप्ता के फ्लैट की ओर गया था क्या दिवाकर ? उसने सोचा था। नशे को झटकारती हुई वह जैसे-तैसे गैलरी मे आ पहुची थी। देखा था कि दासगुप्ता के घर की कालबैल बजा रहा था वह···जया का मन हुआ था कि रोके पर नशे और होश के बीच जया कुछ भी याद नही कर पा रही थी···

द्वार खुला था। दिवाकर एकदम चीख पड़ा था, 'ह्वेयर इज दास-गुप्ता ?···दैट बास्टर्ड ?···"

उधर से क्या जवाब आया, क्या नही, जया सुन नही सकी थी, सिर्फ वह दिवाकर को देख सुन पा रही थी, जो बोलने के फौरन बाद तूफान की तरह सनसनाता फ्लैट मे समा गया था।

जया बदन को सन्तुलित रखने का प्रयत्न करती तेजी से उस ओर लपकी थी···

दासगुप्ता—नाटा, मोटा, काला और बदरंग···परेशान-सा सामने था। उसके ठीक सामने था दिवाकर—चीखता हुआ, 'हरामजादा !··· तुम स्साला···लैंडी से बिहेव करना नही जानता कुत्ते !—यू ट्राइड टू रेप् हर ? —यू बिहेव्ड जस्ट लाइक ए एनीमल !'

'कमान्ड योअर टंग, मिस्टर !—' दासगुप्ता ने जैसे साहस बटोरा था, पर बुरी तरह टूट रहा था वह···एकदम पसीना छूट निकला था उसके जिस्म से। दिवाकर फिर से आगे बढा था। अगले ही पल उसने दासगुप्ता के जबड़े पर मुक्का जड़ दिया था। एकसाथ कई चीखें उठी थी। दासगुप्ता की बीबी, बच्चे और खुद दासगुप्ता की।

दिवाकर पागलों की तरह चिल्ला रहा था, 'कम !·· कम एन्ड सी—

तुम स्साला क्या किया है ?—'

रोता, भयभीत दासगुप्ता मिनमिना रहा था, 'देखो दिवाकर !··· हम बोलता है—'

'ओ यू डामिस !···ह्वाट यू टाक विद मी—ब्लडीफूल ?···' दिवाकर उसी तरह चीख रहा था। उसने गिरहबान पकड़कर दासगुप्ता को फ्लैट से बाहर खीचना शुरू किया था···दासगुप्ता की पत्नी उसे छुडाने आयी थी, पर दिवाकर उसी बदहवास आवाज मे चीखा था—'गो अवे !··· आई से, डान्ट कम बिट्वीन अस !···' सहमती, कापती औरत जोर-जोर से चीखने लगी थी। आसपास के फ्लैटों से एकसाथ कई मर्द-औरत बाहर निकल आए थे। दासगुप्ता घिसट रहा था और दिवाकर रुक-रुककर उसके भारी जिस्म को घसीटता · थमता, फिर घसीटने लगता। पाचवें माले की गैलरी मे अजब-सा माहौल पैदा हो गया था। दासगुप्ता चिल्ला रहा था, 'प्लीज़ दिवाकर ! ··मेरे को छोड़ो !···'

'छोड़ेगा ? ··तुमको छोड़ेगा—स्साला ?···यू मैनईटर ! ··आई विल किल यू !···बास्टर्ड !···आने का—इदर आने का ! उस लेडी.के सामने आने का, जिसका तुम बेइज्जती किया !···मर्द बना स्साला तुम ?···नो !···यू कैन नाट बि ए मैन, यू आर···यू आर ओनली डाग ! गन्दा,···बीमार आदमी !'

'प्लीइज···'

हाफने लगा था दिवाकर···इस सबको देखकर जया इतनी अस्त-व्यस्त हो उठी थी कि उसे समझ नही आ रहा था क्या कहे क्या करे ? ·· वह स्तब्ध-सी अपने फ्लैट के दरवाजे मे आ गयी थी। भयभीत देख रही थी उस सबको। और एक वही क्यों, सब भयभीत हो देख रहे थे ··

'कॉल पुलिस !···प्लीज पुलिस को फोन करो !' दासगुप्ता चिल्लाया।

'ऑलराइट ! कॉल पुलिस !···हम देखता है स्साला किसको पुलिस पकड़ेगा ?' दिवाकर चिल्लाया—'आई वि···विल ··' सहसा दिवाकर जोर से चीखा, उसकी आखें उबलने को हो आयी···दासगुप्ता का गिरह-बान उसके हाथ से एकदम छूट गया ! और दिवाकर जोर से सीना पकड़-कर बैठ गया···फिर उसने बदहवास इधर-उधर देखा और गैलरी में

ही विछ गया !

'कॉल डॉक्टर !…' कोई चिल्लाया, 'मिस्टर दिवाकर को क्या हुआ ?' फिर भगदड़ मच गयी। जया को याद नहीं कि क्या हुआ था ? बस, वह दिवाकर—बेहोश दिवाकर तक दौड़ती आयी थी…चीखती हुई उसे पुकारने लगी थी…'दिवाकर?…सुनो दिवाकर…?'

दिवाकर बेसुध था—जया का नशा पल-भर में ही उतर गया था। वह जोर-जोर से रो रही थी। एक आदमी करीब आ खड़ा हुआ था, 'सुनिए !…प्लीज लीव हिम ! आई थिंक ही इज सफरिंग…हार्ट-ट्रबुल…'

दो दिन बाद दिवाकर सहज हुआ था। प्रायवेट नर्सिंग होम में उसका इलाज हुआ। जरूरत से ज्यादा क्रोध के कारण ही दिल का दौरा पड़ा था उसे। जया उसके पास बैठी रहती…दिन-रात उसकी ओर टकटकी लगाए देखती रहती…कैसा मासूम लगता था वह ?…

जया खोजने की कोशिश करती…दिवाकर में दिवाकर। वह दिवाकर, जो पहली बार उसने देखा था। हंसता, निर्लज्ज बातें करता दिवाकर…बोला था—'…हम तुमको अपना बहिन नहीं मानता। तुम हमारा बहिन है भी नहीं !…'

कितनी डर गयी थी जया ?…लगा था कि किसी कोठे पर आ गयी है, पर वही दिवाकर एक दिन दासगुप्ता से जया को लेकर लड़ा…? इतना कि अपने-आपको ही गुमा बैठा ! डाक्टरों ने हिदायत दी थी, 'मैडम !…स्टिल ही इज नॉट नार्मल !…आपको बहुत होशियारी रखनी पड़ेगी।'

'जी।' बुझी-सी आवाज में जया ने कहा। कुछ दिन बाद टैक्सी से घर ले आयी थी उसे। वह बहुत कम बोलता था। बोलने की कोशिश करता और जया उसे होठों पर हथेली दबाकर चुप कर दिया करती—'नहीं !…तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं दिवाकर बाबू। कुछ मत बोलो ! प्लीज !'

वह मुस्कराता, पर अजीब बात थी। छोटे बच्चे की तरह देखने लगता। अचानक उसकी आंखें छलछला आया करतीं।

सुरेश जोशी उसी तरह जी रहा था, उसी तर्ज में। एक दिन भड़क पड़ी थी जया, 'तुम कितने ज़लील आदमी हो!···हमें और तुम्हें पालने वाला, मदद करने वाला इन्सान पिछले एक महीने से बीमार पड़ा है··· जिन्दगी और मौत के बीच रस्साकशी कर रहा है और तुम बेशर्म की तरह उसपर बोझा बने जिए जा रहे हो?'

सुरेश हंस पड़ा था। बहुत पीने लगा था। सुबह उठते ही चार घूंट गले में उंडेल लेता। वह खूबसूरत उम्र, चेहरा और शरीर···धीमे-धीमे करके बुझने लगे थे। लगता था उसके सारे फोटो रिटच करवाए हुए थे—आदमी किसी बीमारी से इस कदर बदरंग तो नहीं हो जाया करता? कहा था—'जिन्दगी और मौत के बीच रस्साकशी कौन नहीं कर रहा है जया?···तुम, दिवाकर, मैं—सब···यही तो कर रहे हैं?···कौन, किसके लिए क्या कर सकता है?'

'पर जानते हो, वह तुम्हारे लिए बहुत कुछ कर सकता है। तुम्हें धक्के देकर इस घर से बाहर निकाल सकता है!···यू नो दिस?' जया चीखी थी।

'जया—अ्!···' कमरे से पतली, गीली आवाज उभर आयी थी दिवाकर की। जया उस ओर लपकी। सुरेश जोशी मुस्कराता हुआ बाहरी कमरे में बैठा पीता रहा···

दिवाकर पलंग पर टिका हुआ बैठा था। जया के सामने आते ही सवाल किया था उसने, 'क्या हुआ?'

'कुछ नहीं—सुरेश से बात कर रही थी मैं।' जया ने टालने के-से स्वर में कहा, उसे मालूम है दिवाकर हर बात को बड़े गहरे तक महसूसता है। खुद जिस बात को बहुत उथले तरीके से कहता रहा है, उसके पीछे भी अहसास की यही गहराई हुआ करती थी। यथासंभव उससे ऐसी बातों का बचाव होना चाहिए। पर दिवाकर ने मुसकराकर कहा था, 'ही इज राइट जया!—हम सब रस्साकशी ही तो कर रहे हैं?···वी आलवेज ट्राइंग टू ऐचीव समथिंग—एंड वी डाट नो—ह्वाट इज दैट?···'

बंवई शहर है। सिक्ख लोग का गुरद्वारा नही है। यहां लंगर
कोई। हम भी कोई लंगर नही चलाता है।'

'और सुरेश, मैं···ये किस सिलसिले मे यहा स्रा-पी
ने जैसे उसपर हसते हुए सवाल किया था।

'बताता है, बताता है—जस्ट वेट !' दिवाकर ने सिग
थी, 'ये जो सुरेश है ना—हीरो के लिए ट्राई मार रहा है।

'हां।'

'और ये हीरो होयेंगा, कि नही होयेंगा—गाड नोज !—

'हूं।'

'अब समझने का—जस्ट इमेजिन दिस कि हीरो हो गया
हो गया हीरो !···ऑलराइट ?'

जया चुप रही।

'अब हीरो हो गया तो इसका प्राइज सीधा लाख प
आगे और भी जायेंगा। राइट ?'

जया ने एक गहरी सास ली। लगा जैसे सवाल के जवा
देने लगा है दिवाकर।

दिवाकर ने कहा, 'जबी ये लाख का आदमी होयेंगा,
होयेंगा, तो हम भी उसका साथ राइज करेगा ना···ये जो
आज करता है—ये लागत है। क्या है ये···लागत ! इन्वेस्ट
को इस माफिक समझो !'

जया चौंकी—अजब-सा गणित है—पर लगा कि बेतु

'नाव कमं, आन यू।···'दिवाकर ने कहा—'तुम इध
मे है ? खर्चा करता है ? खाता है, सोता है, रहता है—आ

'हा।'

'समझता है कि दिस इज लंगर !···क्या है ये
गुरद्वारा ! पर नही, डान्ट थिंक दिस मैनर। अबी इस घर
तुम घर सम्हालता है। खाना बनाता है। हमारा बिजनिस
पार्टी हो, अरेंज मारता है। इस स्साले फ्लैट को शेप मे
इस बाजू से सोचो।"

बोलना नही। हम जानता है कि हमको क्या करना है। आई नो माय जाव!'

माना नही था वह। चला गया। लौटा तो खुश था। किसी सौदे के बीच से एडवास ले आया था—दो हजार! ··लाकर जया के हाथ पर रख दिए थे। साथ ही एक कागज। जया ने पूछा था, 'क्या है?'

दिवाकर ने कहा था ···'एक ऐग्रीमेंट है। इसको इसी माफिक एनवलप में बन्द रहने दो। टेक सीक्रेट।'

जया खुश हुई थी। रुपये संभालकर देखती ही रह गयी थी उसे। कौन कहता है कि घर नही बसा उसका?···इसी तरह तो जया ने कल्पना की थी एक दिन। सुरेश, या कोई उसके हाथ पर अपनी कमाई रखेगा। श्रद्धा और विश्वास के साथ। पर दिवाकर से रिश्ता ही क्या था उसका?—इस घर से भी क्या?···

क्या सचमुच नही?···

जया घोंट लेती अपने आपको—होगा कुछ। वह सब सोचने का वक्त नही। अक्सर विगत से इसी तरह कतराया करती थी वह। दिवाकर को देखती। लगता कि कह रहा है—'वी आलवेज लिव्स इन फ्यूचर!···ये जो साल—काल मे जीने के लिए आज को झूठ करना है—दिस इज अवर नेचर!···'

और जया कोशिश कर रही थी—आज में जिए। समझा था कि दिवाकर भी आज मे ही जीता है। सिर्फ आज में!···

सुरेश कभी घर आता, कभी नही आता। जया ज्यादा सोचती भी नही। लगता था कि जरूरत ही नहीं रही है। उसे भी जरूरत कहा थी?

उन दो हजार ने काफी कुछ सभाल दिया था घर। आसपास के रास्ते पार करने के लिए कुछ दिन फिर से सहज हो गए थे। घर चलने लगा था। चार-छ. दिन बाद फिर वह बाहर निकला था ··लौटा तो दो हजार रुपये और डॉली साथ थी। पता नही डॉली का आना जया को क्यो नही अच्छा लगा था। वह उसके साथ बैठकर पीने लगा था। जया ने एक बार टोका भी था, 'तुम्हे मालूम है ना दिवाकर बाबू—इसके लिए डॉक्टर ने नाही किया है तुमको?'

नजरों से उसे देखती हुई बोली—'तुम·· तुम इसीलिए बिगड़ रहे हो ना कि डॉली के साथ रात नहीं गुजार सके? उसका जिस्म नहीं नोच सके !··· तुम्हें औरत का जिस्म ही चाहिए ना—आई कैन गिव यू दैट !···सुना तुमने? आई कैन !···'

'ओ—अ् ऽ। ··यू !···' आवेश से भरा हुआ दिवाकर अचानक उठा और उसने एक तेज, ताकतवर थप्पड़ जया के मुंह पर जड़ दिया—'शट्अप् ! ··ईडियट !'

जया के मुंह से एक तेज चीख निकली—वह बुरी तरह लड़खड़ा गयी। जोर-जोर से हांफता हुआ दिवाकर चीख रहा था, यू फूलिश गर्ल !··· यू डांट नो—दिस इज माय हाउस? · एंड · एंड आय एम बैड्मैन—खराब आदमी। समझा तुम?···हम—हम खराब आदमी है। सो—सो आय ऐन्जौय विद ओनली प्रासीच्यूट्स !···नॉट योअर टाइप आफ डैड गर्ल्स !···समझा तुम !·· गेट आऊट !·· सुना तुम ? आई से—गेट आऊट !'

जया भयभीत उसे देखती ही रह गयी थी—उसकी आंखें उछली पड़ रही थी। सांस तेज-तेज चल रही थी और जिस्म पर पसीना उभरने लगा था। घबरा उठी थी वह। उसे लगा था कि वह पागल हो रहा है··· शायद हो ही चुका है। सिटपिटायी हुई-सी चली आई थी अपने कमरे में। रो पड़ी थी···पर अचानक ही उसका मन हुआ था हंस पड़े। खूब हंसे। इतनी कि हंसते हुए रोए···रोती ही रहे !···

कुछ-कुछ आंसू भी कैसे मीठे और खुशी में भरे-भरे होते हैं · ? ये आंसू समझ लिए थे जया ने। बहुत अच्छे लगे थे। उसका थप्पड़, गाल पर उभरी वह सूजन···सब कुछ अच्छा लगा था उसे।

वह लौट पड़ी थी अपने कमरे से—उससे माफी मांग लेती। इसी तरह रोते हुए। पर दिवाकर के कमरे में घुसते ही एक चीख निकल गयी थी मुंह से। दिवाकर धरती पर औंधे मुंह गिरा पड़ा था···शराब का गिलास फैला हुआ···टेबल की बोतल एक तरफ लुढ़कती हुई। उसने झपटकर उसे सीधा किया था। सांस चल रही थी उसकी। शरीर पसीने से नहाया हुआ। वह उसे झकझोरने लगी थी—'दिवाकर !···आंखें खोलो

दिवाकर ?···जवाब दो कि उस दिन तुम झूठ क्यों बोले थे ?···क्यों कहा था कि तुम्हारे दिल नहीं है ?···ये दिल का दौरा क्या बिना दिलवालों को पड़ता है ?···'

एक बार फिर वही दौर शुरू हो गया था···डॉक्टर, अस्पताल, दवाएं···पैसा ··

पर कौन जानता था कि ये दौर न जीवन का होगा—न मौत का···

'काश !···दिवाकर जी सकता अजित ? ··और काश !···वह मर ही सकता !' जया मौसी के आंसू बह आये थे···

कहानी उतनी ही रह गयी थी ··उखड़ा हुआ अजित दूसरे दिन आने का संदेशा कस्तूरी को सौंपकर लौट आया था···

पर लौट सका था क्या ? ··लगता था—वहीं बैठा है। कथासागर से एक घूंट जल पीकर तृप्ति-अतृप्ति के बीच छटपटाता हुआ !

एक जया मौसी की कहानी अटक-अटककर चलती हो—ऐसा ही तो नहीं है ? सबकी कहानियां इसी तरह बीच-बीच में अटक जाती हैं ··अजित को याद है—कुछ-कुछ इसी तर्ज में कितनी सारी कहानियां तो अटकी रह गयी थीं ··? सारी गली की कहानियां। एक-दूसरे से गुंथी-जकड़ी कहानियां ··

जया मौसी की कहानी दूर—बहुत दूर घटती हुई भी उसी गली से जुड़ी थी—पर तब अजित दूर था ··इसलिए कहानी—कहानी होकर भी कहानी नहीं रही थी···रह गयी थीं सिर्फ यादें···

और अब, जब सब कहानियों को लिखने बैठा है—या यों कि जया मौसी की कहानी पाकर उन सबको लिखने के लिए भी लाचार हुआ है—तब कहानी नहीं, यादें लिख रहा है।

दिवाकर के न जी पाने—न मर पाने पर छूट गयी है कहानी···जब तक फिर से जया मौसी न मिलें—तब तक तो छूटी ही रहेगी···

ऐसे ही उस दिन वर्टोनिया, सहोद्रा, सिरीपालसिंह, सुनहरी, रेशमा

और मिन्नी की कहानी छूट गयी थी ? अजित ट्रेन में जो सवार हो गया था ··उसके अपने गणित में ये ट्रेन थी। इसलिए कि केशर मां को एक 'शॉक ट्रीटमेंट' देना था। आखिर मालूम तो हो कि अजित उनका इकलौता बेटा है ! ··ऐसे कष्ट देंगी तो अजित इसी तरह करेगा।

ट्रेन मे बैठते ही सबसे ज्यादा याद आयी थी बटनिया · उपन्यास हाथ में था पर पूरा पेज पढ़ जाने के बावजूद अजित समझ नही सका था कौन चरित्र, कहा से उठा, किससे जुड़ा, क्या रिश्ता ··और उपन्यास की जमीन क्या ?—कैसे याद आता ? याद तो बटनिया आ रही थी।

बटनिया यानी वैनयती !

कहती थी—'च्-च् ! आग लगे इस जीभ को। बुरी आदत पड गयी है ना···' अजित ने उपन्यास बंद किया था। ट्रेन के बाहर देखने लगा था। महसूस हुआ जैसे बटनिया उसके पास खड़ी है। कहती है—'···तुम आज ही सोच लो। कल तो भइया लौट आएगे ना ?'

अजित ने 'यूं ही' के भाव से टाल दिया था उसे। वह लौट गयी थी, बडा विश्वास सजोए हुए। · अजित ने चलती ट्रेन में सोचा था - जब लौटेगा, तब तक तो वह विदा हो चुकी होगी आंगन से।···उसने हरदोई के काले, आबनूसी चेहरे के गले मे वरमाला डाल दी होगी और बस !

चदनसहाय ने कहा होगा—'बस, मैं तो गगा नहा लिया, केशर मां ! हरदोई वालों को भगवान चित्रगुप्त बनाये रखें। लाज रखली हमारी ! ·· बटनिया जैसी अपढ़ को पालकी बिठाकर ले गये !···भगवान उन्हे सुखी रखे !'

और केशर मा का जवाब होगा —'उस ऊपर वाले की लीला वही जाने ! जिस लडकी को लेकर तू सालों से ठोकरें खाता घूम रहा था, बेटा यों गिरा गोद मे जैसे आम पेड़ से टपका हो !···'

और चदनसहाय की घरवाली बडदस्तो फौरन कहेगी—'हा, चाची। ठीक ही कही तुमने। सजोग की लीला है सब !···'

केशर मा तुरन्त लीला को व्यापक कर देंगी—'सही बात ! अब यह भी तो सजोग ही है कि अजित के बाप की दूर-दूर कीरत फैली थी और औलाद ऐसी मिली लगता है भूखी मरेगी !···'

फिर उनकी आंखें भर आएंगी ··चदनसहाय और वड़दत्तो फौरन कहेंगे—'नहीं-नहीं, केशर मां ! ··भगवान पर भरोसा रखो। अजित का दिमाग ठीक हो जाएगा। अभी है ही क्या, लड़का ही तो है ··सत्रह-अठारह भी भला कोई उमर होती है ? ··एकदम खिलक्कड़ उमर !'

'बदमाश कही के !' उस दिन ट्रेन में ग्वालियर छोडते हुए अजित ने एक गाली सोची थी। सरस्वती-साधना को कहते है दिमाग खराब हो गया है अजित का। अजित ने यह भी तय किया था कि केशर मा के शॉक ट्रीटमेंट की अवधि पूरी होते ही शहर लौटने पर सभी को ठिकाने लगायेगा · वह मुंहतोड जवाव दिया करेगा कि वस ! भले मोठे बुआ जैसा दादा ही क्यों न हो। कहता है—'अबे, तू हमेशा ही पोगा पडित रहा। आंगू भी रहेगा। सव मोहल्ला कह रहा है—मिन्नी के चार महीने का पेट था।'

वदमाश मोठे !···अजित ने तय कर लिया था उम दिन। अगर फिर कभी ऐसी वात उठी तो कह डालेगा—'रहने दो बुआ !···पेट मिन्नी के था और कराह तुम रहे हो। इस मोहल्ले वाले क्या कहेंगे—पहले अपने पेट तो देख ले। ··हुह !'

चार दिनों बाहर रहा था और उन चार दिनों मे यही कुछ सोचकर खुश हो लिया था···सोचा था कि चार-छः दिन और रुक ले, पर पाचवें दिन ही अजित को लगा कि भागा था घर से इसलिए ताकि केशर मा को शॉक लगे, पर अव महसूस होने लगा था जैसे खुद ही शॉक ट्रीटमेंट ले रहा है···सव तो याद आने लगे थे। मन उखड़ गया···वे सब कहानिया, जो गली में छूट गयी थी कुछ दिनों के लिए···

वापसी का मतलब था—उन्हे फिर से पा जाना।

अजित को याद है, उस दिन वारिश हो रही थी, जब ग्वालियर स्टेशन पर उसने वापिस पैर रखे···

तीन

खूब ठंड, पर अजब कसमसाहट से भरी हुई। मन दुविधा के कीचड़ में लिपटा-लिपटा मालूम नहीं कि केशर मां पर घर से इस चार दिन की फरारी का असर क्या हुआ हो? हो सकता है कि देखते ही गाली दें—कहे—'नासपीटे? 'मुझे शक्ल नहीं देखनी तेरी, भाग यहां से'···अजित कुछ कहना चाहे या उनकी ओर देखने का साहस करे—उसके पहले ही सामने रखा पीकदान सिर पर फेंक मारेंगी।

तांगे की टिकटिकाहट के बीच अजित को लगा था कि उसकी सांसें कुछ तेज हो गयी है। उसने जैसे अपने धीरज को बंधाया था—नहीं-नहीं, ऐसा नहीं होगा! भगवान चाहेगा तो अजित के लिए रोती-कलपती मिलेंगी केशर मां!···आखिर इकलौता बेटा है अजित। कभी-कभार औरतें इकट्ठा होती है तो बतलाती हैं—बड़ी मुश्किलों से जनमा है अजित, केशर मां पर मसान की छाया थी। ये जो मसान की छाया होती है, इसमें एक खास तरह जन्म के तीसरे दिन बच्चे लाल-पीले होते हुए मर जाते हैं। ऐसे-ऐसे छह बच्चे अजित से पहले हुए थे केशर मां के। सब मर गए। फिर बड़े पूजा-पाठ की देन—ये अजित! ऐसे अजित के लिए रोती-कलपती ही मिलेंगी। ये माएं ऐसी होती हैं। सब लेखक तो मानते हैं कि पल में छुरी पल में कपास! वही है मां का स्वरूप! बस, अजित निश्चित हो गया था। वैसा कुछ नहीं होगा—जिसे लेकर डर रहा है।

अजित ने गली के मोड़ पर आकर तांगेवाले को पैसे दिये थे, फिर सहमता-सहमता गली में घुसा था··

सरदार मराठे का वाड़ा···वार्ड नम्बर···

आज चार दिन बाद ही आया है तो कैसा लग रहा है ? ऐसे जैसे सब पा गया हो···पर क्या ? यह पता नहीं । बस, लगता है जैसे कुछ मिल गया । अजित के भीतर कुछ खिल आया था । महकता, चमकता हुआ । कल सबसे मिलेगा ··सबसे ! अजित जानता है, सब अपनी-अपनी कहानी में कुछ-कुछ अलग-अलग किस्म का गलत लिए हुए हैं, फिर भी अजित को अच्छा लगेगा । क्यों होता है ऐसा ?···

कहीं किसी पुस्तक में पढ़ा था अजित ने—यह होता है—इसीलिए आदमी, आदमी है ।

पिछवाड़े के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ है अजित । बारिश है, पर उसका अहसास गुम गया है । अहसास में हैं सिर्फ केशर मां । जाने क्यों थूक निगल लेता है भीगते हुए भी अजित । घबराहट होनी तो नहीं चाहिए, पर होती है मगर दरवाजा तो खुलवाना ही होगा । होले-होले थपकियां देता है वह···

'कौन ?'

ये चन्दनसहाय की आवाज है !···अजित पहचान चुका है । इसी आदमी के मिमियाते स्वभाव को काम लेना होगा । कहेगा—आज अपने यहां ही सुलालो । सुबह केशर मां के सामने पहुंचूंगा !···और अजित को मालूम है—चन्दनसहाय उसी तरह के लोगों में से है कि जिनका बस चले तो मंदिर से मूरत भी उड़ालें और किसी सन्डास से फ्लश पाट भी । बड़ा लोभी । छोटा, बड़ा कोई हो—सब पटे रहें उससे । इसी किस्म का आदमी । जवाब न देकर फिर से थपकियाँ बरसा दी हैं किवाड़ पर ।

स्साला डरपोक भी है चन्दनसहाय । बहुत घबराया-सा आयेगा··· ऐसा ही हुआ । वह भीतर किवाड़-पार से ही फुसफुसाया था,···'क-कौन ?'

'मैं···अजित !···भाईसाहब, मैं अजित हूं !' अजित ने गुनगुन करते भवरे के स्वर मे कहा ।

'अरे-रे···तू ?' चन्दनसहाय ने फौरन दरवाजा खोला । बड़बड़ाया, 'अरे, तूने तो हद की रे !···कहां चला गया था ?···यहां···'

'शी-शी···!' अजित ने कहा, 'भीतर बात करेंगे । मैं भीग गया हूं ।'

'अच्छा-अच्छा !' कहकर चन्दनसहाय फौरन उसके पीछे-पीछे हो लिया। बरामदे में आ पहुंचे थे दोनों। चन्दनसहाय ने देखा—अजित सारा भीग गया था। बैग भी भीगा हुआ। बोला—'तू कपड़े बदल ले। फिर बात करते हैं।' चन्दनसहाय भीतर वाले कमरे में गया। अजित ने थरथराते हुए सोचा—बटनिया होगी या नहीं ?···होगी। अभी चार दिन में शादी-ब्याह थोड़े ही निबटते हैं। तीन दिन तो बारात ही ले लेती है ··फिर उससे पहले तेल-फुलेल। न जाने क्या-क्या खटराग ! आदमी को अच्छा-खासा लंगूर बना दिया जाता है और लड़की परतें छील-छीलकर सेम की फली। नासेत ! चन्दनसहाय की भीतर से फुसफुसाहट आयी, 'तौलिया कहां है ?'

'क्यों ?' बड़दत्तो की आवाज।

'अरे, क्यों और क्या बाद में करना—वह बाहर अजित खड़ा है भीगा हुआ।'

'हाय !···अजित आ गया ?' बड़दत्तो की बुदबुदाहट।

चन्दनसहाय तौलिया लेकर बाहर आया। मैल से बदरंग, रोयें घिसे हुए। जाने क्यों अजित का मुंह बिगड़ गया। बदबू आयेगी इसमें से। सांस थामकर चेहरा पोंछ लिया अजित ने।

चन्दनसहाय ने कहा—'ऊपर जाकर ही क्यों नहीं लेटता ?···'

'मां अभी शोर मचा देगी।' अजित तौलिया लपेटकर जल्दी-जल्दी कपड़े बदल रहा था। बटनिया नहीं दीख रही कहीं ? मन हुआ पूछ ले··· पर नहीं। भद्दा लगेगा। वह चुप था।

चन्दनसहाय बोला—'ऊपर—सीढ़ियां चढते ही जो कमरा पड़ता है ना—उसमें बटनिया सो रही है। तू वहीं चला जा। वह अपनी जगह छोड़कर बेजार मां के पास आ सोयेगी। तू वहां सो रहना।'

'पर···' अजित कुछ सकपकाया। कहा, 'बटनिया उधर जायेगी तो वह जग नहीं जायेंगी ? मुझे देखते ही शोर मचा देंगी।'

'हूं ··यह तो है।' एक पल उसने सोचा। जवाब दिया—'बटनिया को समझा देना। उनके पास जाकर कह देगी कि अकेले में डर रही थी, इसीलिए चली आयी ··रात की बात टल जायेगी। यहां तो कोई ढंग का

कपड़ा भी नहीं है, नहीं तो ···' वह इधर-उधर देखता हुआ बड़बड़ाया था।

बात अजित को भी जमी। कहा, 'ठीक है। जाता हूं···कल बातें करेंगे।' कहकर पल-भर की देर किए बिना अजित सीढ़ियों की तरफ लपका। दूर की यात्रा के कारण मन हो रहा था कि तुरंत सो जाये। सीढ़ियां चढ़ते हुए एक घबराहट मन में थी। बटनिया ने कहा था—'आज ही सोच लेना। कल तो भइया लौट आयेंगे।' आठ दिन पहले की बात है अजित कतराकर घर से भाग गया था ··बटनिया ने अपने जोड़े हुए सारे रुपये, जेवर अजित के सामने ला रखे थे। जितनी बातें हुई थीं, उनसे यही पता चला था कि जबरदस्ती का बोझ मानकर उसे शादी के नाम पर किसीके भी पल्ले बांधकर धकेला जा रहा है। बहुत दुखी थी। अजित से बात-बात में कह गयी थी कि वह उसे पसद करती है। उसी के साथ कहीं भी चली जाएगी। पर अजित कायर ! ··उसकी संवेदना, समर्पण और विश्वास को झुठलाकर भाग निकला था ··अगले चार दिनों में ही हरदोई के काले बावनूसी चेहरे से बटनिया के व्याह की बात पक्की होने जा रही थी···छि: ! ··अजित ने बहुत छल किया। सीढ़ियां जैसे-तैसे चढ़ सका था अजित। ऊपर पहुंचा तो लगा था, ज्यादा ही थक गया है। बटनिया को ही जगाना होगा ··पता नहीं क्यों, वह ऊपरवाले बरामदे में आकर कुछ देर के लिए थमा रह गया। साहस नहीं हो रहा था कि उस छोटे कमरे में धंसे, जिसमें बटनिया सो रही है···

घुप्प अन्धेरा। तिस पर एक लय में बजती हुई बारिश। इस बरामदे पर एसबेस्टस की छत है। शोर दोहरा हो गया है। अजित पलभर सोचता रहा था कि क्या करे ? एक बार मन हुआ कि सीधा केशर मां के कमरे में ही जा पहुंचे। पर इस भय ने डरा दिया कि अभी शोर मचा देंगी। गुस्सा हुईं तब भी कई घण्टे लगेंगे। खुश हुईं तब भी काफी चीखेंगी-चिल्लायेंगी। नहीं यह समय ठीक नहीं। बटनिया को ही जगाना ठीक और यों भी कब तक कतरा सकता है बटनिया से ? उसका सामना करना ही होगा। आज नहीं तो कल। आगन में टहलती हुई सवालिया निगाहों से वह उसे देखेगी···होंठों से कुछ न कहकर वे निगाहें ही काफी कुछ

धिक्कार देगी उसे। अजित होने से कमरे की देहरी पर जा खड़ा हुआ था ''थूक निगलकर अन्धेरे में हाथों और निगाहों से व्यर्थ ही आगे को टटोलता हुआ आगे बढ़ा, फुसफुसाया, 'वटनिया ?···ऐ-ए···'

'मैं जग रही हू।' उसकी कुनमुनायी हुई आवाज आयी।

अजित को बदन मे करन्ट-सा लगा। वटनिया की ये आवाज और इस तरह ? कब से जग रही है वह ?···क्या तभी से, जब से अजित आया है ·· जरूर वह दरवाजे की थपकिया सुनकर जाग गयी होगी।

अन्धेरे में होले से चूड़ियों की रुन-झुन हुई, जिसका मतलब था कि वह उठ रही है या कुछ कर रही है। अजित वहा थमा खड़ा था।

हल्की सी खट् की आवाज के साथ माचिस की तीली जली···अजित की आखें एक पल को छोटे-से टुकड़े में चिमचिमायी। वटनिया ने लालटेन जला दी थी।

अजित ने इसका चेहरा देखा ''इस तरह जैसे चोरी की हो। याद आया। एक बार बोली थी—'तू मुझसे बैनवती कहा कर और मैं तुझे नाम लेकर पुकारना बद कर दूगी ''तू भी नही कहूगी···'तुम'···है ना ? और फिर इसी तरह कभी तू और तुम बोलने का एक कोर्स ही करने लगी थी वह। अजित ने भी एक-दो बार बैनवती ही कहा था···कुछ दिन पहले की बात है। पर यह सब छोड़कर कायर साबित हुआ अजित। भाग निकला ! अजित अपने लिए घिन से भर उठा।

वटनिया उसे देखने लगी थी। बोली, 'मैं तभी जाग गयी थी जब भइया ने तुझे दरवाजा खोलकर भीतर बुला लिया था···'

अजित कुछ कह नही सका। सिटपिटाया हुआ खड़ा रहा। क्या कहे इससे ''किस शक्ति से कहेगा ?···और बोलकर भी पायेगा क्या ? शब्द जमे रह गए लगते हैं। कायर के उखड़े पैर। कहीं पढ़ा है अजित ने। विश्वासघाती अपने ही भीतर घुटने लगता है तुरंत वहीं तो कुछ समय बाद···और अजित विश्वासघाती है !

'बैठ।' वह बुदबुदायी, 'सीढ़ियों के पास पहुचकर मैंने तेरी और भइया की बातें सुन ली थी।···पर मैं केशर मा के पास नही जाऊंगी। अभी घण्टा-भर हुआ नींद लगी है उनकी। एक बार जगीं तो सब रात नहीं

सोयेंगी…'

अजित सिटपिटाया हुआ-सा बैठ रहा। बटनिया ने उसके लिए एक और बिस्तर लगा दिया। इसी कमरे में बहुत-सा सामान रखा है, इसलिए सुविधा हुई।

'कहा-कहां घूमा तू ?' बटनिया ने पूछा।

वह लेट रहा था। बोला—'ऐसे ही। घूमना-फिरना क्या ! बस, ऐसे ही रहा सब…'

बटनिया लेट रही। लालटेन की बत्ती धीमी कर दी थी। अन्धेरे और उजाले के बीच अजब-सी सिहरनों से भरा हुआ अजित। बहुत देर बाद जैसे कुछ याद हो आया था उसे, 'क्या बात है…लाइट…'

'हा, लाइट नहीं।' वह बुदबुदायी। एक पल की खामोशी के बाद कहा था उसने, 'क्यों नहीं है—यह क्या तुझे नहीं मालूम ?'

अजित को हल्का सा झटका लगा। याद आया—करीब महीने-भर पहले केशर मा ने लाइट का बिल जमा करने भेजा था अजित को। वह सिनेमा देख आया था। कहानियां लिखने के लिए कागज खरीदे थे, कुछ पोस्टेज। जाहिर था कि बिल जमा न होने कारण लाइट…

'तीन दिन पहले कट गयी !' बटनिया ने कहा।

अजित ने आपने आपको अचानक ही सामने बेहद, छोटा और अपमानित महसूस किया।

वह चुप थी अजित ने कोशिश की कि सो जाए।…पर सोना सहज नहीं। पाच-सात मिनिट तक पलकें बन्द करने के बावजूद नहीं सो सका था। बटनिया की उपस्थिति कितनी ही तरह तो उसे नहीं सोने दे रही ?…इस अपढ, घर-घुसरी लड़की के साथ अजित ने 'यू ही सही', पर धोखा किया है। एक बार बोली थी—'…मुझसे जैसा कहोगे, वैसा ही करूंगी।…' उसने अजित को इससे कुछ पहले एक पोटली में बहुत-से रुपए, पायलें, छल्ले, और इयरिंग दिये थे। कहा था—'तुम रख लो इन्हें।…मुझे मालूम है—तुम डरते नहीं हो।…सब सम्हाल लोगे। फिर बाहर भी तो खूब घूमे फिरे हो तुम ! बस—इसमें से बीस रुपए मैं रख लेती हूं।'

अजित कुछ पूछे, इसके पहले ही उसने कहा था—'मैं…मैं बिछुए

बनावाऊगी ना ?' वह अजित को पढ़ा-लिखा, समझदार और जिम्मेदार लड़का समझती थी, उसके नाम से बिछुए पहनने को तैयार थी···क्या सिर्फ इसलिए कि चन्दनसहाय ने—उसके भइया ने—उसके लिए जो वर खोजा था—वह चेचक के दागों वाले, बेडौल, काला आदमी था ! बटनिया इसी तरह कही; किसी भी भट्टी में अपने आपको झोंकवाने को तैयार नहीं थी। उस पल अजित ने सोचा था—ठीक भी है। आखिर किसलिए बटनिया के साथ यह ज्यादती की जा रही है ? वैसी लहराती चाल, वैसा पूरबूरन गोरा शरीर। एक चमकती पल्लूवाली साड़ी पहने हुए हो तो किसी भी मधुबाला के सौन्दर्याभिमान तोड़ डाले—ऐसी बटनिया ! बहुत ज्यादती हो रही थी उसके साथ !

मगर अजित ने क्या कम ज्यादती की उसके साथ ?···इस पल अजित अपने आप में इस कदर बौना हो गया था जैसे खुद को ही नहीं देख पा रहा। जब उसे ले चलने के लिए हां भर चुका था—तब वह निश्चिन्त हुई होगी। खुश भी !·· वही अजित अचानक एक बहाने से पोटली उसे लौटाकर शहर से ही भाग निकला ··लग रहा था जैसे उसी ने बटनिया का सपनीला शरीर और सुन्दर आत्मा हुरदांईवाले उस जल्लाद के हाथों सौंप दी। बहुत कायरता की।

"सो गया तू ?···" वह बड़बड़ायी।

अजित ने चादरे में मुंह घसाये हुए जवाब दिया था नहीं।'

वह फिर से चुप हो गयी थी।

अजित को लगा था, कुछ कहकर, शायद झूठ बोलकर ही बटनिया को सन्तोष देना चाहिए। ऐसा किए बगैर आंख नहीं लगेगी ··कहा—'बटनिया···नहीं—बैनवती ?' असल में मुझसे बड़ी भूल हुई ··मुझे मां पर इस कदर गुस्सा करके घर से नहीं भागना था ··'

आगे कुछ कहे, इसके पहले ही बटनिया का बांस की तरह चिरा हुआ स्वर आया था, 'मुझे बटनिया ही कह !···बैनवती अच्छा नहीं लगता।'

'मगर तूने तो एक बार कहा था···'

'हां, कहा था, पर उस वखत मैं भी तुझे 'तुम' कहनेवाली थी···फिर, वह बात ही शायद अलग होती···पर अब कुछ नहीं !' उसने एक गहरी

सांस ली।

'तू गुस्सा हो गयी है···?' अजित ने अनचाहे ही पूछ डाला। कल्पना नहीं थी कि इस छोटी-सी, सहज बात पर बटनिया उस तरह फूट पड़ेगी! अचानक वह उठ बैठी थी। क्रोध से अजित को घूरते हुए कहा था—'तू क्या समझता है कि मैं अपढ़ हूं तो मुझे यह भी मालूम नहीं कि गुस्सा किस पर होऊं, किस पर नहीं?···मैं किसलिए गुस्सा हो सकती हूं तुझ पर? · और क्यों? तेरा-मेरा नाता ही क्या? तू ब्राह्मण, मैं कायथ। तू मकानमालिक, हम किरायेदार ··क्यों गुस्सा होऊंगी?' फिर वह रुआंसी हो गयी।

अजित कुछ ज्यादा ही घबरा गया·· घबराहट से भी कहीं ज्यादा डर। बटनिया की आवाज क्यों ऊंची हो गयी थी, कितनी ऊंची हो गयी थी ··? भयभीत होकर देखने लगा था उसे, जैसे आंखों से कह रहा हो—'जरा धीरे बोल बटनिया···केशर मा जाग गयी तो···?'

नाक सुड़कते हुए बटनिया ने कहा था—'फिर मैं हूं लड़की की जात · हमें गुस्सा ही क्यों आना चाहिए? मैं नहीं हूं—गुस्सा-बुस्सा!' वह फिर से लेट रही। अजित कुछ ही फासले पर लेटा था। बटनिया ने करवट बदल ली, 'भुनभुनाती हुई कहे गयी—'कभी औरतें भी गुस्सा होती है? फिर भइया ने तो कुछ भी नहीं किया। उन्होंने तो बहुत अच्छा किया है। उन्होंने कह दिया था पहले ही—भीष्मपितामह के जमाने में एक अन्धे से गांधारी नाम की सुन्दर लड़की ब्याही गयी थी···वह भी कोई गुस्सा हुई थी भला?···फिर हरदोईवाले की तो दोनों आंखें है। जरा माता के दाग हैं मुंह पर·· सो उससे क्या होता है? औरत जात को इसमें गुस्सा क्यों होना चाहिए?' गान्धारी ने अपने अन्धे घरवाले को देखते ही सारी उमर के लिए अपनी आंखों पर पट्टी चढ़ा ली थी—एक तरिया खुद ही अंधी हो रही। पर···पर वह गुस्सा नहीं हुई! पूरे महाभारत में लिखा है।'

अजित को लगा था कि जितना पढ़ा है—बंकिम, शरत, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र···सब हवा में उड़ा जा रहा है। लगा कि इन लेखकों की किताबों के साथ-साथ उसने वह सब पढ़ा-लिखा भी तम्बाकूवाले के यहां रद्दी में

पेप घाया था···बटनिया का पड़ा-लिखा उसके सामने। महसूस हुआ था जैसे किसी किताब को ही पढ़ रहा है···ये लड़की नहीं—पूरी किताब है। खूबसूरत जिल्दवाली, पर इसका हर सफा रोता हुआ।

'···मुझे-मुझे तो···आंखों पर पट्टी भी नहीं बांधनी पड़ेगी? कम से कम हरदोईवाले के पास आंखें तो हैं। मैं—मैं किसलिए गुस्सा होऊंगी?··· फिर तुमपर क्यों?···यों भी औरतें गुस्सा ही कब होती हैं।' बटनिया सिसकने लगी थी।

अजित की समझ में नहीं आया था कि क्या करे? बस, वह भी चादरे में मुंह दिये-दिये रुआंसा हो आया था। बटनिया की खातिर नहीं, अपनी खातिर। बोला था—'अब मैं क्या करता बटनिया?···तू क्या मेरी हालत जानती नहीं? मेरा भी बहुत मन था कि ··पर, पर ये चार दिन बाहर घूम के देख आया हूं। बिना पैसे कोई पूछता ही नहीं! फिर मैं हूं सिरफ मिडिल पास। ढंग से हाइस्कूल भी पास नहीं कर पाया। चपरासीगिरी मिलेगी और उसमें···तू भी तो समझ ही सकती है···'

'समझती हूं, इसलिए तो कह रही हूं कि अब न तू मुझे 'बैजवती' कह न मैं तुझे 'तुम' कहूंगी—झंझट मिटी!' उसने चादरे में चेहरे पर हाथ घुमाये—हरकत हुई। अजित ने कुछ समझने की कोशिश की—शायद आंसू पोंछ रही है वह।

अजित चुप हो गया था। देर तक खामोशी ही रही। वह कुछ नहीं बोली। अजित ने पलकें मूंद लीं। मन कुछ हल्का हुआ। चलो, यह बटनिया से आंख मिलाना एक झंझट लग रहा था—इस बोलाचाली से वह भी मिटा। अब निश्चिन्त। पर सहसा बटनिया फिर बोल पड़ी—'सब जानते हैं कि तू कहानी-किस्से लिखता है···पढ़ाई-लिखाई में तेरा मन नहीं है। केसर मा कह रही थी कि तू आगे की सोचता ही नहीं। क्या तुझे यह नहीं दीखता होगा कि इन कहानी-किस्सों से क्या होगा?··· जरूर दीख रहा होगा—और सोचा नहीं हो, सो भी नहीं। पर तू फिर भी लिख रहा है?'

अजित कुछ भौचक्का हो गया था—कहना क्या चाहती है वह?··· अजब-सी उखड़ी-उखड़ी बातें करने लगी थी वह। अजित को लगा था कि

हरदोई वाले लड़के के कारण दिमाग गड़बड़ाने लगा है उसका···उपन्यासों में कई-कई सीन पढ़ रखे हैं अजित ने। कोई सुन्दर लड़की अपने लिए बड़े-बड़े सपने सजो रखती है, पर जब घरवाला सामने आता है तो लगता है—दीवार पर लटका कांच नीचे गिरा है और टूट गया है। सब सपने छार-छार, बिखरे हुए। और जब-जब ऐसा होता है—तब-तब लड़की का मन टूट जाता है। इसी तरह उखड़ने लगती है। बस, बटनिया के साथ भी यह गड़बड़! हरदोईवाला लड़का सामने आ पड़ा···और बटनिया छार-छार! अब बेतुकी बोले जा रही है···भला अजित के लिखे-पढ़े कहानियों या उपन्यासों से हरदोईवाले लड़के का क्या सरोकार? और क्या सरोकार है इस अपढ़ बटनिया का?

बटनिया ने कहा था—'तो आगे के डर के मारे तो तू आज का काम छोड़ नहीं रहा है? बुरे दिनों का भय भी तुझे नहीं डरा रहा··· फिर जब मैं तुझे 'तुम' और तू मुझे 'वैनवती' कहने लगा था—तो क्यों डरा?···मैं क्या समझती नहीं हूं?···और यह सब क्या तू नहीं समझ रहा है? ··पर मैं ठहरी औरत जात। गुस्सा क्यों आयेगी मुझे?'

अजित समझा! यों ही, बेतुका नहीं बोल रही है बटनिया। अजित के मुंह पर तमाचे जड़ रही है। सीधे-सीधे उसे कायर, विश्वासघाती और छली न कहकर भी सब कुछ कह रही है! अजित पिटा हुआ-सा पड़ा रह गया—चुप।

वह बोली थी—'अब तू सो जा—बस!'

अजित का मन हुआ था कि रो पड़े—कहे—'तू ही तो नहीं सोने दे रही मुझे!' पर चुप रहा। चुप ही रहना होगा। कहीं बटनिया ने जवाब में पूछ लिया कि 'बता मैं भी सो पा रही हूं क्या?' तब अजित क्या कह पायेगा?

उसने चुपचाप करवट बदल ली थी। चुप पड़ा रहा। नींद नहीं आयी। एक बार आंखें खुली तो पाया था कि बटनिया देहरी पर बैठी बाहर की बारिश को टुकुर-टुकुर देखे जा रही है। मन हुआ कहे—'तू भी सो रह!' पर नहीं कहा। यह कहने का मतलब होगा—ओस-भीगे झाड़ को हिला डालना!···अभी हर पत्ते से बूंदें झर पड़ेंगी। पता नहीं बटनिया कब तक

उसी तरह देहरी पर बैठी रही होगी ?···

बाहर की बारिश देखती रही बटनिया को देखकर अजित उस दिन नजरें चुरा गया था ··अहसास ही नहीं हुआ था उसे कि एक बारिश और है—जो भीतर—उसके कमरे में सौ बरस रही है ··

बस—उसके बाद जब इसी घर के आगन से बटनिया को विदा करवाया था, वह मौका पाकर बोला था—'मुझे माफ करना बटनिया ! ·· मैं तेरे दुख को ठीक तरह समझ ही नहीं पाया था, इसीलिए ··' पर अजित के शब्द अधूरे रह गये थे। बटनिया ने फुसफुसाकर जवाब दिया था—'अब उस सबको छोड़ ! ··अपढ़ सही, पर इतना तो जानती हूं कि दुख तो वे ही समझ पाते हैं जिन्होंने दुख देखा हो। तू समझ लेगा—इत्ते पर ही खुश हो जाऊंगी मैं।' फिर वह आसू पोंछने लगी थी।

डोली उठाये कहार उसे धर्मशाला तक ले गये थे जहा पीला घुटनों से नीचे झूलता अंगरखा पहने हरदोईवाला उसका वर बैठा था अपने हमजोलियों में। फिर वे सब बस-ट्रेन चढते-बदलते हरदोई चले गये थे···

पर यह सब बहुत बाद की बात है ··उस दिन तो सुबह-सबेरे उठने के साथ ही अजित इस खयाल से नहा गया था कि उसे केशर मां का सामना करना है। आदत के खिलाफ वह सूरज चढे तक बिस्तरे में ही धसा जागता लेटा रहा था···बाहर बरामदे में शायद केशर मां मौजूद थी। आवाज आयी थी, 'देख तो, जगा कि नहीं ?'

और बटनिया सामने आ खडी हुई थी, 'चल् !···'

अजित बोला था, 'आता हूं—तू जा !'

वह चली गयी। केशर मां की बडबडाहट फिर से आ पडी थी अजित के कानों में·· 'अरे, अब कब तक अपना ये काला मुंह छिपाये रहेगा ?··· बाहर आ ! जरा देखू तो कि किस-किस के जूते पालिश किये ? किस-किस की कढ़ाइयां मांजकर आया है ··?' फिर जैसे अपने आप ही जवाब भी

दे लिया था केशर मां ने—'जूते काहे को पालिश करता? और कढ़ाइयां माजने की भी क्या जरूरत थी? जब तक इस घर में रत्ती भर सोना और चार बर्तन रहेगे तब तक इस सबकी तुझे क्या जरूरत?…अभी तो तीन अंगूठियां और पड़ी है सन्दूक में!'

अजित डरा था। इसका मतलब है कि केशर मा सिर्फ गालियां देने के मूड मे ही है। वह जो अपने इकलौते होने का 'शाक' उन्हे देकर डराना चाहता था—व्यर्थ हो गया! अजित को लगा था कि मूर्खता की। कम-से कम पन्द्रह-बीस दिन न आता, तब आंसू गिरते केशर मा के!…

मगर अब आ गया है तो…? क्या होगा?… क्या फिर से भाग जाय?

नही। यह ठीक नही होगा। और बिना पैसे भागना भी अभी कहा सभव? इस बार वे अगूठियां उस तरह नही निकाली जा सकेंगी—जिस तरह पहले निकाल ली थीं। केशर मा कोई पुख्ता बन्दोबस्त करेंगी रुपये-जेवर पर!

सुना नही तूने?…तेरा नास जाय सनीचर!' केशर मां फिर से चीखी थी—'अरे, सूरज भगवान निकल आये और तू बिस्तर मे घुसा है मरे?…मलेच्छ कही का!…'

अजित ने चादर उलटा—उठ पड़ा। तय कर लिया था कि केशर मां से बहस नही करेगा। करने से लाभ? वह नही थमेंगी। ज्यादा चीखने-चिल्लाने और कोसने लगेंगी। इस सबसे अजित की ज्यादा ही बेइज्जती होगी। और अभी क्या कम बेइज्जती कर चुकी होगी? अजित के जाते ही अगली भोर के साथ गली की ओर छज्जे पर खड़े होकर सब महल्ले को सुनाया होगा—'भग गया मरा घर से!…कुल-वश-कपूत! ऐसे पापी से तो मेरी गोद सूनी ही रहती। मेरी गगा मैया तो भली होती!…बाठ हो लेती तो कह तो सकती कि औलाद ही नही है, पर अब क्या मुंह दिखाऊं किसीको?…' आदि-आदि।

और अजित यह भी जनता था वह सब सुन-जानकर सहोद्रा, मैनपुर-वाली, सुरगो और सुनहरी सब अपने-अपने घरों से बाहर आकर 'चू-चू' करने लगी होंगी। एकाध तो शायद बोली भी हो—'अब रहने दो काकी!

औलाद जांघ पर मूत दे तो काटकर थोड़े ही फेंकी जाती है !···लड़कपन की उमर है। जब वखत पड़ेगा, तब सब ठीक हो जायेगा !'

केशर मा इसी तरह बुदबुदाती घर के बाहर-भीतर होती रही होंगी और महल्ले की औरतें अपने घरों के भीतर होकर कहती रहती होंगी—'अच्छा हुआ !···बड़े पईसेवाले बनते थे; अब सब पाप का कमाये को बेटा ही ठिकाने लगाये दे रहा है तो देखलो कैसे-कैसे हाय-हाय मचा रही है बुढ़िया !'

यही थी सहोद्रा, यही थी सुनहरी और यही गुरगो···अगर इनसे अलग है तो सिर्फ रेशमा। उसने जरूर ही कहा होगा—'जो भी कहो बहना, अजित लड़का बुरा नहीं है। किसी के साथ-संग में भटक गया होगा ···'

बहरहाल अजित बाहर आया था। देखते ही केशर मा चीख पड़ी थी। उकड़ू बैठी थीं वह। ठीक सामने पानदान, बगल में उगालदान, 'वाह रे मेरे सपूत !··· मइया के सीने पर खूब ठंडक पहुंचा रहे हो !···बाहर काहे को गये ? यहीं जुआघर खोल लेते ?···यहीं निकालते अपने बाप की आबरू की अर्थी ? कुल का नाम ऊंचा करते!···'अजित चुप, गरदन झुकाये हुए बाथरूम की ओर बढ़ा तो सहसा रो पड़ी थी वह—'करम फूट गए बटनिया ! न जाने किस बुरी घड़ी में ये मरा मेरी कोख में आया था···' और फिर फूट-फूटकर रोने लगी थी वह···

अजित गालियों से उस कदर विचलित नहीं हुआ था, जितना उनकी रुलायी से हो गया। जैसे-तैसे मुंह-हाथ धोया, नहाया और खाना खाकर निकल गया था। बटनिया केशर मा को समझा-बुझाकर उनके कमरे में ले गयी थी। केशर मा देर तक बड़बड़ाने के बाद सहज हो गयी, फिर अजित को खाना खाते समय सिर्फ उनके कमरे से निर्देश सुनने को मिले थे। निर्देश, जो बटनिया को थे। निर्देश, जो सच मे अजित की खातिर थे···उस सब को सुनकर अजित को लगा था कि वह रो पड़ेगा।

वह चीखी थी—'अरे, बड़े पीतल वाले डिब्बे में देसी घी रखा है बटनिया। अच्छी तरह से दाल मे डाल देना, रोटी चिपड़ देना !···पता नहीं इस मरे को घर-बाहर कही भर पेट रोटी भी मिली या नहीं।···'

बटनिया सामने। नजर झुकी हुई। अजित चुपचाप ग्रास निगलता जा रहा था। कितना मन होता था कि बटनिया की ओर नजर भर कर देखे। वही,

मादक, फूलों से लदी-झुकी डाल-जैसी बटनिया। उम्र इस कदर झूमकर बरस पड़ी थी बटनिया के ऊपरकि लगाता था जैसे उस पर अपना ही रूप-रंग सम्हालना मुश्किल हुआ जाता है। ऐसी बटनिया।

'रोटी दूं?···' बटनिया ने डिब्बे से रोटी निकालकर सवाल किया था।

'है?···' चौंक गया था वह। क्यों चौंका—नही जानता। अनायास ही आखें बटनिया के चेहरे पर जा ठहरी थी। बटनिया भी उसे ही देख रही थी। पुतलियों पर पनीलापन। सकपकाकर दोनों ने ही धरती देखनी शुरू कर दी थी। अजित ने गुनगुनाकर कहा था—'उहूं—नही।···अब नही।'

'एक ले ले ना?' उसने जैसे वजन डाला था। किस कदर अधिकार और प्यार से दब गया था अजित? बोल नही सका।

और बटनिया ने रोटी थाली में डाल दी थी। सब्जी परोसने लगी। अजित बोलता ही रह गया था—'नही-नहीं, कह रहा हूं ना कि अब नही···'

सब्जी परोसकर बटनिया फिर उसी शान्त भाव मे बैठ रही।

अजित भी चुप होकर ग्रास तोड़ने लगा। सहसा बटनिया ने पूछा था—'कहा-कहा गया था तू?···बम्बई?'

'नही।'

'तो, फिर?'

'ऐसे ही, यहां-वहा घूमता रहा···'

बटनिया चुप। और अजित को याद आ गयी थी—रामदुलारी। दूर के रिश्ते की एक रिश्तेदार लड़की की। बटनिया जैसा ही बदन था उसका। विवाहिता पर ससुराल नही जाती थी। अजित उन्ही रिश्तेदार के यहा जा पहुंचा था—ननिहाल में। कहा था—'घूमने आया हूं।' रामदुलारी से वही पहली-पहली मुलाकात हुई थी। दोनों ने एक-दूसरे को देखा था तो अजित को लगा था वक्त कट जायेगा। शुरू-शुरू में ऊब रहा था इस गांव में भला किस तरह कटेगा उसका?···पर रामदुलारी की मुसकान और दात तले दबे होंठों ने पल भर में कह दिया था—'डर

मत !···वक्त कट जायेगा तेरा !' रामदुलारी की याद ने एक पल के लिए रसोईघर, बटनिया, रोटी सभी कुछ भुला दिया···याद आया तब, जब बटनिया का अगला सवाल आ गिरा था —'सुन, अब अपनी मां को ज्यादा परेशान मत किया कर ! ···'

बुरी तरह चौंक गया था अजित। कुछ गुस्से से बटनिया को देखने लगा। यह भी उपदेश देने लगी ?···कब से ?···पूछा था— 'मैं परेशान करता हूं ?'

बटनिया सकपका गयी थी —'नहीं-नहीं, यह नहीं कहती पर ··पर अब उनका बुढ़ापा है, ना, इसीलिए दस उलट-पुलट बातें करती है। ऐसों को तो निबाहा जाता है।' फिर वह एकदम चुप हो रही थी। शायद उसे डर और सकोच ने घेर लिया था। सोचने लगी थी कि कैसी गड़बड़ कर बैठी। अजित को ज्ञान दे दिया उसने ? अजित क्या कम समझता है उससे ?

अजित ने समझ लिया था —डर गयी है। अब, जब डर ही गयी है तो क्या कहा जायेगा उससे ! बात खत्म कर देना चाहिए—सो कर दी। आखिरी ग्रास मुंह में डालकर उठने को हुआ। बटनिया ने पानी का गिलास उठाकर आगे बढ़ा दिया—'क्यों, पानी नहीं पियेगा ?'

और अजित को अपनी भूल समझ में आयी। गिलास लेने हाथ बढ़ाया तो बटनिया की मुलायम, अंगुलियों से अंगुलियां छू गयीं—गिलास गिरते-गिरते बचा। पता नहीं, बटनिया एकदम से कैसी तो हो गयी ?···ऐसे, जैसे डाल नीचे, धरती तक झुक आयी हो। और खुद अजित ? वह भी तो सिटपिटा गया था। बिल्कुल करंट ही मारती है बटनिया···अचानक उसे पछतावा हुआ था। समझता है कि बटनिया के साथ न्याय नहीं कर पाया। और न्याय तो खुद के साथ भी नहीं किया अजित ने। बटनिया जैसी उम्र, समझ, समर्पण और स्नेह से लदी डाल को गले में नहीं पहना ? मूरख तो अजित है !

अजित एक उदासी से घिरा हुआ पानी पीकर बाहर निकल गया। बटनिया जूठे बरतन उठाने लगी थी।

गैलरी पार करके नल तक जाना होता है। वहीं जूठे हाथ धोने होंगे। उसी ओर बढ़ा तो सरदार मराठे के घर में नजर जा ठहरी। मुंह पोंछता हुआ छोटे बुआ नजर आया। उसे देखते ही सब कुछ भूलकर अजित एक दम से पुकारने लगा था—'छोटे ?···ऐ-य् छोटे ?'

छोटे ने चौंककर देखा था उसे। एकदम खिल उठा—'अरे, पंडित !··· तू कब लौटा यार ?'

अजित चीखा—'रात को !'

'अच्छा -अच्छा !···आता हूं।' छोटे ने कहा था। बहुत खुश, जैसे उसे कोई खोयी चीज मिली हो। अजित भी कुछ-कुछ ऐसा ही महसूस कर रहा था। हाथ धोये और जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतरकर गली में जा पहुंचा। गली से सरदार मराठे के बाड़े की ओर ··बाड़ा नहीं, अब भैंसों का तबेला कहना ही ठीक होगा—उसने मन में सोचा था। इस टोपनदास सिन्धी ने किस कदर गन्दगी मचा रखी है? ··गली में ही नहीं, घरों की छत पर भी गोबर की सडांध दौड़ती रहती। किसी दिन कार्पोरेशन में शिकायत पहुचानी होगी ··अजित ने सोचा।

सुरेगा और उसकी बेटियां भगोने, बाल्टी, बरतन या कोई तलसा लिए हुए जल्दी-जल्दी बाड़े में एक ओर जुटे गोबर के ढेर से गोबर भर-भर कर अपनी पाटोर की ओर ले जा रही थी ··पसीनों से भीगी हुई··· बच्चियां तो हाफ भी रही थी। जितनी छोटी बच्ची, उतना छोटा बरतन। एक पल के लिए ठिठककर देखता रह गया था अजित। जानता है, इस गोबर से सारे दिन-दोपहर पूरे घर के सदस्यों को मिलकर कन्डे थापना होगा ··फिर ये कन्डे पाटोर के ऊपर और दीवारों तक पर चिपका दिये जायेंगे। ईंधन तैयार। बहुत सस्ता पड़ता है। अनायास ही अजित को अपने विचार में परिवर्तन करना पड़ा था—नही, कार्पोरेशन में शिकायत पहुंचाना ठीक नही होगा। टोपनदास के आने से न सिर्फ दूध और ईंधन का ही फायदा हुआ है सारे महल्ले के लोग सप्ताह में दिन बाटकर यह गोबर 'बुक' कर लेते हैं। टोपनदास दोहरा मतलब सिद्ध करता है—एक तो उसका भैंस बाड़ा साफ हो जाता है, दूसरे कुछ पैसे भी मिलते हैं !··· स्साला टोपनदास !···उसके भीतर एक गाली उग आयी थी···तभी नंगा

तलसा लिये हुए सुरेगा सामने आ खड़ी हुई—'लाला ?'

'हूं ?···' अजित ने कुछ गुरगुराकर कहा—जानता है कि सब पूछेंगी—'कहां गये थे तुम ?···केशर मां रो-रोकर पागल हुई जाती थी?···अब चलती वेला है, उन्हें ऐसे मत सताया करो !···' वगैरा-वगैरा सब झूठी सहानुभूति···पलटकर इकट्ठा होंगी सब। मजा लेंगी। केशर मा को 'डुकरिया' कहती हैं अकेले मे। कहेंगी कि दूसरों के चादरों मे छेद ढूढ़ती थी डुकरिया, अब बेटा पूरा चादर ही जलाये डाल रहा है—ठीक हुआ !' इसीलिए इन लोगो के प्रति कुछ सख्त रहना होगा।

गुर्राहट से कुछ सहम तो गयी थी सुरेगा, पर जो कहना था, कह ही डाला। कहा था—'कहा-कहां घूम आये लाला ?···'

'बहुत घूमा भाभी !···' अजित ने पल-भर में तय कर लिया था कि वह ऐसे उखाड़ू जवाब देगा कि इन सबके चेहरे सिकुड़ जायें। बोला—'बम्बई तक गया ··खूब मजे किये !'

'मजे ? ··'सुरेगा की आखो में रस उतर आया—अज्ञात रस-पिपासा का भाव। बम्बई का सुख-ससार और रग-बिरगी बातें खूब सुनी हैं उसने। सुनने से ही सुख मिलेगा। इसी तरह अनुभूति करना उसकी नियति। अनायास ही स्वर से व्यंग का भाव तिरोहित हो गया था। उसकी जगह उभर आया था—मजे सुनने का पिपासा भाव। बोली—'कैसे-कैसे मजे लिए ?'

'पूछो मत भाभी ! वहा की तो बात ही और है·· ' अजित ने तय किया कि इस कदर गप्पें उछालेगा कि वे निन्दा न करके पहले सुख मे डूबें, फिर कुठित हो उठें। कहा—'सुनाऊगा तो बस, सुनने-भर से ही मजा आ जायेगा !···यहां लौटकर तो लग रहा है—नर्क मे आ गिरा हूं।'

'तो, बताओ ना ?···'सुरेगा ने तलसा, जो लगभग गोबर से लिपटा हुआ था, अपनी मोटी, भरी जांघों के बीच दबा लिया और ब्लाउज के भीतर दो अगुलिया डालकर खुजाने लगी ··जाने क्यों सब कुछ भूलकर अजित उधर ही देखने लगा···ब्लाउज अंगुलियों से दबकर कुछ नीचे को सरका था—भारी-भारी गोलाइयों के अहसास ने अजित को झकझोर दिया। सनसनी महसूस की थी उसने। नजर ने यह भी देख लिया

था कि सुरगो के जितने सीने को ब्लाउज ढके रहता है, उतने हिस्से का रंग, बिल्कुल ब्लाउज के ही आकार में उजलाया हुआ है···हवा-धूप न पहुंचने से चमडी की असली रंगत नहीं बदलती।

सुरगो भी उन नजरों को देख चुकी है। तसला एकदम जांघों से खींचकर चल पड़ती है—'शाम को लौटते में सुनाना···आखिर देख न सके सो सुन तो लें—कैसी है बम्बई?···कहते हैं बहुत बड़ी है···?' उसने 'बहुत' शब्द को खूब खींचा···

'हां,बहुत···'अजित ने भी जवाब दिया, बढ़ गया मराठे साहब के घर की तरफ। मालूम नहीं, ये स्साला छोटे क्या करने लगा?···औरतों की तरह सजता-संवरता है क्या? वह झुंझलाया हुआ था।

वाड़े की दो पाटीरों मे टोपनदास ने रहने का ठिकाना भी बना रखा है। भैंसों की रखवाली भी कर लेता है और नौकर भी सो लेते हैं। एक टूटी-सी चारपाई और दस-बीस बरतन रखे हुए है। स्टोव्ह और मिट्टी के तेल का कनस्तर। यह टोपनदास की कुल गिरस्ती है। अजित ने कितनी ही बार सोचा है—बारह-चौदह भैंसों का मालिक टोपन इस गये-गुजरे ढंग से क्यों रहता है? एक बार मोठे बुआ ने कहा था—'जानता है पंडित, इस मक्खीचूस सिन्धी का पैसा कहां जाता है?'

'कहां?'

'बैंक में रखता है स्साला!···' मोठे बुआ ने कुछ कुढ़ते हुए कहा था और अजित का मन हुआ था—हंसे!···कहे—'अबे बैंक में नहीं रखेगा तो क्या तुझे देगा?···फिर पिछवाड़ेवाले कमरे में ही तू सोता है—पैसा, तो पैसा टोपन की चारपाई सलामत है, यही क्या कम है?' पर नहीं कहा। कहने का मतलब होगा, मोठे बुआ से झगडा। एकदम चीख पड़ेगा—'तू मुझे गुन्डा, बदमाश या चोर समझता है क्या?···अबे, जिससे वसूलना होता है, मोठे उसकी गरदन पकड़कर उगलवा लेता है—समझा!'

'बैंक में नहीं रखेगा तो क्या करेगा?' अजित ने सवाल किया था।

'किसलिए रखना चाहिए?' मोठे बहस करने लगा।

'वाह!···'अजित ने कुछ झुंझलाते हुए जवाब दिया था—'वह पैसा कमाता है तो क्या तुम्हें दारू पीने या मुझे मजे मारने के लिए दे देगा?···'

'अरे यार ! इस टोपने के यहां बैठा ही कौन है ? रंडुआ है स्साला ! फिर किसलिए सवेरे से धाय-धाय करता पैसे के पीछे दौड़ता रहता है ? जब यहां आया तो दो भैंसें थीं ··लूटमार के हरामी ने बीस करली हैं··· किसलिए ये पैसा कमा रहा है ? आंखों में से तो गोबर बहता रहता है कुत्ते के !···' मोठे बुआ ने सख्त नफ़रत के साथ कहा था।

और अजित निरुत्तर ! ··सच ही तो, इस टोपनदास को पैसे का बड़ा मोह है। चन्दनसहाय के बिना बटनवाले, बिना प्रेस के कपड़े याद हो आये थे। बिलकुल उसी तरह टोपन भी रहता है। दो की बीस भैंसें करली हैं ·· चालीस कर लेगा···पर कपड़े बिना प्रेस के पहनेगा। छोले-भटूरे खाकर सुबह-शाम बिता देगा। कुल एक प्याला चाय पियेगा·· बाकी कोई शौक नहीं। इसी तरह जिन्दगी गुजार रहा है · पैसे बैंक में रखता जाता है। दो भाई और हैं बाल-बच्चों वाले। छोटा बिल्लूमल हमेशा सजा-धजा रहता है। शक्ल-सूरत से भी किसी पल नहीं लगता कि टोपनदास का भाई होगा, बल्कि लगता है—डेयरी मालिक बिल्लूमल है। टोपन उसका चोबदार। गोबर उठाने वाला। पर सच में टोपन है मालिक · बैंक में उसी के नाम सारा पैसा जमा है। बिल्लू के दो छोटे-छोटे गोलमटोल बेटे टोपन को घेरे रहते हैं। अजित को लगा था कि मरेगा तो इन्हीं बच्चों को दे जायेगा ··और इन्हीं की खातिर बैंक में रखता होगा·· यही नहीं, इन्हीं के लिए दो की बीस और बीस की चालीस भैंसें कर रहा है · यही तर्क कर डाला था मोठे से—'मेरा खयाल है कि वह बिल्लूमल के बेटों को दे जायेगा सब कुछ ! · उसके अपने बच्चे तो हैं नहीं ?···भाई के बच्चे भी तो बच्चे ही हुए ? देखते नहीं हो, उसके लिए कुल्फी लाता है·· छोटे बच्चे को कन्धे पर उठाये दिखता है।'

'नहीं, कुछ और चक्कर है !···' मोठे ने आंखें संदिग्ध करते हुए कहा था, फिर आगे बढ़ गया था···अजित लापरवाह हो गया—ये मोठे बुआ दूसरों के घरों की खिड़कियां झांकने में कुछ जरूरत से ज्यादा ही रुचि लेता है। व्यर्थ ! ··

पर टोपनदास की पाटोर के सामने से गुजरते हुए जाने क्यों अजित का दिल भी हो आया था कि खिड़की झांके···उसने देखा, एक खूबसूरत

और जवान लड़की बैठी है चारपाई पर। टोपनदास दूसरी चारपाई डाले हुए उसके सामने। दो-चार बूढे-जवान सिन्धी उसके पास। लड़की की पलकें झुकी हुई हैं···और वे सब हैं कि अपनी भाषा में न जाने क्या कुछ कहे-सुने जा रहे हैं···

कौन है ये लड़की?···बदन का भराव, लड़की से ज्यादा भरी-पूरी औरत वाला है। अजित के भीतर एक कौतूहल जनम आया। लगभग वैसे ही कौतूहल, जैसा टोपन के पैसे बैंक में होने से—क्यों है—यह जानने-समझने का कौतूहल मोठे बुआ के भीतर था। कुछ सोचे, इसके पहले ही छोटे बुआ आ पहुचा—'पंडित?···'

और सब कुछ भूलकर छोटे की ओर हस पड़ा था अजित। छोटे ने करीब आकर कहा था—'मैंने सुना है यार, कि तू बम्बई घूम आया?···'

अजित का मन हुआ—सच कह दे—बम्बई-बम्बई नही, ननिहाल के गाव तक गया था। वहां रामदुलारी में ही उझलकर दस-ग्यारह दिन बिता दिए ··पर कहा—'हां, यार।'

'यार, यहां अम्मा बहुत रोयी।' सहसा छोटे बुआ की आवाज नम हो गयी थी—

अजित पर उत्तर नही बना। अपराधी भाव से गरदन झुका ली।

वे मुड़े। साथ-साथ चलने लगे। छोटे बुआ इस बीच हुए सारी गली के बदलाव की जानकारी देने लगा था—'यहा तो बड़ी-बड़ी गड़बड़ें हुईं यार!···'

'क्या?'

'बटनिया की सगाई हो गयी यार!' छोटे बुआ ने कहा था—मुंह बिगाड़ा हुआ—अजित को अच्छा लगा था—किसी के कडवे दुखदायी सच पर दुखी होना भले आदमियों का ही काम है। छोटे बुआ भला आदमी है। बोला था—'कितने गन्दे और अधेड़-से आदमी के साथ बटनिया को हकाल* रहा है वह कायस्थ!···छि-छिः!···कसम से पन्डित बिसका थोबड़ा देखके मेरा दिल भी हुआ था कि मारू स्साले को दो!···पर अपुन कोई क्या कर सकते हैं पन्डित? बटनिया है चन्दनसहाय की बहिन!···

*हकाल—धकेलना

पर जोडआ ठीक नही हुआ ।'

अजित भारी हो उठा था—वटनिया !···लगा था, करीब आ खड़ी हुई है । रातवाली सारी बातें कहती हुई ।

जाने क्यों अजित का मन हुआ था कि छोटे वुआ से मन खाली कर डाले अपना । उसे बतलाये कि वटनिया के मामले मे वही अपराधी है । उसी ने विश्वासघात किया···पर अपने ही भीतर सहमकर रह गया था वह । बात पलटकर कुछ और ही कहने लगा था—'एक बात बतायेगा, यार ?'

'हूं ?'

'अगर कोई लड़की, किसी लड़के से कहे कि अब मैं तुझे 'तू' नही, 'तुम' कहा करूंगी—तो क्या मतलब हुआ ?'

छोटे ने कुछ आखें सिकोड़कर उसे देखा—ऐसे जैसे उसके भीतर तक समा जाना चाहता हो । पूछा—'किस लड़की ने कहा ? किससे कहा ?'

'नही-नही, मैं तो एक बात पूछ रहा हूं यार—ऐसे ही !' अजित ने जवाब दिया; पर उसे लगा कि ठीक तरह बोल नही पा रहा है । कुछ है, जो जाहिर कर रहा है कि छिपा रहा है ।

छोटे गम्भीर हो गया था····'देख पण्डित !···अगर किसी और के बारे मे बात है ··तो कोई बात नही, पर याद रख ! अगर तू ऐसा कोई चक्कर चला रहा है तो तुलजा भवानी* की कसम, तू डूब जायेगा !'

'नही-नही, यार ! मैंने तो ऐसे ही बात पूछी थी···मेरे साथ भला क्यों कुछ होगा ?' फिर वह उदास हो गया था ।

पर छोटे वुआ की गभीरता बरकरार थी । कहा—'एक तो तेरी अम्मा तुझे नही छोड़नेवाली । फिर तू जात से ब्राह्मण है और मिन्नी है कायस्थ···'

'मिन्नी ?···' अजित एकदम 'बौखला गया था—'दिमाग चल गया है तेरा । मैंने अपनी या मिन्ना की बात कहां की है ?···'

'चल, नही की तो कोई बात नही । फिर भी मैं तेरे को बतलाये देता हूं···स्साले, ये मकान-वकान है ना तेरा···सब बिक जायेगा !···' छोटे

---

*तुलजा भवानी दुर्गा का एक नाम । महाराष्ट्र में जन आराध्या देवी ।

बुआ उससे दो साल बड़ा है ·· डांट रहा था। बोला—'तेरे बड़े भाई की तरिया हू, इसीलिए तेरे को खबरदार करता हूं। सिनेमा-विनेमा देखना, गोत घाडना एक बात है, पर घर में फिल्म करेगा ना, तो बस··· समझना कि सब तरफ से हरी झंडी हो जायेगी तेरी !···अम्मा घर से निकाल देंगी। तू है नाइन्थ फेल···झंडिया लगाने पर भी कोई काम न देगा···और वह जो तेरी मिन्नी-टिन्नी हैं ना···तुझे अंगूठा दिखाके भाग जायेंगी ! ··बिरादरी में कोई घास नहीं डालेगा तुझे और फिर···मैं···मैं भी कुछ नहीं कर पाऊंगा।' वह अचानक उदास हो गया, बात खत्म की ·· 'अब तू तो जानता ही है कि मैं भी फेल ही हुआ हू···और अब हमारे घर में भी वह बात नही रही···' उसकी आवाज भर्रा गयी थी, ऐसे जैसे सचमुच ही अजित किसी मिन्नी-टिन्नी को ब्याह कर ले आया हो—सब तरफ से हरी झडी पाया हुआ—उसके सामने आकर खडा हो, उससे कह रहा हो—'हमारी मदद कर यार !···अब जो होना है सो तो हो ही गया !'

अजित बुरी तरह सिटपिटा गया था। छोटे बुआ ने भाषण ही नही दिया था—लगा था कि कान पकड़कर सारी गिनती ही सिखा दी है। गलत तो नहीं कहा है उसने ? अजित चुप होकर सोचने लगा था···

बटनिया को लेकर भाग गया होता तो क्या होता ?···जात-बाहर कर दिये जाते है, ऐसे लोगों का हुक्कापानी बन्द कर देते है। अजित को मालूम है। उसी के एक रिश्तेदार ब्राह्मण, किसी ठाकुर की औरत को भगा ले आये थे। पचायत हुई थी। बड़े-बडे लोग पहुंचे। तय हुआ कि रिश्तेदार साहब का 'हुक्कापानी बन्द कर दिया जाये !···' ये हुक्कापानी शब्द पहली-पहली बार सुना था अजित ने। केशर मां से सवाल किया था—'मा, ये हुक्कापानी कैसे बन्द करते है ?' सोचा था कि उस रिश्तेदार के पास जो हुक्का है—उसकी पानीवाली नली किसी चीज से बन्द कर दी गयी होगी ··

पर केशर मा ने अर्थ कुछ और तरह ही समझाया था। कहा था—'अपुन लोग जात-समाज मे रहते है ना ?···बस, जो लोग खराब काम करते है, उनको घर बुलाना, उनके यहां जाना बन्द कर देने को कहते है हुक्कापानी बन्द करना।'

अजित और गड़बड़ा गया था। अब यह समझना होगा कि शराब काम किया था उन्होंने ? पूछ लिया। केशर मां ने जवाब दिया था—'अभी तू नहीं समझेगा !···ये जात-समाज की बातें हैं।'

धीरे-धीरे जात-समाज की बातें भी समझ में आने लगी थीं अजित को। समय और उम्र ने बहुत कुछ समझाया था उसे। वर्ग-भेद भी देखा-समझा उसने। सहमत किसी बार नहीं हो पाया है···पर असहमति व्यक्त कर पाने का साहस नहीं। उतने तर्क नहीं है उसके पास। या यों कि अभिव्यक्ति नहीं है···

और इस समय भी अभिव्यक्ति कठिन। बहुत कुछ कहना चाहता था छोटे बुआ से। तर्क भी करना चाहता था और बहस भी ··पर सफाई देने के स्वर में कहा था उसने—'तू तो कुछ का कुछ समझ रहा है ? बात वह है ही नहीं, जो तू ले बैठा है !'

'तब क्या है बात—वही बता ना ?' छोटे बुआ ने बात बढ़ायी थी।

अजित ने सोचा था कि कह ही डाले। छोटे से बहुत छिपा-दबा नहीं है वह ··छोटे भी नहीं। कह देना ही ठीक होगा, पर कहेगा इस तरह कि छोटे बुआ सारे मामले पर सहानुभूति से सोचे। बोला था—'सच कह दूं ?'

'हूं—कह डाल !'

'मैं बटनिया के बारे में कह रहा था···' अजित ने लगभग फुसफुसाते हुए कहा था—इधर-उधर देखा जैसे सब सिर्फ अजित को ही देख रहे हों, उसी की बातें सुन रहे हों···छोटे बुआ चौंक गया था···विस्मय से मुंह खुला ही रह गया था उसका। सहसा एक गहरी सांस ली थी उसने। कहा—'यहां नहीं, कहीं और चलकर बात करते हैं—ठीक ?'

'हां, चल् !'

वे जल्दी-जल्दी चल पड़े थे।

'कहीं और' पहुंचे थे—कटोराताल। एकदम सुनसान इलाका। उन दिनों जंगल ही हुआ करता था वहां। शहर का इकलौता कालिज था—विक्टोरिया कालिज। कटोराताल में या तो षडयंत्रकारी भेंट किया करते थे या फिर प्रेमल जोड़े। बहुत सोच-समझकर आए थे दोनों। बहुत गंभीर बातें जो थीं। अजित से सब कुछ सुनकर छोटे बुआ निरंतर गंभीर होता

चला गया था। अन्त में बोला था—'भीतर-ही-भीतर इतना कुछ हो गया और तू मुझे आज बता रहा है ?'

'कितना कुछ हो गया ?' अजित ने कुछ गुर्राकर कहा था। लगा था कि छोटे बुआ ने उस पर चरित्र-भ्रष्टता का आरोप जड़ दिया है। स्पष्टीकरण देता हुआ बोला था—'यह सब तो अभी कुछ ही दिनों में हुआ··· बस, बटनिया ने उस दिन बात की और लगा कि बात शुरू हुई है, फिर खतम भी हो गयी !···इसको तुम 'इतना कुछ' कह रहे हो ?'

छोटे बुआ ने जवाब दिया था—'मैं सिर्फ इतना कह रहा हू कि ये सारी बात तू ने पहले क्यों नही बतलायी ?'

'कब बतलाता ?···रात को ही तो बोली थी। रुपये भी दे रही थी, कुछ जेवर भी।' अजित ने कहा—'मेरी तो फूक सरक गयी यार !··· फौरन ही मामला टाल दिया था। कह दिया था कि अभी अपने पास ही रखे ··जरा सोच-समझ लेने दे। घर से निकलने के पहले आखिर प्लानिंग भी तो करनी पड़ेगी !'

'और तूने ये प्लानिंग की, कि खुद तो भाग गया और उससे दगा कर दिया ?' छोटे बुआ एकदम से भन्ना गया था—'पण्डित !···सच ही लिखा है हिस्ट्री में। तुम लोगों की जात ने पूरी की पूरी सल्तनतों को विश्वास में ही मार दिया···उस बेचारी बटनिया पर क्या गुजरी होगी ?'

चिढ गया था अजित। पूरी जाति पर आरोप कर रहा है शैतान। कहा था—'तू मुझ से बडा तो है, पर लगता है तेरी अकल मुझसे एक हजार साल पीछे है।···'

'क्यों ?'

'बटनिया पर गुजरने की तो तूने सोच ली, अब जरा यह तो सोच कि अगर मैं उसे ले भागता तो मेरा क्या बनता ?' अजित ने सवाल किया था। फिर इस तरह देखने लगा था उसे जैसे सचमुच ही उसकी अक्ल पर थूक रहा हो।

छोटे बुआ तुरन्त जवाब नही दे सका। अजित ने खुश होते हुए कहा था—'अब समझ मे आयी बात !···अबे, यहा अंडरवीयर बनवाने का दम है नही और तू कहता है कि मैंने सिर पर पडाल क्यो न बांध

लिया ?…'

'फिर भी यार !…' छोटे ने दुख से कहा था—'बिस बेचारी के साथ बड़ी ज्यादती हो रही है।…होना तो यह चाहिए था बिसे कोई अशोककुमार जैसा लौंडा मिलता…'

'दुख तो मुझे भी है छोटे। वह हरदोईवाला आदमी—आदमी से ज्यादा घोड़ा है…पर मैं क्या करूं ?' अजित का स्वर रोने को हो आया था—'वटनिया बहुत अच्छी है। खूब बढ़िया…मुझे तो बहुत जम गयी थी यार !…फिर ये जो सुरगो-बुरगो, सुनहरी-बुनहरी है ना—इनसे तो बहुत अच्छी !…'

'तूने भी क्या बात की !' छोटे बुआ ने एकदम टोक दिया था बीच में—'किन सालियों से तू बिसका कम्पटीशन कर रहा है…ये भी भला कोई औरतें हैं?'

अजित ने सभ्यता के नाते कहा था, 'नहीं-नहीं, औरतें तो हैं…पर जिस तरह की होनी चाहिए…'

'नहीं—नहीं—ये औरतें ही नहीं है।' छोटे बुआ ने एकदम जवाब दिया था—'किसी तरफ से भी नहीं हैं। औरतें होती हैं—पारो जैसी। 'देवदास' देखी थी ना अपन ने ? वैसी।…विनके पास दिल होना चाहिए ! और इन सालियों के पास दिल है ?…नहीं है। बिलकुल नहीं है। ये तो दिल की जगह तिजोरियां रखे हुए है। जो उनमें पैसा-टका डाल देगा बिसी को कह देंगी कि तू ही मेरा किसन-कन्हैया…'

अजित को अच्छा लगा था। कभी-कभी छोटे बुआ अक्ल की बात करता है। पहली-पहली बार उसने अचरज से छोटे को देखा था—काफी गहरे तक जांच-परख कर रहा है वह भी। अच्छा है। अच्छा है। सन्तुष्ट हुआ था अजित। आखिर लेखक का दोस्त रहना है उसे। कुछ गहरे तक समझने की कोशिश किया करे तो ठीक…

छोटे बुआ ने कहा था—'चल, एक सिगरेट लेकर आते हैं।'

अजित साथ हो लिया। वे सनातन धर्म मन्दिर के पासवाली दुकान तक आये। पासिंग शो की दो सिगरेटें लेकर फिर से कटोराताल की रेत में जा बैठे। धूप काफी चढ आयी थी—पर बगल में लगे पेड़ की छाया

गहरी। ताल के पानी से छूकर आती हवा में ठंडक। मौसम बहुत गड़बड़ नहीं कर पा रहा था उनके बीच। अजित और छोटे चुपचाप बैठे हुए इधर-उधर देखते रहे थे ··सहसा अजित ने कहा था—'उस रात मेरा तो बहुत दिल हुआ था कि कुछ किया जाये···पर···'

'पर···क्या हुआ ?' उत्सुक होकर छोटे बुआ ने सवाल किया।

'बहुत दुखी थी वेचारी।'

'हां-अ्···होने की ठहरी।'

दोनों फिर चुप हो गए। छोटे बुआ ने कहा—'एक बात है यार !···'

'क्या ?'

'सोच, अगर सचमुच तू उसे ले जाता तो···' उसने माथे पर सिकुड़नें डाली, 'तो क्या होता ?'

अजित एकदम चुप हो गया। कुछ डरकर छोटे बुआ को देखने लगा।

एक पल की चुप्पी के बाद छोटे बुआ ही बुदबुदाया था—'नहीं-नहीं, अच्छा ही हुआ पंडित !···बड़ी गड़बड़ हो जाती यार !'

'वही तो छोटे !···मैंने भी यही सोचा।' अजित की आवाज फिर से भर्रा गयी थी—'असल में यार, मैंने सोचा कि मुझे···तू तो जानता ही है—मुझे तो लेखक बनना है। और ये जो आदमी लेखक बनता है ना, उसकी बहुत बुरी हालत होती है। कहा भी है—ये स्साला रुपया-पैसा, धन-लक्ष्मी जो है ना, सरस्वती के घर में नहीं आती। और लेखक का घर यानी सरस्वती का रेजिडेंस। बस, यही सोचकर मैंने दिल थाम लिया यार !···वर्ना सोच तो बटनिया जैसी लड़की कहे और मैं क्या उल्लू हू ?'

'हां, बात तो ठीक है···' छोटे ने गहरी सांस ली—'तूने ठीक ही किया। बिल्कुल ठीक किया।'

अजित सन्तुष्ट था इस समर्थन से। छोटे बुआ ने तर्क से ही सही पर मान लिया है कि अजित ने ठीक किया। बटनिया को लेकर उसकी पसन्द भी ठीक थी और फैसला भी ठीक ही हुआ। पर जाने क्यों एकदम उसे लगा था कि बटनिया फिर से करीब आ पहुची है ··मासूम, परेशान और सरल बटनिया। कितना विश्वास और आदर-प्यार लेकर अजित के पास पैसे लेकर आयी थी···? सिगरेट का एक तेज कश खीचकर आंतो तक

अजित ने छोटे की ओर देखा था। किसलिए?…होंठों पर मुसकान थी। छोटे बुदबुदाया था—'भाऊ भी स्साला!…बिसको मौका मिला नहीं कि…चल, यार!' वह बाह थामकर अजित को एक ओर खींच ले गया था।

मोठे बुआ देर तक बन्द कमरे में जाने क्या-क्या सिखाता-समझाता और शान्त करता रहा था सुनहरी को। महल्ला भर निगाहें ऊपर कमरे पर अटकाये रहा था…सुनहरी के दुख से नहीं—मोठे बुआ के ऊपर होने से। सुरगो-वैष्णवी एक-दूसरे को देखती मुसकायी थी…सहोद्रा ने भुन-भुनाकर कहा था—'रांड!…अब उस अड़ाम-धड़ाम् को लेकर घुस गयी घर में!…ठीक ही किया जमना ने। इस लुगाई के तो टैंटुए से लगकर खून पी लेना चाहिए!' फिर वह घर के भीतर चली गयी थी।…

अजित और छोटे बुआ गली में सरक गये थे…बाहर की तरफ। दोनों के दिमाग में मोठे की बाहों में फंसा सुनहरी का अस्तव्यस्त, अर्धनग्न शरीर…अजित ने कुछ कसमसाहट और दुख के साथ सोचा था—'स्साला मोठे!…मौका मिला नहीं कि…'

सारे दिन रोयी थी सुनहरी। शाम को केशर मां के पास जा बैठी थी। वही बात शुरू हुई तो…केशर मा ने कहा था—'देख सुनहरी, बुरा मती मानना। मर्द-औरत के बीच यह सब 'डिरामा' ठीक नहीं।'

'पर… पर, देखो तो बुआ—मैं क्या करूं। कैसे मारा है बेरहम ने? यह आदमी है मेरा?…अरे, ये तो दुसमन है!…पता नहीं कौन जनम के मेरे पाप…' फिर वह रोने लगी थी।

देर तक समझाने के बाद केशर मा ने वह संसार-सत्य उजागर किया था। अजित एक ओर बैठा सुन रहा था…कभी-कभी केशर मा बड़ी ऊंची बातें करती है। असल में रामायण या महाभारत से निकाल लेती है और फिर ज्ञान बिखेरकर पूरे गली-मुहल्ले पर हावी हो जाती है।…

'… बैलगाड़ी के दो पहिए होते हैं…एक भी पहिए में खोट हो तो बैलगाडी चल ही नहीं सकती!…'

वही कुछ याद हो आया है अजित को…सुनहरी-सुकुल को लेकर नहीं, अपने और बटनिया को लेकर…

बैलगाड़ी के पहिए ! अजित ने सोचा था—सच ही तो बटनिया के साथ जोरदार घर बसता। अजित बनता पति। बटनिया होती पत्नी। फिर वह सुबह-सवेरे चाय बनाकर देती, केशर मा के पैर दबाती। उस पर हुक्म बरसते रहते और वह चुपचाप काम किये जाती। जाननेवाले से भी उत्ती ही बात, न जाननेवाले से तो बात ही नहीं। एक दिन चन्दनसहाय के पास कहीं से तार—टेलीग्राम—आ गया था। तारवाले ने आकर दरवाजे पर आवाज लगायी थी—'तार !…'

बटनिया अकेली थी घर में। होंठ काटकर एक ओर गरदन छिपाये बोली थी—'लाये हो तो वहीं अरगनी पर लटका दो !…'

और तुलसी घर की माटी गोढ़ता अजित एकदम से हंस पड़ा था। तारवाला भौंचक्का।

बटनिया बात कहकर कमरे में गायब हो चुकी थी। तारवाले ने अजित की ओर रुआंसे होकर देखा था, जैसे पूछा हो…'क्या करू, भइया ?'

अजित हाथ झाड़कर आगे आ पहुंचा था। पेट से माटी पोंछकर कहा था उसने—'लाओ, मैं लिये लेता हूं।' फिर दस्तखत करके टेलीग्राम लिया था उसने। भीतर बटनिया के पास जा पहुंचा था…कुछ चिढ़ते हुए कहा था—'तू भी खूब है। अरे तार क्या अरगनी के ऊपर लटकाये जाते है ?…'

और बटनिया अबोध बच्ची की तरह उसका मुंह देखने लगी थी।

अजित ने तार का लिफाफा उसकी गोद में धरते हुए कहा था—

'ले !…चन्दन भइया आ जायें तो दे देना। तार का मतलब होता है—जरूरी चिट्ठी।'

ऐसी भोली-भाली बटनिया जब अजित के साथ बैलगाड़ी का जोड़ीदार पहिया बनती तो बैलगाड़ी दौड़ती चली जाती…कभी उनमें झगड़ा न होता। न वैसी कोई नौबत आती, जैसी जमना या सुनहरी के बीच आती है…उसने सिलसिले में कितने ही मोड़ों को लेकर सोच डाला था। रेशमा और रामप्रसाद…कम्पाउन्डर और सुरगो…जया मौसी और सुरेश

जोशी···

तुरत ही लगा था कि गलत तुलना कर रहा है। ये तो उस तरह के लोग है ही नही, जिस तरह का घर उसका है···असल में नीचों से तुलना करना क्या ठीक होगा? उसने यह सोच-विचार ही छोड़ दिया। जब बटनिया और वह बैलगाड़ी के पहिए ही नही हो सकते—हो नहीं सके हैं—तब बेकार ही माथापच्ची क्यों कर रहा है अजित? पर जाने क्यों, बटनिया को पत्नी की जगह सोचकर अच्छा लगता है···वह दोबारा वहीं से टूटकर फिर जुड़ने लगा था···

मूर्ख है अजित। उसने धक्के की तरह हरदोईवाले का चेहरा अपने सामने महसूस किया था। काला, चेचक के दागों से भरा चेहरा···

छि: !···अजित का मन घिन से भर उठा। बटनिया के बारे में सोचते ही कम्बख्त घोड़े का चेहरा करीब आकर हिनहिनाने लगता है। मन कड़वा हो उठा।

राह चलते तांगे पर नजर जा ठहरी। एक मरातुआ घोड़ा सामने से चला आ रहा है। पीछे-पीछे उसे चाबुक मारता तांगेवाला बैठा है।

ऐसे ही बटनिया उस घोड़े को चाबुक मारती हुई चलाती रहेगी··· असल मे खूबसूरत तो बटनिया है···वह जरूर-जरूर हावी हो जायेगी उस पर।

'पंडित !···'

ध्यान बंट गया था अजित का।

'अपने मुहल्ले में एक धमाका होने वाला है।' छोटे बुआ ने ख़बर दी थी।

'कैसा ?'

'टोपनदास ब्याह कर रहा है।'

चलते-चलते अजित जोर से लड़खड़ाया था···'क्याअ् ? ··'

'हा अ् !' छोटे बुआ ने शान्त स्वर में जवाब दिया था—'टोपन दूल्हा बनेगा !'

अजित एक पल सोचता रहा था, फिर लगा कि राह काटने के लिए छोटे कुछ तो भी बात कर रहा है···उसने भी 'कुछ तो भी' जवाब दिया

था ''सहजता से सवाल किया—'भैंस किस डेयरी की है ?'

छोटे बुआ ने गुस्से से उसे देखा—'तू क्या समझता है कि मैं हंसी कर रहा हूं ?'

'मैं भी कहां हंसी कर रहा हूं।'

'पण्डित, तुझे विश्वास नहीं हो रहा हो तो'''तो तू पूछ लेना किसी से भी ''सबको मालूम है कि टोपनदास ब्याह करेगा।'

अजित ने जवाब नहीं दिया था। अगर इस मजाक को भी छोटे बुआ इस कदर गंभीरता से लेता है तो जाहिर है कि छोटे बुआ और अजित के दिमाग में कोई मुकाबला ही नहीं है। वह फिर से बटनिया को लेकर सोचने लगा था ''पर सोचने नहीं दिया था छोटे बुआ ने। बोला था—'और तुझे एक नयी बात बतलाऊं ?'

'हूं ''' ऊबते हुए अजित चलता गया।

वे नाले तक आ पहुंचे थे। वहां से कुम्हार मुहल्ले मे होते हुए गली तक पहुंचना सुविधाजनक रहता है। गन्दे, बदबू और कचरे भरे नाले मे उतर गये थे वे। आधा नाला सूखा हुआ है—सारे शहर के जमींदारों ने कचरा डाल-डाल कर नाला पाट दिया है। नाले का आधा हिस्सा रोड में बदल चुका है। पर बदबू जबरदस्त !

टूटे काच के टुकडे, गन्दगी मे नहाये कचरे और सडांधवाले हिस्से से बचकर आगे-आगे चलता हुआ छोटे बडबड़ाये जा रहा था, 'जब तू बम्बई चला गया था ना, तभी मिन्नी डाक्टर घाटपांडे के यहां से लौटी थी—मालूम है तुझे ?'

'मालूम है।' अजित ने कहा था'''छोटे बुआ आगे कुछ कह सके, इसके पहले ही बुदबुदाया था—'और'''और लोग तो बकते है यार ! उस दिन मोटे बुआ ने बहुत गन्दी बात कही थी मिन्नी को लेकर। मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगा !'

'क्या बोला था भाऊ ?'

'बोला ''कि ''कि कहने में भी शर्म आती है यार ! मिन्नी अपनी दोस्त है। उसके बाप ने अर्जुन को पढ़ाया है यार !'''

'इससे क्या होता है'''!' छोटे बुआ ने जरा भिनककर सवाल किया

था—'तू तो ये बता कि भाऊ ने तेरे को क्या बोला ?'

'बोला कि मिन्नी घाटपाण्डे के यहां से किसी का पाप खाली करवाकर आयी है !' अजित ने कुछ घिनाते हुए बतलाया था।

'तो कोनची गलत बात बोला भाऊ ?···सच्ची बोला।'

'तुम···तुम भी यही कहते हो छोटे ?' अजित चिढ़ गया था—'मिन्नी ऐसी गन्दी लड़की है कोई ?'

'मैं बिसको किदर बोला कि गन्दी है ?' वे कचरे वाला रास्ता पार कर चुके थे। छोटे ने मुड़कर देखा था—'गन्दे हैं बिसके मईयो-बाप !···'

'यानी तुम मास्टरजी को भी···'

'अबे छोड़ !···' छोटे ने तुनतुनाकर कहा था—'घूरे को घूरा नहीं बोलने का तो क्या बिसको मन्दीर बोलने का ? ऐं ?'

'तू मिन्नी को घूरा कह रहा है ?' अजित ने गुस्से से भरकर सवाल किया।

'हा !···घूरा नही कह रहा हूं···बिसको···बिसको तो मैं संडास बोलूंगा !' छोटे बुआ लगभग हांफने लगा था···कठिनाई से उपमा बटोर पाया। बुरी तरह थक उठा।

अजित ने उसे देखा। चेहरा तमतमा आया था अजित का। बोला—'ठीक है। अगर तू इतना गन्दा आदमी है तो तेरी-मेरी दोस्ती खत्म !···'

'अरे, ऐसी-तैसी तेरी और दोस्ती की !' छोटे ने कहा—'सच्ची बात सुनने का सबूर नहीं है स्साले में ! ··परे हटके चल मेरे से !'

'हां-हां—तू जा !···' अजित खड़ा रह गया था। छोटे बुआ गुस्से में चला गया था। देर तक झुंझलाया हुआ अजित इधर-उधर देखता रहा। ऐसे होते हैं दोस्त ? साला बकता है ! मिन्नी को लेकर बकता है। अजित को मिन्नी याद हो आयी थी। उससे भी झगड़े हुए हैं अजित के पर कोई इस तरह कहे—अजित नही सहेगा ! फिर ये छोटे···इसको कितना अपना समझता है अजित। बटनियावाली बात भी इससे छिपायी नही। सुनहरी वाली बात भी नही छिपायी···

फिर अजित डर गया था। छोटे से झगड़ा बढ़ाना ठीक नहीं है। अगर चन्दनसहाय से सब कुछ कह देगा तो बटनिया को पीट-पीट कर उसके सारे

बदन में घुंघरू लगा देगा चन्दनसहाय। अपने आपको इज्जतवाला आदमी मानता है। चलते में ये जख्मों के घुंघरू बजेंगे···बटनिया के मुंह से अई-ऊई करके झनझनाहटें निकला करेंगी। वह परेशान हो उठा था। ··अच्छा नही किया—उसके सामने अपने पत्ते खोलकर। उसे सारी तुरपें पता है अजित की। पहली चाल में ही शो करवा देगा। थका हुआ-सा चल पड़ा था गली की तरफ···

अगर अजित को लेकर कुछ कहा-सुना तो अजित भी छोटे की वह कलम करेगा कि बच्चू के सारी कोपलें उतर जायेंगी। उसे मालूम है बेबी वाला किस्सा। वे सब बातें अगर अनसूयाबाई तक पहुची तो बस··· समझलो कि कुरुक्षेत्र कर डालेगी !···अजित सन्तुष्ट हो रहा था मन ही मन। इस खयाल से छोटे को लेकर पैदा हुआ भय भगा लिया था उसने—कोई शरारत नही कर सकता।

कुम्हारगली पार करता हुआ वह आगे बढने लगा, तभी देखा—छोटे बुआ एक चबूतरे पर बैठा है अजित को देखता हुआ···अजित ने मुंह मोड़ लिया था। जाहिर होना चाहिए कि वह मिन्नी या किसी भी लड़की को लेकर बकवास नही सह सकता। अजित कभी नही सहेगा। उसके सामने से गुजरा तो बोल पड़ा था वह—'ऐ ?···'

जरूर अजित से ही कह रहा है···स्साला ! अजित ने भुनभुनाकर सोचा—जब मेरी और दोस्ती की 'ऐसी-तैसी' कहके जा चुका है, तो बोलता क्यों है ? ··अजित नही रुकेगा।

'अबे पंडित !···' फिर अजित ने पदचाप [illegible]। अगले ही पल छोटे बुआ ने उसके कन्धे पर धीमे से हाथ [illegible]—तू तो मन में ही गुस्सा हो गया बे !···'

झगडा भी करता है ?' और अनायास ही लगता है अजित को गहरी तकलीफ और भर्राहट उतर आयी है उसकी अपनी आवाज में।

'पर झगडा तो तूने पहले किया था ?'

'नही, तूने !'

'अच्छा, चल मैंने ही किया था झगडा···पर जरा सोच तो—अपुन को दूसरों का मामला लेकर क्यों लड़ना चाहिए ?'

'ये तो मैं भी कहता हूं।'

'तो बेकार ही लडे हम···बात तो मिन्नी की हो रही थी।' वे साथ-साथ चलने लगे है। अजित फिर से चिहुक उठा है मिन्नी का नाम सुनकर···'तू उसके बारे मे उलटा-सुलटा क्यो बोला ?'

'मैं उलटा-सुलटा कहा बोलता हू यार !' उसने बहुत धीमी आवाज मे कहा था—सब कहते हैं ··तुझे भरोसा नही होता ना, तो तू खुद देख के आ !···'

'मुझे क्या उसका पाप दिख जायेगा ?' अजित ने सवाल किया।

'पाप दिखे-न-दिखे···पर इत्ता तो तू देख ही लेगा कि उसकी हालत क्या है ?' छोटे बुआ ने अपनी आखें छोटी-छोटी करते हुए बुदबुदाकर कह दिया है।

'क्या हालत है ?'

'पीली हो गयी है बिलकुल !···ऐसे, जैसे मर ही गयी हो !' छोटे बुआ ने मुह बिगाडते हुए कहना जारी रखा था···'अरे यार, यह तो मामला ही ऐसा होता है···औरत लोक बच्चा देती है ना तो बस···बाई (मा) कह रही थी—दूसरी बार जनम होता है औरत का ! मिन्नी का भी दूसरी दफा जनम हुआ है।'

अजित भौचक्का-सा सुनता रहा था·· सुननेवाली बात। उससे भी ज्यादा समझने की। कुछ कहने से पहले सिर्फ सोचा था उसने—सोचना ही होगा।···औरत, बच्चा, दूसरा जनम···और मिन्नी—सबके बारे मे सोचना होगा।

और उससे भी पहले देखना होगा मिन्नी को। अजित जल्दी-जल्दी चलने लगा था। इतना तेज कि छोटे बुआ पिछड़ गया···पूछा था, 'क्या

हुआ ?'

'अब मैं घर नही जाता—तू जा !…'

'और तू ?'

'फिर मिलूगा…' कहता हुआ अजित लगभग दौड़ती चाल में मिन्नी के घर की ओर लपक पड़ा था…

मिन्नी ! …अजित के भीतर क्या था मिन्नी को लेकर—आज तक नही समझ सका है। और मिन्नी के भीतर अजित को लेकर क्या था—पता नही मिन्नी समझ सकी या नही। पर दोनों के बीच में कुछ ऐसा जरूर था, जो न समझते हुए भी समझा हुआ लगता है। क्या है ? मालूम नही। एक बार लगा था कि समझने की कोशिश करे—क्या है ? पर समझ नही आता। शायद यह कोशिश कभी मिन्नी ने भी की हो ? अजित ने सोचा था…लगा कि वह समझ नही सकी होगी।

कितनी तो माथापच्ची करता रहा था अजित ? पर समझ सका ? नहीं। …और अब, जब समझा है—तब लगता है कि जिस रास्ते को लेकर वहम में पड़ा था…दूर, कही बहुत दूर छोड आया है…अब वह रास्ता उसका अपना नही रहा !…शायद मिन्नी का भी नही रहा। किसी का नही रह सकता। एक जगह आती है जब हर आदमी अपने रास्ते चुन लेता है…फिर साथ के रास्ते कभी उसके साथ के नही रहते…वह रास्तों का नहीं रह जाता।

अब लगता है कि रास्ते पहचान ही नहीं सके ये दोनो। दोनों क्यों ? शायद अकेला अजित …

उस दिन जब अजित वहां पहुंचा, तब कितनी-कितनी बातें दिमाग में घुमाता-फिराता नही पहुंचा था ? मिन्नी पीली हो गयी है !…यही तो कहा था छोटे बुआ ने। सुनते ही अजित के दिमाग मे मिन्नी उभर आयी थी। हसती, मुसकराती, सकुचाती मिन्नी…चमकते दात, दमदमाता चेहरा। ऐसे मिन्नी पीली क्यो हो गयी ? कैसे ?…और फिर उसे लगा

था कि उसके सामने पीली मिन्नी खड़ी है···मुरझायी हुई।

कितनी बुरी लगती थी वह पीली मिन्नी? अजित दुखी होने लगा था। पर अजित को बुरी क्यों लगती है मिन्नी?···और फिर उससे भी आगे दुख क्यों होता है?···

अजित कारण नही खोज सका था अपने भीतर। मायापच्ची भी नहीं की थी। सीढियों तक आ पहुंचा था ···ये सीढ़ियां?···

अजित ऊपर। नजरें घूमती हुई—कहा है मिन्नी सहसा कुछ याद हो आया था ' छोटे बुआ ने कहा था कि पाप खाली करवाकर आयी है!··· अजित जानता है कि पाप खाली हो या पुण्य औरत पीली पड़ जाती है और जब पीली पड जाती है, तब वह महीनों, वरना कुछ दिनों तक तो जरूर ही बिस्तरे की होकर रह जाती है।

मिन्नी भी बिस्तरे की होकर रह गयी होगी!···उसने पुकारा था—'मिन्नी!···'

आवाज गूंजकर रह गयी थी। अजित भटकी-भटकी नजरों से यहां-वहां देखता रहा था। इसका मतलब है कि घर मे कोई है ही नहीं। इस तरह घर को खुला छोडकर जाना मास्साब के यहां नया नही था। अकसर इसी तरह आस-पास जाते हुए लोग घर खुले छोड जाते है। ताला तो तब लगे, जब दिन-दो दिन को कही बाहर जाना हो।

घर खुला था इसका मतलब था कि आसपास ही कही होंगे। मास्टर साहब, मिन्नी या मायादेवी!···जया भी याद आयी थी उसे। पर मन दबोच लिया था। अब जया का नाम तक धुंधलाने लगा है इस घर-गली में! लौटने को ही था कि एक कमजोर-सी आवाज आयी थी—'कौन है?'

ये आवाज मिन्नी की है!···वही है। अजित एकदम से चिल्ला पड़ा था—'मैं, अजित!··'

'अच्छा-अच्छा, आ ना!···भीतर चला आ!'

अजित तुरन्त आवाज की दिशा मे बढ गया। बिल्कुल बगलवाला कमरा। वही कमरा जो कभी जया मासी का हुआ करता था!···

वह लेटी थी। एक चादरा बदन के ऊपर।

चेहरा?···पीला होना चाहिए! अजित ने परेशान होकर नजरें उस

पर टिका दी थी।

जिस तरह पीला कहा जाता है, पीला नही था। होता भी नही है। पीलेपन का मतलब है, कमजोरी ! कुछ बहुत जबरदस्त कमजोरी की हालत ! सचमुच मिन्नी कमजोर थी, आंखें गढों में घुसी हुई-सी और आवाज भी कितनी मरियल !···

अजित करीब पड़ी खाली कुर्सी में धंस गया। जब जया मौसी इस कमरे मे हुआ करती थी तो अजित भी इसी तरह कुर्सी मे धंस जाया करता !···पर अब कहां है जया मौसी—कौन जाने ?···अब है मिन्नी। वही पलग, वही जगह—वही हाल—पर कुछ अलग तरह !

'तू तो कही भाग गया था ना ?···घर से ?' मिन्नी ने लगभग मिमियाते हुए स्वर में सवाल किया था। अजित, जो पल-भर पहले मर्द की तरह उसे डांटने-डपटने का फैसला करके आया था—अचानक बुझ गया था !

'मैं भागा नहीं था !' उसने कुछ चिढते हुए कहा था—'बस, घर से चला गया था !'

उसके फीके, उदास और खाली पापवाले चेहरे पर हल्की चमक फैली थी। ऐसे जैसे धुंधलके में जुगनू कौंधा हो। न ठीक तरह चमक, न ठीक तरह धुंधलका ! बोली थी—'एक ही बात है। चल यूंही सही··· कहां-कहां गया ?'

अजित ज्यादा ही चिढ़ उठा। कुछ झुंझलाते हुए कहा था—'वह सब छोड़ो, यह बतलाओ कि यह···' अजित बोलते-बोलते अचानक ही थमकर रह गया था···बदहवास-घबरायी-सी नजरों को मिन्नी के समूचे बदन पर फिराते हुए पूछा था उसने····'यह···यह सब ?'

मिन्नी का चेहरा अचानक ही ज्यादा पीला पड गया था, यानी कुछ कमजोर। पर वह हंस पड़ी थी। कैसी हंसी थी वह ? ऐसे जैसे किसी तसवीर के होठों पर बच्चे ने स्याही से नकली होठ बनाये हों ! बढ़िया तसवीर और उसके बदरंग हो गये होठ। कहा था—'तुम्हारा मतलब मेरी बीमारी से है ?'

अजित ने हल्की-सी राहत महसूस की थी। कभी इसी मिन्नी के मुंह

से 'तू' कहा जाना ही अच्छा लगता था उसे···पर अब नहीं। अब इनके मुंह से 'तुम' ही ठीक है। आखिर मिन्नी वह लड़की है, जो पाप खाली करवाती है और अजित होनेवाला लेखक···कुछ तो हो ही चुका है!

कहते हैं कि वक्त फर्क कर देता है आदमी की हैसियत में। यह फर्क होना ही चाहिए!···

उसने सवाल किया, 'यह बीमारी है?'

'हां', वह बोली, 'बीमार न कहोगे तो क्या कहोगे इसे?'

'यह पाप है!···'

वह चौंकी, दुखी हुई, फिर हंसी। वही धुंधलायी शाम में चमका जुगनू। कहा—'अच्छा, पाप ही समझ लो!···' उसने गहरी सांस लेकर जवाब दिया था—'यही जानना चाहते हो ना कि कैसे हुआ? ··सुनो।' उसने आवाज एकदम दबाली थी। एक बार दरवाजे के बाहर तक नजर घुमायी। बोली, 'मैं सक्सेना साहब के साथ···'

'चुप हो जाओ।' अजित ने चिढ़कर और लगभग चीखकर ही जवाब दिया था—'तुम···तुम एकदम···' वह झुंझलाहट और गुस्से से भरकर दांयें-बायें सिर हिलाता हुआ बड़बड़ाया था—'क्या कहूं तुम्हें?'

'कुछ भी कह दे!···'मिन्नी ने सपाट आवाज में जवाब दे दिया—'जो तेरा मन चाहे। मैं रोकूंगी नहीं।···इतने सारे लोग कह रहे हैं, किसी को रोक सकती हूं?···'

'और···और फिर भी तुम्हें शर्म नहीं है मिन्नी?'

'यह शर्म क्या होती है?'

अजित भौचक्क हो गया। लगा कि पागल हो रही है वह!···शायद पाप के अहसास से पागल हो रही है। हो ही जाना चाहिए! उसने चिढ़कर सोचा था।

'तुम घर से भाग गये! मैंने अस्पताल में ही सुना था यह। फिर सुना है कि तुम कुछ जेवर भी ले भागे थे।···तुम्हें नहीं आयी शर्म?' मिन्नी ने कौंधते हुए कहा था, पर आवाज में ठंडापन था···अजब था यह क्रोध! ठंडेपन के साथ कड़वाहट और जलन लिये हुए! ··बोली—'जया मौसी घर से भाग गयी थी। सुरेश जोशी के साथ। पापा उनके भागने की

रिपोर्ट लेकर कोतवाली गये थे। मोठे के साथ ··वहां उन्हें कान्स्टेबिल ने ही डाट दिया था !···मम्मी कभी भी पापा को घकिया देती हैं ? किसी को भी तो शर्म नहीं आती !···क्या होती है शर्म ?'

अजित विस्मय से मुह खोले हुए उसे देखे जा रहा था। कैसी-कैसी बातें करती है यह ?···इसे तो सचमुच ही शर्म नहीं है। कहा—'तुम्हें डूब मरना चाहिए मिन्नी !'

'क्यों ?'

'इसलिए कि तुम ··तुम ··डॉक्टर गोविल, सक्सेना···चू-चू बिल्कुल प्रॉम ··'

हा-हा, ठीक है।···किसी और से कभी नहीं कहती मैं, पर तुमसे कहती हूं कि सब ठीक है।' वह भुनभुनायी आवाज में कह गयी—'पर मैं डूब क्यों मरूं ? ··अब तक कौन-कौन डूब मरा है ? तू मरा ? अपनी मां से दिन-रात जूझता-लड़ता रहता है ? उनकी गालियां सहता है ? फिर भी तू नही मानता ? घर से चोरी करके सिनेमा देखता है ? अपने दादाजी की अच्छी से अच्छी किताबें तूने रद्दी में बेच दी और किताबें लिखने के लिए ही कागज-कलम ले आया ?···तू मरा डूबकर ?···कोई नही मरता अजित ! कोई नही ! और क्यों मरे ? क्यों मरना चाहिए ? क्या एक वही रह गया है मरने के लिए ? ··'

वह 'तुम' से अचानक फिर 'तू' पर आ गयी थी। अजित को अच्छा नही लगा। कुछ भी अच्छा नही लग रहा था, पर कहना-टोकना ठीक नही लगा।

वह बड़बड़ाये गयी—'डाक्टर गोविल है ना यूनिवर्सिटी के हैड ··? उन्होंने मेरे मन बहलाने पर मुझे हर सब्जेक्ट में रिकमंड करके पास करवाया ? वह मरे ?···कहां डूबे वह ?···सक्सेना ने मुझे टीचर से वाइस हैड मिस्ट्रेस बना दिया। दसियों लड़कियों को सुपरसीड करके भी बना दिया ?···वह कहां डूबकर मरा ?···तब मैं ही क्यों मरूं ? ऐं ? बोल, क्यों मरूं ?'

'तुम एकदम बेशर्म हो चुकी हो !···तुमसे बात करना बेकार !' अजित ने लगभग थकते हुए कहा था। उसे लगा था कि उसकी आवाज पिट-सी

गयी है। एकदम मरियल।

वह हसी थी—'तो समझा तू !···दुनिया में पाप-पुण्य कुछ भी नही होता अजित !···जो कुछ होता है सिर्फ वक्त होता है, हालात होते हैं और···और *उन हालात में बिकना और खरीदना होता है···'*

'तुम मुझे उपदेश मत दो !···पापियों के मुंह से उपदेश···? मुंह···।'

'चल, तू मुझे उपदेश दे दे ?···तू तो अपने को पुण्यात्मा समझता है ना ?' उसने वैसे जवाब मे बडी आसानी से एक पत्थर खींच मारा था। रेशम में लिपटा हुआ पत्थर !

अजित चुप हो रहा है।

वह भी चुप हो चुकी थी।

अजित का मुंह लगभग सूज-सा गया था। बहुत क्रोध आ रहा था उस पर, उससे भी कही ज्यादा भाग जाने की इच्छा हो रही थी···फिर भी नही भागा था वह। बैठा ही रहा। देर बाद की चुप्पी के बाद वह बोली थी, 'चाय बनाऊ ?'

'नही-नही, मैं चलूगा !···'

'क्यों ?' उसने कहा—'समझी !···फिर उसने अजित पर व्यंग किया था, 'शायद पापियों के हाथ की चाय नही पीता होगा तू—क्यों ?'

अजित ने गुर्राकर उसे देखा था। वह उठ चुकी थी। सब कुछ भूल-कर अजित उसकी कमजोर हालत देखने लग गया था। उसने अपने भीतर कही तकलीफ महसूस की थी···क्या हालत बनाली इसने ?···फिर सहसा उसे क्रोध आ गया था मिन्नी पर। मन ही मन उसके नाम एक गाली सोची थी—वेश्या !···और वेश्याए कैसी होती हैं ? कुछ होती हैं, जो सरासर सरे आम कोठे पर बैठकर हर शाम ग्राहक बुलाती है, सौदा तय करती है। अजित ने चावड़ी बाजार की गलियों से निकलते हुए सब कुछ तो देखा है···? बल्कि अजित निकलता ही इस इरादे से है कि वेश्याओ को देखे · *कैसे-कैसे पोज बनाकर खड़ी रहती हैं ? घिन से बुरा-सा मुह बनाये* हुए अजित सोचता ही चला गया था···कई वेश्याओं के रंग उडे-पुते चेहरे उसके सामने उभर आये थे···ऐसा ही हो जायेगी मिन्नी। फर्क यही होगा कि वह इसी मुहल्ले मे रहेगी···इज्जतदार शिक्षिका बनी रहेगी। गांधी-

गौतम के पाठ बच्चों को रटवाती हुई !···कितनी अजीब बात है ! याद हो आया था कि उठें और भाग जाये उसके पास से···वह जा चुकी थी। चाय बनाने जा चुकी थी।

अब तो चाय पीकर ही जाना होगा ! वह थम गया था···वह चाय ले आयी तो अजित बिना कुछ बोले हुए चाय पीता रहा···जबरदस्ती घूट निगले थे उसने। कैसी तो लग रही थी चाय ? लगता था कि कोई गन्दी, घिनौनी चीज पी रहा है। पढ़ी-लिखी वेश्या के हाथ की चाय जो थी। फिर वह खाली प्लेट रखकर उठ पड़ा था वहां से। बिना कुछ कहे ···चला।

मिन्नी ने चादरा ओढ़कर फिर से पलग पर लेटते हुए कहा था—'अजित, मेरी बातों पर ज्यादा मत सोचना, वरना तुझे लगेगा कि सारी दुनिया को ही डूब मरना चाहिए। ··और तू जानता ही है कि इस तरह लोग डूबने लगे तो कितने नदी-तलाब नहीं भर जायेंगे ? गरीब, अमीर···सभी तरह के तो मुर्दे मिलेंगे पानी में ?' फिर वह हंसी थी।

अजित सीढ़ियां उतरता हुआ वह हंसी सुनता गया था ··ऐसी लगी थी हंसी, जैसे अजित के माथे पर—एकदम कनपटियों के पास थप्पड़ जड़े जा रहे हों ··और अजित के दिमाग में अनचाहे ही वे थप्पड़ मिन्नी के शब्द बनकर बहने लगे थे···'कोई नही मरता अजित !···क्यों मरना चाहिए ? क्या एक वही रह गया है मरने के लिए ?···'

अजित कभी नही चाहता था, पर लगता था कि हर बार वे शब्द उसका पीछा करते हैं···पीछा क्या करते है—उसके दिमाग में थिर होकर रह गये हैं···

कभी-कभी अजित सोचता—वह लेखक है और मिन्नी की बात समझ नही पा रहा है ? डूबने-मरने को लेकर कैसी-कैसी अनसुलझी बातें कर रही थी ? पर अजित नही समझा था। उस समय तो बस, मिन्नी से उसने नफरत ही की थी। नफरत की बात। आखिर नैतिक-मूल्यों को ताक पर जो फेंक दिया था मिन्नी ने ? ··कितना गन्दा काम ! पैसे और प्रतिष्ठा के लिए किस कदर घिनौनेपन पर उतर आयी थी वह ? ··उसने 'पाप' खाली करवाया डाक्टर घाटपांडे के यहां ?

सब ठीक लगे थे। छोटे बुआ, मोठे बुआ और वे सब, जो मिन्नी की

इस वेश्यावृत्ति को लेकर नाक-भौंह सिकोड़ते थे ? उसे मिन्नी से कटकर रहना होगा इसके बावजूद वह परे नहीं रह पाता था। उससे बोलना नहीं चाहता था, पर बोल पड़ता ··असल में बोलने के लिए वही उसे लाचार कर दिया करती। जब वह बोलती तो अजित को जवाब देना ही पड़ता !

तब ठीक नहीं लगता था ··पर आज लगता है कि ठीक किया। न करता तो, शायद बहुत कुछ जानने से बहुत अनजाना रह जाता।

बहुत बाद में समझ आया था कि मिन्नी ही सही थी। उसके तर्क, उसके थप्पड़, उसके बदले हुए मूल्य ··सब सही थे !···ठीक था उसका यह कहना कि वही क्यों डूबे या मरे ? ··

मगर उस समय समझ नहीं सका था अजित। लेखक होते हुए भी समझ नहीं सका था। असल में तब वह सब अजित के सामने ही कहा आया था जो इन मूल्यों की परतें छीलता है ? ··या कि अजित ही कहां परत-परत छिला था ? ··जब खुद छिला तब लगा कि मिन्नी ठीक कहती थी··· एकदम ठीक। अनायास ही इस ख्याल के साथ उसे पीले, रुग्ण, पिटे, उदास चेहरे से अजब-सा लगाव पैदा होने लगता ··

आज तक होता है ··पर कितनी देर हो चुकी है इस लगाव में ? काश अजित उस पल मिन्नी को लगाव दे सका होता ? उसी दिन दे सका होता, जिस दिन मिन्नी ने उससे डूबने-मरने का अपना दर्शन रखा था !

तब तो अजित ने अपना एक दर्शन बना रखा था। रोज केशर मां के घर में तैयार खाना मिलता था ··बढ़िया !···कागज, कलम, चाय, सिगरेट का खर्चा किसी बार केशर मां की सन्दूक से निकलता, किसी बार दादाजी की किताबें तम्बाकूवाले के यहां बेचकर !···सब कुछ तो ठीक से चल रहा था।

और बाहर भी सब कुछ ठीक चल रहा था ··सुनहरी, सहोद्रा, वैष्णवी सीतलाबाई, लकवे का मारा श्रीपालसिंह, सिन्धी टोपनदास, सुरगो ··सब !

शकरराव बैजापुरकर और अनसूयाबाई को रेशमा नाइन के निचले

कमरे में बातें करते देखा था उसने···वैधव्य की सफ़ेद साड़ी में अपना दूधिया चेहरा छिपाये बैठी रेशमा कह रही थी ···'देखो, काकी !···अब मेरा तो ससार में कोई है नही । जितने समय का शरीर-दंड है सो भोगना है ··सरधा-भक्ति है, इसलिए पूजा-पाठ सम्हाल लो···'

'हमें भगवान की सेवा-पूजा के लिए कोई ऐतराज थोडे ही है रेशमा, पन एक बात ध्यान रखने का !···हम मन्दिर सम्हालेंगे तो फिर चौबीसों घटे इदरीच् रहना होयेंगे। ··अन्, तुम तो जानती ही हो रेशमा, कि ·· रोटी-पानी तो शूद्र हो या ब्राह्मण—सबको चलानाच् पडता है !··· बैजापुरकर ने होले से अपनी काली, तेल चुपड़ी टोपी सिर से उतारी और माथे पर उगा हुआ मोटा-सा मस्सा सहलाया ··ये मस्सा इतना बड़ा था कि अपने आप मे एक बच्चा सिर लगता था। केशर मां कहती थी— 'ये भगवान शिव की मूरत होता है। शकरराव भगवान आदमी है!' साच्छात् शिवजी सिर पर बैठे हैं !'

वह शिवजी को नाखूनों से रौंद रहा था···गली से धीमे-धीमे गुजरते हुए उनकी बातें सुनने के लिए थमकर रह गया था अजित। किस बेरहमी से रौंद रहा है शिव को ? नाखून लगा तो खून निकल आयेगा !···

अजित रुकता नही, पर बैजापुरकर और उसकी घरवाली किस कदर ढोंगी है—खूब जानता था वह। लगा था कि रेशमा को उलझा रहे है ! धूर्त कहीं के ! रेशमा कह रही थी—'महाराज !···मन्दिर से सटा जो कोठा है ना—एकदम खाली है। उसमे रह लो। किराये मती देना। अब मैं ठहरी राड बेवा। इससे ज्यादा मेरे बम मे है ही क्या ?···जब 'ये' थे तो दो तीन रुपये देने की हैसियत भी थी मेरी। पर अब तो तुम जानो काकी, रोटी-रोजी का भी कोई आसरा नही है। इसी खंडहर से जो चार पैसे मिलेंगे उससे पापी पेट भरती रहूंगी। बस, इच्छा यही है कि भगवान जी स्थापित है इस घर में तो उनकी पूजा-सेवा होनी चाहिए !'

बैजापुरकर और उसकी पत्नी ने एक-दूसरे को देखा, जैसे आखों ही आखों में भगवान के भविष्य का फैसला किया हो, फिर बैजापुरकर ने कहा था—'ठीक है रेशमा !···अभी तो हम लोक सम्भालते है, पन आगू जरा सोचने का। आजकल तीन-चार रुपये महीने के मकान से क्या होने

क्या ?…कोई अंगरेज का जमाना तो रहा नहीं ? नयी सरकार आदमी का लंगोट तक खींच रही है !…'

रेशमा चुप थी।

अनसूयाबाई ने महाराष्ट्रीयन धोती की लांग सम्हालते हुए कहा था—'जरा चार लोगों के सामने तुम भगवानजी के जेवर-पोशाक हमको बता देना। उसमें ठीक रहेगा।'

'अरे, ऐसे कोई अंधेर थोड़े ही मचा है काकी ?…' रेशमा बड़बड़ायी थी 'चार जनों की जरूरत क्या है ? तुम कोई भगवान की चीज घर ले जाओगे क्या ?…राम-राम ! ऐसा सोचना भी पाप !'

'नहीं-नहीं, फिर ठीक रहता है !…' बैंजापुरकर ने कहा—'सब काम कानून से होने का !…है ना ?' इसके बाद वह पत्नी की ओर मुड़ा था—'काय हो बंडूच्या आयी, मी ठीक म्हनतो ना ?'

'खरोखर ! · बड़ू की आई यानी अनसूयाबाई बैंजापुरकर ने सिर हिलाया, 'अबी बडू के अण्णा ने ठीक बोला है। अब वह जमाना नहीं रहा रेशमा ! मनुष्य भौत पापी हुनाय !…भौत !…बिसका बस चलने का तो सीता माता की दड़िया भी ले के जाएंगा !…'

'हां-हां, सब ठीक से होना !…एकदम ठीक से !' बैंजापुरकर ने इस तरह कहा, जैसे 'बडू की आई' की पीठ थपथपायी हो !

धूर्त कहीं के ! भुनभुनाते हुए अजित का मन हुआ था कि इसी वक्त उनके बीच पहुंचे और रेशमा से कह दे—'भाभी, इन कढ़ीचटों से होशियार रहना !…ये देर नहीं करेंगे तुम्हारा हलुआ बनाने में !' पर नहीं कहा। ऐसा नहीं कहा जा सकता था। इस तरह कहने का मतलब होता केशर मां से युद्ध ! पहले तो शायद रेशमा को ही यह हरकत अच्छी नहीं लगती, फिर बात केशर मां के पास पहुंचती और वह सीधे एक ही सवाल करती—क्यों रे मुए, तुझे क्या जरूरत थी फटे में टांग डालने की ? तू कौन होता है किसी को शरीफ और बेईमान बतलाने वाला ? · फिर ये दोनों तुमसे कितने बड़े हैं उमर में ?…तुझे यह भी लिहाज नहीं रहा ?'

जी मसोसकर रह गया था अजित, पर फैसला किया था कि अवसर पाकर रेशमा को सतर्क कर जायेगा। ये दोनों ही बड़े धूर्त हैं !…शंकरराव

से उसकी घरवाली यानी वड़ू की मा कम से कम ६६ फीसदी ज्यादा शातिर है ! ··उसका वस चले तो सारी गली की सन्दूकें उठाकर घर ले आये। रेशमा के भगवान को किसी थैले में रखकर अरगनी पर लटका दे और उनके कपड़ों से वड़ू और वेवी की कमीज-फ्राकें सिल दे !···

चुपचाप चल पड़ा था घर की ओर ! सुरगो और वैष्णवी बातें कर रही थीं। सुरगो कह रही थी—'देखो तो !···चुनमुन के दादा को धार गये हुए कित्ते दिन हो गये। अभी तक छदाम नहीं भेजी !···अब यहां मैं इन पिल्ले-पिल्लियों को खिलाऊं क्या ? घास !···या छिनार हो जाऊं ?' उसकी आवाज भर्रा आयी थी। नौवीं वेटी गोद में सुरगो की छातियों के बीच सिर टिकाये बैठी थी। उसका सिर लगभग बीच के ढाल में खपकर रह गया था।

वैष्णवी ने कहा था—'ठीक कहती है वहना, पर···पर जरा उस विचारे गामलाल की भी तो सोच ! गया है तो वहां घर-द्वार जमायेगा, परदेश का मामला है। चार पैसे की लगी-वंधी तनखाह में से कुछ वचेगा, तव कहीं भेज पायेगा !'

'पर यहां मैं कैसे क्या करूं जीजी ?···तुम ही वतलाओ ?···' सुरगो की आवाज भरभरायी हुई थी। अकुलाहट आंखों से लेकर होठों तक झांकती हुई। 'एक तोले-दो तोले सोना बचा है सो भी लगता है कि···'

'कहीं गिरवी रख दे · फिर रामजी सब ठीक करेंगे।' वैष्णवी ने सलाह दी थी—'मैं पांडेजी से कहके सौ-पचास मंगवा दूंगी !···ला दे तो—क्या है ?'

और सुरगो अचानक अपनी चिन्ता, घवराहट छोड़कर सतर्क भाव से वैष्णवी की आंखों में देखने लगी, जैसे कह रही हो— मुझे वना रही हो ? ·· क्यों ? मैं क्या जानती नहीं कि तुम रत्ती-दो रत्ती का खेल बीच में जरूर कर दोगी ! जात से हो तो ब्राह्मण, पर तुम्हारी नीयत···' मगर नहीं कहा था सुरगो ने। वडे सलीके से वात टाल देती थी—'···अभी चार-छः दिन तो चल जायेगा जीजी, फिर देखूंगी। हो सकता है कि तब तक चुनमुन के दादा कुछ भेज ही दें ?···'

'ठीक है।' वैष्णवी का उदास-सा जवाब था। इस बार दर्द उभर

आया था।

अजित चुपचाप आगे बढ़ गया था। मालूम है कि वैष्णवी का पति पांडेजी इन दिनों जरा कड़की में है। भांग-गांजे की दुकान पर नौकरी करता था। ठेकेदार का ठेका गया, पांडे की नौकरी। अब कुछ और काम ढूंढ़ रहा है···मिल ही जायेगा! पांडे करतबबाज आदमी है। किसी न किसी की खुशामद करके उसे पटा ही लेगा पर यह वैष्णवी कभी समझ नहीं आयी अजित को। भरा-पूरा कसा बदन है। बदन गदराया हुआ। रंग गेहुंआ। आखें बोलती हुई-सी। मुसकराती है तो सामनेवाले को कुरेदती या गुदगुदाती-सी लगती हैं। कई बार अजित ने भी ये गुदगुदाहट महसूस की है···पर बाल-बच्चा कोई नहीं।

बांझ है!···बहुत पहले सुना था, तब समझा नहीं था बांझ का मतलब। बाद में जब समझा तो सहानुभूति से मन भर आया था अजित का। एकदम बुदबुदाया था—'बेचारी!···' तब बहुत-सी बातें पता लग चुकी थीं। यह कि बांझ होने का मतलब होता है—उस औरत को बच्चा-बच्ची कुछ नहीं होगा। पर जब पहली-पहली बार बांझ शब्द सुना तब इसकी खोज-तलाश की थी—मोठे से सवाल किया था सीधा। वही था सब में समझदार···सारे दिन और रात देर तक शहर में घूमते रहने, झगड़ने, शरारतें करने, नशेबाजी, जुएबाजी, करने से उसीका अनुभव सबसे आगे बढ़ा-चढ़ा था ··वह बहुत कुछ बतलाया करता। उसने कहा था—'बांझ माने, वैष्णवी के बच्चा नहीं होगा! कभी नहीं होगा!'

'क्यों नहीं होगा?' अजित ने उलझन में पड़कर सवाल कुरेदा था।

'इसलिए कि वह बांझ है।'

'पर···पर बांझ माने क्या? मैं तो तुमसे पूछ रहा हूं ना—तुम मुझे इधर-उधर क्यों भटकाते हो? बस, सवाल का जवाब दो। कैसी होती है बांझ?'

'जैसी सीतलाबाई है—और क्या?' मोठे ने जवाब दिया, पर वह भी सोच में था। शायद कारण खोज रहा था कि बांझ क्यों हो जाती हैं औरतें? फिर जैसे उसने कारण खोज लिया था। कहा—'देख बे!··· सीतलाबाई भाभी को खूब देखा है ना तूने—? भीतर तलक!···'

अजित ने भन्नाकर सवाल किया—'भीतर तक? क्या बकता है तू? पागल तो नहीं हो गया? अरे, मैं क्या उसे धोती फाड़कर भीतर तक देखना? बस, जैसे और औरतें देखी हैं, वैसे ही देखा है। हा, अब बोल!'

'मैं ये कह रहा हूं कि और औरतें जो दिखती है, वह तो ठीक है पन् भीतर तक देखने से मेरा मतलब है कि जब कोई औरत नहाती है, बैठती है···तो जरा उधर भी आख मारने का, जिधर बिसका बदन का ओ हिस्सा दीखता है जो हर बखत कपड़े के भीतर छिपा होता है। अब क्या समझा तू?'

'इत्ते भीतर तक तो मैंने नहीं देखा।' अजित उदास हो गया था।

'तब तू कैसे समझ सकता है कि औरत बाझ है कि नहीं?' मोठे ने जैसे हसी उडाते हुए कहा था—'तू नहीं समझ सकता!···अब जब शीतला भाभी नहाने को बैठे तो बिसको देखना···'

'क्या देखना?'

'देख!···' मोठे बुआ चबूतरे पर आराम से बैठ गया था। इस तरह से जैसे वेदी पर बैठकर प्रवचन करते जा रहा हो। बोला था—'सुन! · जब वह स्नान कर रही हो ना, तब देखना···इधर-उधर तरेट की तरफ!' कहते हुए मोठे बुआ ने अपने पेट के निचले, झुकावदार हिस्से पर थपथपाहट की थी—'इधर से पता लगता है कि बाझ है या बच्चा देगी!'

अजित के माथे पर सिकुड़नें थी—बिलकुल समझ नहीं आया था। बोला—'जरा ठीक से समझाओ!···मान लो कि देख लिया, तो भी क्या समझूगा—सभी औरतों के पेट भी होते है, तरेटें भी होती हैं···इसमें क्या समझूगा?'

'ओफ्फो!···एकदम बोगस!···' झुंझलाता हुआ मोठे जवाब देने लगा था—'अब स्साले तेरे को क्या बोलू, कोणची गाली दू—मेरे को येच् समझ नहीं आत्ता!···अबे तूने भौत औरत लोक की तरेट देखी होएंगी ना?'

'हा, देखी है।···सुनहरी की देखी है।'

'तो बस!···बिधर सुफेद-सफेद लकीरें होए था—आडी-तिरछी तो

समझ लेना कि ये बच्चा देती है, देती रहेगी···नहीं होए तो बांझ ! हो गया फैसला !' मोठे निश्चिन्त भाव से बैठ गया···अजित कुछ कहे, इसके पहले ही बोला था—'और सुन, जरा-सी मिस्टेक सुधार ले। ये जो सफेद धारीवाली पहचान है ना, सिर्फ उन औरत लोक में की जायेगी, जो ब्याह कर चुकी है, बिना ब्याहियों में हल्की धारी हों तो समझना बच्चा देंगी। क्या समझा तू—?'

'जो ब्याह कर चुकी हैं।'

'हां-अ् !···' सन्तोष चेहरे पर उगाकर मोठे ने बात खत्म कर दी थी, 'और इस तरियां तू अगर विसको···क्या बोलते है—? वैष्णवी को—देखेंगा ना, तो समझ आ जायेगा—स्साली बांझ है !···बबूल का झाड़!··· कोई फल लगेगा-ई नहीं स्साली के भीतर !'

एक पल खामोश रहकर अजित ने वह सब दिमाग में बिठा लिया था, जो मोठे बुआ ने बतलाया था। बांझ और बच्चा देने वाली का फर्क। पहचान तरेट। तरेट पर उभरी धारियां। सिर्फ शादी-शुदा औरतों पर लागू होती है पहचान !···लगा था कि माथे से एक बड़ा बोझ उतर गया है। अब, जब-जब किसी औरत से मिला, उसे भीतर तक देखा करेगा—पल में पहचान लिया करेगा कि भीतर क्या धरला है !···

दिमाग हल्का, बहुत हल्का हो गया था। एक जीवन-रहस्य को जो पा लिया था उसने ? कैसी अजीब बात थी। तब, जो-जो नया मालूम होता, लगता था कि कुछ पा लिया है। स्त्री-पुरुष के बीच की बातें, गदली नजरें, गालियों के अर्थ, कितनी-कितनी बातें तो होती थीं, जिनके रहस्य क्रमवार सामने आते थे और 'पा जाने का' अहसास होता था···

अनायास ही मिन्नी याद हो आयी थी उसे। उसकी तरेट पर भी सफेद गहरी धारियां पड़ गयी होंगी ? बच्चा दिया था उसने। मगर ऐसा क्यों होता है कि कोई बच्चा 'पाप' है और कोई बच्चा 'पुण्य' ?

सब विवाह का चक्कर है। यह विवाह एक ऐसा मुद्दा है, जिस पर पाप-पुण्य टिके हुए हैं। पर किसने टिका दिये—भगवान ने ?···

भगवान ने नहीं। अजित जानता था। कुछ लोग भीड़ की शक्ल में दोनों तरफ से इकट्ठा होते हैं। कुछ लड़के वाले, कुछ लड़की वाले। लड़के-

लड़की को ऊपर-ऊपर से मिला जाते हैं। यह मिलाना ही विवाह कहलाता है। फिर वे बच्चा दें या न दें—पर उन्हें वह सब करने का हक हासिल हो जाता है, जिसे बिना उनकी इजाजत के इधर-उधर करते रहने से पाप होता है।

इसका मतलब तो है कि पुण्य-पाप भगवान ने तय नहीं किए ? अजित अकसर इसी तरह की माथापच्चियां करता, सोचता और नतीजे ढूढ़ता··· ये नतीजे गाहे-बगाहे गली में घटती घटनाएं प्रभावित करते। कुछ नतीजे टूट-बिखर जाया करते। कुछ नया आकार ले लेते। यही था वह छोटा-सा गली-संसार···इसी तरह चल रहा था। पर बांझ वाले रहस्य ने मन में अजब-सा कौतूहल जगा दिया था। जाने क्यों, जल्दी ही सत्य को परखने की चिन्ता होने लगी थी उसे···

पर *किस तरह परखेगा? किसी लड़की या औरत से यह तो कहा नहीं जा सकता कि वह पेट के निचले वाला हिस्सा नंगा करके दिखा दे?*···

तब?···अजित ने बेचैनी से सोचा था। तब—यही एक तरीका है कि नजरें चौकन्नी रखनी होंगी। मिन्नी पर भी, वैष्णवी सीतलाबाई पर भी और ··और जो भी सामने पड़ जायेगी—उस पर!

एक बार मन हुआ था कि मिन्नी के पास पहुंचे। अधिकारभरी जिद के साथ प्रस्ताव कर दे—'जरा तरेट तो दिखा तू?···' पर अजित ने इरादा दबा लिया था मन में। ऐसा उससे नहीं कहा जा सकता। यों भी तकलीफ में है, फिर बेशर्म भी हो चुकी है। उसकी तरेट जांचकर कुछ नतीजा नहीं निकलेगा। निकला, वह विश्वसनीय नहीं होगा।

पर नतीजा निकालना जरूरी हो गया है···हल्की धारियां कुंवारी की, गहरी ब्याहता की। किसी के लिए हो न हो, अजित के लिए बहुत जरूरी हो गया है। असल में लेखक बनना है तो बहुत-सी बातें जल्दी-जल्दी पता लगाना होंगी। मालूम नहीं किस बांझ औरत को लेकर कब कहानी लिखनी पड़ जाये?

भूल नहीं सका था अजित। तब भी नहीं, जब हमेशा की तरह अपने कमरे में आ लेटा था। केशर मां ने दोबारा बिजली के पैसे भिजवाकर

चन्दनसहाय के जरिए बिल जमा करवा दिया था। बिजली फिर से घर में जुड़ गयी थी। असल में बहुत धूर्त है चन्दन। उसने सोचा होगा कि बटनिया के ब्याह में बिजली जरूरी होगी। केशर मां की सेवा-खुशामद करते रहना जरूरी है।

स्साला !···अजित भुनभुनाकर लेट रहा था। बीड़ी सुलगायी और कश खींचने-छोड़ने लगा।

केशर मां की आदत है कि जब-जब हल्का-सा बुखार हो जाता है, तब भगवान को तरह-तरह के नामों से पुकारने लगती है···दीनानाथ ! ··दीनबन्धु !·· दयासिन्धु, हे मेरे राम और कृष्ण कन्हैया···आदि।

यही कुछ पुकारें आ रही थीं बैठकवाले कमरे से। बीच-बीच में खांसी के कुछ ठसके उछल आते हैं। ज्यादा दूर चल नहीं पाती। चलती है तो सांस दौड़ती-सी लगती है। एक कशमकश शुरू हो जाती है केशर मां और उनकी अपनी सांसों के बीच। किसी बार सांस आगे होती है, किसी बार केशर मां। इस दौड़ में खांसी जैसे पगबाधाओं का काम करती है··

यह क्रम बढ़ता ही जा रहा है। डाक्टर कहते हैं कि तम्बाकू छोड़ दें। केशर मां कोशिश करती हैं। कुछ घण्टे कठिनाई से अपने को थामती है, फिर खा ही लेती है। कोई टोके तो मुंह बिसूरकर कहती हैं—'अब क्या करूं बाई !···एक यही रांड़ ऐसी मुंहलगी है कि बस···खा लो तो भी चैन नहीं, न खाओ तो भी चैन नहीं !···अब तो मरघट में ही छूटेगी !'

और अजित भुनभुनाता, चिढ़ता उनकी बातें सुनता रहता है। ढेर-ढेर देशी-अंगरेजी दवाएं आ चुकीं, पर हर दवा की शर्त है तम्बाकू। केशर मां हर बार तय करती हैं कि नहीं खाएंगी। फिर हर बार यह भी तय करती हैं कि खा ही ली जाये। कहने-टोकनेवाले थक चुके हैं। उस दिन वैष्णवी बोली थी—'बुआ !···अब तो मुझे तुमसे कहते भी सरम आने लगी है !' और जवाब में केशर मां हंस पड़ी थी, फिर हंसी में ही खांसने लगी, खांसते-खांसते हांफ उठी और लेट रही। शुरू-शुरू में जब ऐसा होता

था तब अजित भी घबराता था, और भी लोग घबराते थे, पर अब यह एक सिलसिला है। जैसे गली में बहुत से सिलसिले चल रहे हैं, यह भी एक सिलसिला चल रहा है। कौन-सा सिलसिला, कब टूट जायेगा, यह तय नहीं है। यह सिलसिला भी किस दिन टूट जायेगा—तय नहीं है।

वे खांसी, बुखार और हांफने के बीच भगवान को गड़मड़ करती हुई निरंतर आदत का सिलसिला जारी रखे हुए हैं···उसी के साथ दवाओं की नयी-नयी शीशियां और गोलियां आने का सिलसिला जारी है···

अजित ने सुना, फिर अनसुना कर दिया। बीडी धरती पर घिसकर कोने में फेंक दी और थोड़ी देर आखें मूदली। सोचने लगा कि 'तरेट' शीर्षक से एक कहानी लिखकर किसी बांझ की तकलीफ बयान की जाये तो कैसा रहे? ··वैष्णवी की उन आखों को अजित कभी नही भूल पाता, जब वे किसी गर्भवती के गर्भ को घूरती हैं, या किसी बच्चे को देखती हैं ··जरूर बच्चे को लेकर ललक होती होगी उनके मन में? अजित को याद है, एक दिन केशर मा से कहने लगी थी—'काकी!···तुम कहती हो ना कि ये चबूतरे पर बगल में ही एक संडास घर बनवा लूं, किसलिए इस-उसके संडास घर में मैं और पंडितजी जाते हैं···'

'मैं तो कह-कह के थक गयी!···' केशर मां ने तम्बाकू में चूना रगड़ते हुए कहा था—'अब सुनते हैं कि मराठे साहब उन सबसे हर महीने पैसे लिया करेंगे जो उनके पाखाने में टट्टी-फराखत के लिए जाते हैं ··'

वैष्णवी का चेहरा पिट गया था, 'राम-राम!···इत्ते बड़े आदमी, राजा-सरदार···! क्या अब ऐसा जमाना आ गया है कि अपने संडासघर-टट्टी जाने का भी चारज करेंगे?'

'हा, ऐसा ही जमाना आया है।' केशर मा ने तम्बाकू फाक ली थी—गड़बड़ाते शब्दों में कहा था—'धन्दा है ना—मेहतरानी। कहती है, दो रुपया माहवार हर घर से और चार रोटियां···अब तू, पांडेजी, उधर कम्पौडर के यहा से—सब लोग मराठे साहब के संडास में जाते हो तो सरदार साहब बारह रुपये महीने लेंगे!···वह भी बेचारे क्या करेंगे? आखिर को तीन भरे-पूरे घरों की टट्टी है···न इसका दोष, न उसका दोष!···' एक निर्णायक ढंग से बात खत्म करके केशर मां निश्चित हो

गयी थी।

वैष्णवी का चेहरा बिखर गया था…

केशर मां ने कहा था—'तेरे चबूतरे पर इत्ती जगह पड़ी है। चाहे तो नल, संडास, सभी कुछ बन सकता है…'

'बनवा तो लू काकी, पर कौन के लिए?…दो प्राणी है—न आगे नाथ न पीछे पगहा…कौन बैठा है, जिसके लिए यत्ता खटराग करेंगे…?' बोलते-बोलते वैष्णवी की आवाज पिघलने लगी थी। ऐसे, जैसे मुह में पानी भर रखा हो · 'कोई लड़की भी होती तो…' अनायास ही उसकी आखों में आसू घिर आये थे।

बस! ··एक ओर पत्रिका मे पढ़ने की कोशिश करते और बातों को सुनते अजित को लगा था कि केशर मा गयी काम से। यही जगह ऐसी होती है, जहां बेचारी केशर मां गर्दन तक पानी में डुब्ब-डुब्ब करने लगती है…उदासी मे उदासी मिलाकर कह दिया था उन्होंने—'रोज-रोज इसी बात को लेकर तू और पांड़े किसलिए जी जलाते रहते हो, मेरी तो यही समझ में नही आता। अरे, उस नीली छतरी वाले के खेल के बीच मे कोई बोल पाया है? ··वह तो वही जाने किसके भाग में क्या लिख रक्खा है!…'

और वैष्णवी आचल के खूट से आंसू पोंछ रही थी। केशर मा ने वातावरण से कतराते हुए कहा था—'अब भूल जा सब!…ये सब न करके उसीके सामने झोली फैलाये रख!…कभी तो सुनेगा बेदरदी!'

गर्ज यह कि बहुत दर्द होता है बांझ का। उस पर कहानी लिखा जाना बहुत जरूरी है। अजित ने सोचा था ··शीर्षक बढ़िया है ही—तरेट! वह खुश हो गया था ··

पास वाली सीढियों मे आहट हुई ··कौन हो सकता है? अजित ने सोचा था। इस वक्त सिर्फ चन्दन के घर के लोग ही होते हैं, जो आ सकें… उनमें भी बटनिया। केशर मां को जरा तकलीफ हो और बटनिया तुरत दौड़ी आती है।

बटनिया ही थी। उसने अजित के कमरे की तरफ देखा भी नहीं था। तेजी से दरवाजा पार करके बैठक की ओर चली गयी थी। अब उनके पैरों

की मालिश करेगी या फिर हाथ-पैर दबाती रहेगी ··हो सकता है कहें कि खाना बना ले ··

इस मेवा को लेकर भी बहुत सोचा है अजित ने। बटनिया खुद करती है या चन्दनसहाय ने तैनात कर रखा है कि खुशामद का एक हिस्सा वह सम्हाल ले—अजित समझ नहीं पाता। पर बटनिया को देखकर ऐसा लगता नहीं···खुशामदी तो एकदम नजर आता है ··बैजापुरकर काकी आती है तो पल में पता लग जाता है, साक्षात् घी का कनस्तर चला आ रहा है ··जो सामने पड़ेगा, उसी के पैरों में घी लुढ़काती जाएगी · फिसलन-ही-फिसलन ··ऐसी खुशामद कि बस ··जब आदमी पूरी तरह फिसलकर रिरियाने के हाल तक जा पहुंचेगा तो धीमे से हाथ में ली हुई कटोरी आगे बढ़ा देगी —'बडू के अण्णा को इस महीने पगार नहीं मिली ··जरा साखर हो तो देओ ना?'

इस तरह 'साखर' ले जायेगी। एक वादा भी देगी—'पगार मिलते ही वापस कर दूंगी···खातिर-जमा रखने का!···' पर मुहल्ले के हर घर में उसका वायदा रहा है···दस-दस, बीस-बीस बार रहे होंगे···साखर, घी, दाल, कभी कुछ भी वापस नहीं हुआ···

और केशर मां तो गजब की खुशामद पसन्द है। कोई बस इतना ही कह दे कि वाह-वाह केशर मां बड़ा ज्ञान की बात करती हो तुम···या फिर कैसे ऊंचे कुल वाले ब्राह्मण हैं आप लोग? ··अरे सनाढ्य ब्राह्मण! वे तो सबसे ऊंचे। ऋषियों में कित्ता ऊंचा दरजा था शाण्डिल्य और वशिष्ठ का? ओ हो—हो! और केशर मां दस का नोट भी दे सकती है। कटोरी भर शक्कर भी, आधा सेर दाल भी, और आखिर में एक सप्ताह तक गली में तारीफ भी!

ऐसी केशर मां को पटाने के लिए चन्दनसहाय ने अपने सारे घर को सेवक बना रखा है···क्या बटनिया भी···

पर नहीं। वह बेचारी ऐसी है नहीं ··उसके पीछे एक निर्मल भाव है।

'सुन?···'

अजित चौंक गया। बटनिया सामने थी।

'तू आज अचार के साथ ही खा लेया कि सब्जी चढाऊं?' बटनिया

पूछ रही थी—'केशर मा के लिए तो दो रोटी रखी हैं···'

'खा लूंगा अचार से !' अजित ने जवाब दिया और तभी ध्यान आ गया था तरेट का···उसके बदन का बिचौलिया हिस्सा घूरने लगा था··· इस तरह तन्मयता से घूरने लगा कि वह सहम गयी, 'क्या ?···क्या बात है ?'

'है ?···कुछ नही—ऐसे ही !' अजित ने जवाब दिया। बैठकर एक बीड़ी सुलगाने लगा···क्या सोचती होगी मन में ? अजित क्या लुच्चा हो गया है ? छि छि !···वह अपने में ही सकोच से भर उठा। उसे ऐसा नही करना चाहिए था।

वह चली गयी।

मगर 'न' करने से तो नही चलेगा ? कहानी के लिए प्रामाणिकता तो चाहिए ही···और जब तक पूरी तरह समझ न लिया जाए कि मोठे बुआ की बात सच है, तब तक···एक लाइन नही लिखी जा सकती !

और लिखने पर क्या कहानी बनेगी !···उसने दोनो होंठों को भीच-कर खुशी से सोचा। एक 'चूप्' की आवाज हुई।

बीड़ी के कश खीचते-छोड़ते रहने के बाद वह फिर लेट रहा था।

कब झपकी लग गयी थी—उसे मालूम ही नही हुआ। पता तब चला था, जब उसने अपनी बाह पर हल्की सी थपथपाहट महसूस की थी। हूं ? कहते हुए, कुनमुना कर पलकें खोली। देखा कि बटनिया खड़ी है। पूछा—'क्या बात है ?'

वह मुसकरायी। बेहद मीठी और मादक मुसकराहट। कहा—खाना नही खायेगा तू ?'

'हां-अ्···' कहता हुआ आखें मलता अजित उठ बैठा।

बटनिया ने कहा—'तेरे सोने-जागने का भी कोई वखत है कि नहीं ?'

अजित ने कुछ चिढ़कर उसे देखा, जैसे गुस्सा जाहिर किया हो। फिर

बिना कुछ कहे बाथरूम की तरफ चला गया। लौटा तब तक बटनिया खाना लगा चुकी थी। वह खुश हुआ। एक बार फिर याद हो आया। बटनिया के साथ कतराकर समझदारी नही की अजित ने। इतनी बढिया घरवाली मिलना आसान है क्या ? अनायास ही उसे सहोद्रा, सुनहरी, बदनसिंह की बहू ··कितनी ही औरतें याद हो आयीं। सब करीब-करीब एक सी हैं। किसी बात, किसी की परवाह नही करतीं। घरवाले, घर आते हैं और पिंगपांग की बाल जैसा टप्पा खाकर बाहर उछल जाते है।

उसे अच्छा लगा। पटे पर बैठते हुए उसने मुसकराकर बटनिया को देखा। वह भी मुसकरा दी। फिर अचानक उदास हो गयी।

अजित ने खाना शुरू कर दिया। वह उसे देखे जा रही थी।

अजित को लगा था कि कुछ बोलना चाहिए। न बोलने से एटमास्फियर कुछ जम नही रहा है। जमता तब है, जब सीतलाबाई वैष्णावी जैसी कुछ बात बने। जब वह पाडेजी को खाना खिलाती है तब इसी तरह सामने बैठकर पंखा झलने लगती है और पाडे खाते-खाते कोई न कोई बात करता है।

'बटनिया !' वह बोल पडा।

हू ?' वह जैसे गुनगुनायी।

'···' सहसा वह चुप हो रहा। बेबस निगाहों से बटनिया को देखने लगा। समझ में नही आ रहा था कि क्या कहे या क्या बोले।

वह पूछने लगी थी—'तू कुछ कह रहा था ना ?

'हा ··पर···'

'पर क्या ?'

उसे अपने-आप पर ही हसी आ गयी—'क्या बोलू ?···तू ही बता ?'

'मैं ? ··क्या बताऊगी ?' उसने कहा, 'तू ही बोल ना ? जो बोलना चाहता है ?'

'मैं ? ··हां-हा,मुझे ही बोलना चाहिए।' उसे जैसे कुछ याद हो आया। उसने शब्द दोहराये—'हां, मुझे ही बोलना चाहिए !'

बटनिया चुप हो रही।

अजित ने कहा, 'मैं तुझसे एक बात कहूं, बुरा तो नहीं मानोगी?'

'मैंने कभी माना है बुरा ?' वह बोली । अचानक उसकी आवाज धीमी हो गयी—'तूने मुझसे झूठ बोला, फिर भी मैंने बुरा माना क्या—बता ?'

अजित बुझ गया। कहा, 'तू उस बात को नहीं समझेगी ।' वह चुप हो गयी।

अजित को एकदम से याद हो आया था—बटनिया से इतनी तो खुली-खुली बातें होती है उसकी ? अगर उससे तरेट दिखाने को कहा जाये तो क्या मानेगी नहीं ? लगा था कि जरूर मान जाएगी। अजित से प्यार जो करती है ? और प्यार करने वालों में कुछ भी तो छिपा नहीं रहता ? याद आया था—एक फिल्म देखी थी उसने । नाम—सिन्दूर । उस सिन्दूर में दो प्यार करने वाले होते हैं। भला क्या छिपा है उनके बीच ? सब एक-दूसरे को एक-दूसरे के बारे में जाना हुआ। बटनिया इन्कार नहीं करेगी। पर···पहले पता लगाना होगा । बटनिया समझती है कि नहीं—प्यार होता क्या है ? सोचा कि वही पूछ लिया जाये।

'बटनिया ?'

'हूं ?'

'तू स ···' वह बोलते-बोलते थम गया था । प्यार की बात करना कितना कठिन होता है—पहली बार महसूस हुआ। अनजाने ही अजित के चेहरे पर उदासी उभर आयी थी।

'बोल ना—क्या बार-बार बटनिया-बटनिया कर रहा है ?' उसने कुछ झल्लाकर सवाल किया था।

'हां-हां ···' अजित ने हड़बड़ाकर कहा था, 'मैं तुझसे ये पूछ रहा था कि क्या तू ··तू मुझे···'

'हां-हां ··?'

'तू मुझे प्यार करती है ?' वह एकदम बोला और लगा कि केशर मा की तरह ही उसकी सांस भी जोरों से चल पड़ी है। हांफने तक। फिर वह एकदम चुप होकर नीचे देखता रह गया। ग्रास हाथ में।

वह पता नहीं इस बीच क्या करती रही होगी ? अजित को मालूम नहीं। पर देर बाद जब खामोशी तोड़ने के लिए उसने उसे देखा था। लगा कि उसकी आखें छलछलायी हुई हैं···धरती पर यू ही अंगुली फिराये जा रही है। कभी जल्दी-जल्दी, कभी थम-थमकर।

अजित ने मिनमिनाती आवाज में कहा था—'मैं समझ गया। तू मुझे प्यार करती है !'

उसने थूक का घूट निगला और उठ पड़ी। बोली—'मैं तेरे लिए पानी लाती हू ···' फिर वह जल्दी से कमरे के बाहर निकल गयी।

अजित कुछ निश्चिन्त हुआ। जैसे दूर तक पैदल चलने के बाद राहत मिली हो। सोचा—ये तो तय हो गया कि प्यार करती है, अब दूसरी बात करने की जरूरत होगी—बस !···तरेट !

वह काफी देर बाद आयी थी। तब, जब अजित खाना खा चुका था। उसने गिलास रखा और जूठी थाली-कटोरी उठाने लगी। फिर जल्दी से ही अजित को बगैर देखे वापस हुई। अजित ने कहा था—'थोड़ी देर बाद तू आना। तुझसे बात करनी है।'

'मैं नहीं आऊगी !' वह फुसफुसाकर कुछ गुस्सेभरी आवाज में कह गयी।

'कैसे नहीं आयेगी ?' अजित ने पानी पिया। उठ पड़ा।

बाथरूम में मुंह-हाथ साफ करते हुए उसे अनायास ही डर लगा था। अगर यह बात उसने केशर मा को बतला दी तब ?···एक भयभरी सुरसुरी उसने महसूस की थी, फिर सोचा—नहीं बतला सकती ! वह क्या जानती नहीं कि मैं भी उसके बारे में बहुत-सी बातें बतला सकता हू। वह रुपयों-वाली पोटली और 'तू' और 'तुम' वाली बात !···कुछ नहीं बतला सकती !

कमरे में आकर कुछ सन्देह के साथ सोचने लगा था—अगर वह नहीं आयी तब ?

आयेगी कैसे नहीं !···जरूर आयेगी। अगर वह कुछ बोल गयी है तो सिर्फ शर्म के मारे। औरतों को कुछ ज्यादा ही शर्म लगती है।

शर्म लगती है या शर्म जतलाती हैं ? ··अचानक उसने अपने को ही

टो कलिया—लगा था कि जतलाती है। इससे जरा उनका औरतपन जाहिर हो जाता है।

अगर सचमुच शर्म लगती होती तो ··ये सुनहरी, सहोद्रा, सुरगो जो कुछ करती है—करती? नहीं-नहीं, शर्म-वर्म कुछ नहीं। यही तो एक चक्कर है इन लोगों का। याद आया, उस दिन सुनहरी की बात चली तो मोठे बुआ बोला था—'तरिया चरित्र पुरुषो भाग्य···'

झल्लाकर टोक दिया था अजित ने, 'क्या गलत-सलत बोलता है? जब तुझे श्लोक आता ही नहीं फिर बोलता क्या है? ··हर बार गलत उपमा!'

'अबे, तब तू ही बोल दे!' मोठे बुआ बोला था—'ये संस्कृत-वस्कृत तुम पण्डित लोगों का ही काम है, हम मराठा है—तलवार चलाना हमारा काम!'

'ठीक है। ठीक है। यह लाइन है—त्रिया चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम् दैवो न जानाति कुतो मनुष्य:!' समझा?'

'हां।' मोठे ने कहा, 'तो क्या मतलब हुआ इसका? ··इससे कवि बोलता है कि औरत लोक को खुदा भी नहीं जान सकता! मर्द लोक तो स्साला है ही क्या चीज ··!'

'क्या भोंडा अर्थ करता है यार!' अजित ज्यादा ही चिढ़ गया था। जब-जब किसी श्लोक या बात को उलट-पुलट बोलता था मोठे बुआ अजित गहरी तकलीफ से भर आया करता था। उसे लगता कि उसके लेखक का अपमान है इस तरह की ऊटपटांग बात, अर्थ समझना-सुनना। कहा— इसका मतलब होता है कि स्त्री का चरित्र, यानी कि यह कब क्या कर देगी और पुरुष का भाग्य, यानी कि क्या लिखा है उसकी तकदीर में—इसे कोई नहीं जान सकता! यानी इसे भगवान भी नहीं जान सकते तो आदमी क्या चीज है!···'

तो, ये जो अभी-अभी बटनिया इनकार कर गयी है, वह सिर्फ उसका

त्रिया चरित्र है ! ···दैट्स आल ! अजित उसकी प्रतीक्षा करने लगा था।

एक बार वह नींद में डूब गया था। बाहु के स्पर्श ने फिर से जगाया। कमरे में अन्धेरा था। बाहर भी अन्धेरा। वह चौंक गया—'कौन ?'

'मैं।' वह फुसफुसायी। अजित ने पहचान लिया था उसे। बटनिया है। अन्धेरे में अजित ने कहा था—'लाइट जला !'

'नहीं।' वह उसी तरह फुसफुसाकर बोली थी—'एक बज रहा है रात का !'

'तो···तो इत्ती रात क्यों आयी है तू ?' अजित ने सिटपिटाकर सवाल किया।

'तूने ही कहा था कि काम है मुझसे ?'

'हूं ?' अजित को याद आया—'हां-हां।' वह आलस छोड़कर बैठ गया। यह भी याद आ गया था कि उसे सचमुच बटनिया से जरूरी काम है। पर बिना लाइट के तरेट कैसे देख सकेगा ? ··तरेट पर भी हल्की धारियां देखनी होंगी। एक पल सोचा, फिर कहा, 'तू अन्दाज से सन्दूक पर बैठ जा।'

'पर वह बात···?'

'जरा सबर करना।' अजित भी फुसफुसा रहा था, 'बतलाती हूं।'

'जल्दी से कह दे, उधर केशर मां की नींद तो तू जानता ही है—जरा में ही जग जायेंगी···'

'कहता हूं···' अजित ने माचिस की तीली जलायी···बटनिया घबराहट में बुदबुदा उठी—'अरे-रे···यह क्या करता है, कह रही हूं ना कि रात का एक···'

'अरे, तू चुप रहेगी कि नहीं ?' अजित ने उसे डपटा। फिर जल्दी-जल्दी टेबल लैम्प का प्लग ढूंढा। उसमें जीरो बल्ब लगा रखा है। कभी-कभी इस कमरे में चूहे बहुत हुड़दंग मचाते हैं, तब अजित जीरो बल्ब जलाकर सोता है। उसी को लगाना होगा। उसने बल्ब जला दिया।

धुंधलायी, नीली रोशनी में बटनिया का डरा-सहमा चेहरा दिखा।

अजित ने होंठ काटकर एक पल सोचा। बटनिया ने रुआंसे स्वर में कहा—'तू मुझे मरवायेगा !···अगर वह जाग गयी तो···आवाज देंगी

और फिर नीचे भइया भी जग जायेंगे !'

'घबरा मत !' कहते हुए अजित दरवाजे की तरफ लपका। चिटकनी चढ़ा दी। मुड़कर देखा—बटनिया का चेहरा डर के मारे सफेद हो गया था। लगभग रोकर उसने सवाल किया—'तू—तू···यह क्या कर रहा है ? ऐं ?'

'कुछ नही।' अजित ने कहा, फिर बिस्तर पर बैठ गया। डर उसके अपने भीतर भी समाया हुआ था। बटनिया ठीक कहती है। अगर केशर मां जाग गयी तो एकदम बड़बड़ाने लगेंगी—'अरे, कहां मर गयी तू ·· बटनिया !' इस तरह अजित और बटनिया दोनों ही मारे जायेंगे। पर इसके अलावा कोई रास्ता भी नही। किसी और वक्त तो तरेट देखी नहीं जा सकती !···यही सही वक्त है।

बटनिया बेहद डर चुकी थी। अजित ने अपने भीतर एक हंसी महसूस की। पगली !···समझ रही है कि मैं इसकी इज्जत लूटने वाला हू ! ·· एकदम पगली !

'बोल ?' उसने लगभग मृत आवाज में पूछा।

'कहता हू, जरा सबर कर !' और अजित अपने भीतर साहस जुटाने लगा कि कैसे कहे।

अचानक अजित को लगा था कि कुछ कहने की जरूरत नहीं है। एकदम आर्डर देना चाहिए इसे ! · यह आर्डर मानती है। अजित का ही नहीं, सबका ! पर ऐसा आर्डर···?

ज्यादा न सोचकर एकदम बोल बैठा था वह —'खड़ी हो जा !'

वह घबराकर खड़ी हो गयी। एकदम अजित के सामने।

अजित ने उसे सर से पैरों तक देखा। फिर कुछ डरते-डरते कहा—'जरा ये अपने सामने का पल्लू हटा !'

उसने कोई हरकत नहीं की। बस, कांपते हाथो से अंगुलियो से पल्लू को कमर पर ज्यादा ही घेरकर कस लिया।

अजित ने कुछ नाराज होकर बिना उसका चेहरा देखे कहा, 'यह क्या कर रही है ? मैं जो कहता हू, कर ना !'

'नही !' वह बोली, फिर अजित ने उसे देखा। आंखें फैली पड़ रही थीं

उसकी।

'अजीब बेवकूफ है !···हटा पल्लू !' अजित गुर्राया। फुसफुसाहट के बावजूद उसे लगा कि उसकी आवाज कुछ तेज हो गयी है।

'मैं ऐसे नही करूंगी···! और···और केशर मा से भी कह दूंगी !' वह रुआंसी हो गयी।

'क्या कहेगी ?' अजित ने सवाल किया, पर उसे लगा कि उसकी अपनी आवाज गडबड़ाने लगी है। अब उसमें पहले जैसी गरमाहट नही।

'यही कि तू···तू मेरा पल्लू उघड़वा रहा था ! हां !' अब उसकी आवाज मे तेजी थी।

अजित को लगा कि सारा मामला ही बिगड रहा है। फिर यह सोचकर वह ज्यादा ही चिढ़ और अपमान से भर उठा कि बटनिया उसे लुच्चा-गुन्डा समझ रही है ··सिर्फ समझ ही नही रही, वलिक कह भी रही है। मूर्ख कही की। बोला—'तू पागल है। अरे, मैं यों ही नहीं उघड़वा रहा हूं तेरा पल्लू। मुझे काम है ··'

'क्या काम है ?' अब वह रो ही पडी थी।

अजित ज्यादा डर गया। लगा कि बेवकूफी कर रहा है। बटनिया है सीधी-सादी लडकी। वह क्या समझे कि अजित क्या चक्कर चला रहा है ? उसे सब कुछ समझाना जरूरी होगा। आवाज में जरा नमी पैदा करके उसने कहा था —'तू मुझे गलत समझ रही है बटनिया···'

'तब तू ऐसी बातें क्यों कर रहा है ?···क्या जानता नही कि मैं—मैं लडकी की जात हू। मेरा··मेरा ब्याह होने वाला है ··' वह आसू पोछने लगी—'मैं ··मैं तुझे कित्ता अच्छा लड़का समझती थी···पर तू ऐसी बात ··?'

'ओफ ! ··तू तो एकदम पागल है ! पागल ही नही है,···क्या कहूं तुझे ? ··' माथा धीमे से पीटकर अजित ने कहा था—'गधी है तू !···अरे, मैं कहानी लिखने वाला हूं।'

उसने मुह खोलकर अजित को देखा—जैसे अजित पागल है। सोचने लगी थी शायद—कहानी से बटनिया के पल्लू खुलवाने का क्या सम्बन्ध है ?

अजित ने कहा—'बैठ !···यहां बैठ। तुझे सब समझाता हूं।' आवाज

नम ही नहीं थी, स्नेहिल और निर्दोष भी थी। अजित ने सवाद के साथ-साथ करीब ही पलग पर थपकी देकर सवेत किया था कि बटनिया वहां बैठे।

बटनिया के आंसू थमे। कहा—'समझा दे···क्या बात है?' फिर वह खड़ी होकर उसे टकटकी बाधे हुए देखने लगी।

'सुन !···मैं कहानी लिख रहा हू एक बांझ औरत पर।' अजित ने धीमी आवाज में कहा— 'जैसी सौतली भाभी है ना, वैसी औरत पर। और उस कहानी में औरतों के पेटों की बात आयेगी। अब मुझे पेट को लेकर भी लिखना पड़ेगा···और तू तो जानती ही है कि मैंने किसी औरत का पेट कभी देखा ही नही है···'

वह देखती रही···देखती रही···फिर अजित की मासूमियत पर लजाकर हस पड़ी, होठ चबाने लगी। नजर झुकाली।

अजित ने प्रार्थना करती-सी आवाज मे कहना जारी रखा—'देख बटनिया !···मेरे लिए ये बड़ा जरूरी है।'

'जरूरी है तो मोहल्ले में इत्ती औरतें हैं। नहाती-धोती है, तब छुप-कर देख लेना···' बटनिया ने सलाह दी। आवाज में फुसफुसाहट से कही ज्यादा सकपकाहट थी। लज्जा की मिठास भी।

'वैसे देखने से बात नहीं बनेगी।' अजित बोला, 'जरा पास से देखना पड़ेगा ··ध्यान से। एक बारीक चीज भी पकडनी है···उसी से पहचान होगी···और दूर से वह चीज पकड़ी ही नही जा सकती?' अजित उदास हो गया।

बटनिया चुप थी।

अजित थोड़ी देर गरदन झुकाये रहा। फिर बटनिया को देखने लगा। बटनिया नीचे देखने लगी।

अजित ने पूछा—'अब बोल, मेरी मदद करेगी कि नहीं? मैंने बड़े विश्वास से मदद मागी है बटनिया···सोचता था कि तू नाही नही करेगी।'

थोड़ी देर वह चुप रही···फिर कहा, 'अच्छा, ठीक है···'फिर कुछ कंपकंपा उठी।

अजित उम्मीद से उसे देखने लगा ··बटनिया ने आगे बिना कुछ कहे खड़े होकर कांपती अंगुलियों से पल्लू छोड़ दिया···हाथ सीधे कर लिये।

अजित ने अपने हाथ से उसका पल्लू हटाया···थूक का घूंट निगल लिया···

बटनिया आंखें मूंदे हुए थी। जबड़े कसे हुए। वह यथासंभव कोशिश कर रही थी कि धरती पर गिर न पड़े। पैर कड़े कर लिये थे। मांस पेट तक बल खा गया था।

अजित की सांसें जोरों से चलने लगी थी···बटनिया का गोरा, खून की लाली से भरा आधा जिस्म करीब-करीब नग्न उसके सामने था। एक तमतमाहट उसने खून में महसूस की।

और तभी बटनिया की धड़कनें तेज हो गयी···उनके साथ ही उसके नंगे पेट पर अजित ने उफान-उतार महसूस किया···ऊपर बटनिया की पुष्ट, मांसल छातियों का चढ़ाव शुरू हो गया था और कमर से नीचे एक सनसनी की तरह अजित की गुप्त कल्पनाएं···

वह ··वह यह सब क्या देख-महसूस रहा है? उसने अपने आपको लगभग झकझोरकर सवाल किया था—उसे तरेट की जांच करनी है··· सफेद हल्की धारियां ··कुंवारी, शादी-शुदा, बांझ, बच्चे देनेवाली, पवित्र, अपवित्र सब तरह की पहचान—

कहीं नहीं हैं धारियां, बल्कि एक दूधिया उजलाहट की रंगत लिये हुए बदन···

पर तरेट का ज्यादातर हिस्सा बटनिया की साड़ी के भीतर दबा है···अजित जो कुछ देख रहा है, वह सिर्फ ऊपरी सतह···लगभग हांफते हुए बुदबुदाया था वह—'ब···बटनिया ··अ ?'

'हूं ?' वह ज्यादा जबड़े कस बैठी। सांसें और तेज।

'तू ··तू···जरासी ··हं-हं···नीचे तक···'

'नईं !···' उसने एकदम गुस्से में पल्लू फिर से पेट पर खींच लिया।

अजित बुझ गया···एक गहरी सांस ली। तमतमाहट और सनसनी पर काबू पाया। बोला, 'ठीक है, तेरी मरजी !···नहीं लिखूंगा

कहानी ! तू···तू क्या समझती है कि तू मेरी मदद नहीं करेगी तो मैं क्या कभी कुछ लिख नही पाऊंगा ?···'

वह संयत होने की कोशिश कर रही थी।

'अब तू जा !···' अजित को अचानक ही गुस्सा हो आया उस पर। सिटकनी खोलने बढ़ा। सहसा वह मुड़ी। अजित की बांह थामली। अजित का हाथ रुक गया। उसकी नजर नीची थी··· 'तू—तू···समझता है कि मैं तुझे···तुझे प्या—' वह एकदम थम गयी—'अच्छा !' उसने एकदम से कहा—'अच्छा नही समझती' है ?···ठीक है। मैं फिर से खड़ी हो जाती हू। तेरा जो मन चाहे वह···'

अजित फिर से मुड़ आया। दुखी हो गयी है। पर अजित को उसके सुख-दुख की चिन्ता नही, उसे चिन्ता करनी होगी सिर्फ कहानी की। बात का सच पकड़ मे आना चाहिए !···

वह फिर आंखें मूदे हुए खडी थी।

अजित ने इस बार एकदम से उसका पल्लू सीने से हटा दिया। इतना कि साडी का एक छोर नीचे, धरती पर ही जा गिरा···वह जैसे एक नदी बन गयी। लहराती, हिचकोले खाती नदी···समूचा बदन कांप रहा था उसका। अजित यांत्रिक हो उठा था···तरेट देख पाने के उद्देश्य मे यान्त्रिक-सा वह चारपाई से उठा। हौले से उसने बटनिया की दूधिया कमर को दोनों ओर मे हथेलियों में ले लिया···सहलाने लगा···

बटनिया हांफने लगी बेहद डरी, सहमी आवाज में फुसफुसायी, 'ये···ये क्या-अ्···कर रहा है-ऐ···तू-अ्···'

अजित ने अचानक ही अपने होंठ बटनिया के होंठों पर रख दिये। सारी ताकत से उसे अपनी बाहों में कस लिया।

और···और थोड़ी देर में ही अजित के हाथों ने उस तरेट को स्पर्श किया ··जो उन दोनों के बीच एक बचकाना प्रयास से अचानक ही जवान कोशिश में बदल चुकी थी। वे चुप थे, पर चीख रहे थे···

वह नाक सुड़कती सुबक रही थी—

अजित की गरदन लटकी हुई।

उसने अस्तव्यस्त हालत मे ही सिटकनी खोली थी—फिर किस तरह, कैसे, किस हालत में कमरे से चली गयी—अजित को मालूम ही नही हुआ था।

अजित देर तक गुमसुम बैठा रहा। ऐसे जैसे मैले मे गिर पड़ा हो! सहसा वह अपने को ही गालियां बकने लगा था—'अजित जलील है! कमीना!— घटिया।··· छिः छिः!···

पर इससे भी सब्र नही। अजित रोने को हो आया। अपने से ही गुस्सा होकर बेबसी मे रोने को हो आया। यह सब कित्ता बुरा हुआ!—आज वह लुच्चा होकर रह गया?—बदमाश!—मोटे बुआ से भी गया-गुजरा!

वह लेट गया। फिर थोड़ी देर बाद बैठ रहा। फिर बीड़ी सुलगायी। दोबारा लेट गया। बीड़ी बुझायी। करवट बदली। आंख मूदी। हर तरफ बटनिया। नाक सुकड़ती, रोती, बटनिया—एक शब्द भी नही बोली। उसे तो गालियां बकनी चाहिए!—खूब गन्दी-गन्दी गालियां थी! अजित के मुंह पर थूक देना चाहिए था!—जोर से—'आक् थू!'

पर कुछ भी नही। वह चली गयी। विश्वास करती थी उस पर। यही विश्वास निबाहा अजित ने?—गन्दा!

बेचारी!···उससे एक धोखा किया अजित ने!···फिर यह दूसरा—सबसे गन्दा धोखा!···

वह फिर बैठ गया था।

टेबल लैम्प बन्द करना होगा। बन्द कर दिया था। उससे भी कोई फर्क नही पड़ा। वह करवटें बदलता रहा था। अब किस बूते पर, किस मुह से मिन्नी को कुछ कह सकेगा?···

गंदगी के दलदल में पड़ा-पड़ा कब सो गया था वह—पता नही। सुबह काफी देर से जागा। तब, जब उसने जोर-जोर से दरवाजा खड़-खड़ाते पाया। आंखें खोलीं। रात देर तक न सो पाने के कारण भारी पलकें; जलती आखें। चौक गया।

बटनिया ही थी ··पर सिर्फ उसका हाथ। जोर-जोर से दरवाजे के पल्ले को दीवार से घड़घड़ाता हुआ···शेष बटनिया दीवार की ओट में—बाहर !

अजित उठा और तेजी से कमरे के बाहर इस तरह निकला कि बटनिया देख न सके। वह बाथरूम में जा घुसा। सूरज सिर आ गया था।

पांच-सात मिनट में मुंह-हाथ धोकर वह वापस अपने कमरे में घुस आया। घर से निकल जाना होगा !···किसी भी बहाने, पर घर से निकल भागना जरूरी है !···वह बटनिया का सामना नहीं कर सकेगा !···किसी भी तरह नहीं !

तभी देहरी पर नजर गयी। चौंक गया। बटनिया का कांपता हाथ चाय का प्याला लिए हुए देहरी पर सरक रहा था।···वह खुद उसी तरह ओट में थी।

प्याला रखकर हाथ गायब हो गया।

बड़ी बेशर्मी से अजित ने प्याला उठाया। जल्दी-जल्दी चाय पी ली। कपड़े बदले, सीढ़ियों की ओर बढ़ा। सहसा केशर मां की आवाज सुनायी दी थी—'अब सुबह सवेरे से ही चला उन गुण्डों में मटरगश्ती करने !···'

वह मुड़ा। गुस्से से उसने उन्हें देखा।

केशर मां तम्बाकू रगड़ने लगी। बड़बड़ायी—'मरता भी तो नहीं है कम्बख्त !···'

अजित ने सुना-अनसुना कर दिया। सीढ़ियां उतर गया।

केशर मां की बड़बड़ाहट उसने आंगन पार करते हुए सुनी—'ऐसी औलाद से मुक्ती मिले, तो सत्यनारायण-कथा करवाऊं !···सड़ा !' और फिर उसी सिलसिले में बटनिया का आकुल स्वर भी सुनायी दिया था उसे—'तुम यह कैसे-कैसे अपसगुन बोलती हो अम्मा ?···सोचती भी नहीं कि किस वखत का बोल कैसा होता है !···'

सब कुछ भूलकर अजित फिर से बटनिया के सोच में उलझ गया। ऐसी भोली-भाली लड़की से धोखा किया है उसने ?···अजित के लिए इतना सोचती है, खयाल रखती है और अजित ने···च्-च् !···

वह गली में आ गया। उसने चाल तेज की। लग रहा था कि इस

गली में कुछ है जो उसका पीछा कर रहा है···ऐसा, जिससे सामना होते ही अजित नाली में जा गिरेगा !···

मगर ये नाली तो अजित के सामने हमेशा ही रहेगी···हर पल ! यह नाली उसने खुद ही तो बनायी थी।

शंकरराव वैजापुरकर, बडू और अनसूयाबाई गंदे कनस्तर और डब्बे सिर पर लिए हुए तेजी से गली पार किए जा रहे थे···

कहां जा रहे हैं ? तुरंत याद हो आया था। जरूर रेशमा के घर में घुस रहे होंगे। सुना था उसने कि सब तय हो चुका है। अब उसी घर में रहेंगे। पूजा-पाठ करेंगे।

और आगे बढ़ते ही उसने रुआसी सुरगो देखी। बच्ची को गोद चढ़ाये खडी थी। कह रही थी—'तुम धीरे नही बोल सकते साईं !···आखिर हमारी भी कोई इज्जत है !···'

उसके सामने सिन्धी। मटमैली कमीज, मटमैला पजामा। दोनों कपड़ों पर चीकड़ के निशान और धारियां। पंसारी है। चाहे तो साफ-सुथरा भी रह सकता है। अजित ने सोचा, पर नही रहता। पैसा जोड़ रहा है। सारे मुहल्ले में उधार बिखरा दिया है। पहले खुश होकर उधार देता है फिर गिगियाकर तकाजे करता है और अन्त में जब समझ लेता है कि इस ग्राहक से 'राम-राम' कर लेना है तो अचानक बाघ बनकर सवार हो जाता है···पल-पल गुर्रायेगा, पल-पल बकेगा। यही है साईं चेलाराम का नियम। वही चेलाराम आज बाघ बना हुआ है···उत्सुकतावश अजित उनके पास ही जा ठहरा···सुरगो के चेहरे पर उदासी से कही ज्यादा रिरियाहट बरस रही थी और चेलाराम की आवाज मे गरमी थी—'अब देखोना भैनजी, आदमी किसी सबूरी करे—ऐ ऽ ?···' वह कह रहा था, 'जरा सोचनेवाली बात है। भेंडा हम भी तो कोई आटा-दाल, निमक घर में नई उगाते नी ?··· तुम लोक पईसा देते हैं फिर हमको भी बाजार से सौदा करना पड़ता—एं ! ···ऐसे पैसा दबाओगे नी, तो हमारा कईसा चलेगा ?···अपुन को आज ही होणा !···'

'अब तुम तो जानते ही हो साईं कि चुनमुन के बापू का टिरांसफर हो गया···अब तक धेला नही भेजा—मैं कहा से दू ?'

'अब ये टिरांसफर में हम क्या करेगा—बताओ नी ?—भैंड़ां, हमको भी घर चलाना है, दुकानदारी चलानी है···'

'पर भइया···'

'अबी भइया-भइया छोड़ो, भैनजी !···पैसा देओ !'

'पर सांई···' सुरगो की आंखों में आंसू छलक आये···अजित को देखा···ज्यादा चेहरा पिट गया। अजित को लगा कि बोलना जरूरी हो गया है।

कहा—'चलो सांई !···जरा इधर को आना···?'

सिंधी ने कुछ सहमकर अजित को देखा, फिर घिसटती धोती की लाग सम्हालता हुआ उसके सामने आ खड़ा हुआ, 'सुरगो भाभी जो कह रही हैं, बिलकुल सच है।'

'भैंड़ां हम किधर बोला कि झूट है, पन देखो नी सांई, आखिर को हम भी दुकनदारी करता है। अपना ठिकाणा छोड़-छोड़ के दस-दस बार चक्कर लगाएंगा तो कैसा चलेगा—तुम्ही बताओ नी सांई ?'

'तुम दस-दस बार चक्कर क्यों खा रहे हो ?' कुछ चिढ़कर अजित ने सवाल किया, 'मत खाओ ! जब उसके पास मनीआर्डर आ जायेगा, भेज देगी।'

'वणी आप समझते नहीं हो नी—हम इस औरत को खूब जानता है। पैसा आयेगा तो एकदम भूल जाएगी कि चलो सांई का भी कुछ देना-लेना है।'

'अब बहस मत करो सांई, तुम जाओ। सुबह-सुबह मुहल्ले में तमाशा दिखाने की जरूरत नहीं है।' अजित कुछ भुनभुना उठा था।

चेला सांई की आखों में भय, चिढ़ और गुस्सा तीनों एक साथ उभरे।

'अबी माल दिया है भाई। ऐसे कैसे जाएंगा ?'

'पैरों से !' अजित ने जवाब दिया।

'वह तो जाएगा ही, पर तुम बीच में पड़ता है तो कोई जबान होने का ना कि भाई चेला सांई तुमको दस, वीस, तीस तारीख तक पैसा पहुंच जाएंगा—'

'ठीक है, अगले महीने पहुंच जाएगा !' अजित ने कह दिया था फिर

लगा कि भूलकर गया। सुरगो का कोई वादा, कोई बात ठीक नहीं हो सकती। मन हुआ कह दे—ये वादा सुरगो से ले लो। मैं बीच मे नही पड़ता। पर सुरगो के पिटे चेहरे और गिरते-बहते आसुओ ने रोक दिया।

चेला साईं कुछ चिढा हुआ मुडा। सुरगो के पास से गुजरते हुए उसने कहा—'हम जाता है वाई, पर ध्यान रखना—अगले महीने मे चूकना नहीं।'

अजित भी आगे बढ़ने लगा था, पर सुरगो ने टोका, 'अजित भइया ?'

'हूं ?'

'एक काम कर दोगे।'

'क्या ?'

'चुनमुन के दादा को एक चिट्ठी लिख दो···मेरी तरफ से।' सुरगो ने रुआसी आवाज मे कहा था—'अब दो महीने से भी ज्यादा हो गए है। आखिर हम कब तक भूखे मरेंगे ?' बात खत्म करते-करते वह फिर से रो पडी थी।

अजित का मन भर आया। बोला—'ठीक है, लौटूंगा तब लिख दूंगा !' वह आगे बढा।

बैजापुरकर का पूरा परिवार सामान ढोने-चढ़ाने मे लगा हुआ था। अजित देखता गया। लगा कि अब रेशमा की खैर नहीं है।

गली के मोड पर आते-आते एक बार फिर बटनिया याद हो आयी थी। वह फिर से दल-दल का अहसास करने लगा था। आखिर अजित को हुआ ही क्या था ?···एकदम पागलों की तरह उसे अपने करीब खींच लिया ?···क्या करना था और क्या कर डाला ? असली बात अब भी पकड से छूटी हुई है। सब कुछ इस कदर जल्दबाजी और बदहवासी मे हुआ कि असली बात छूट ही गयी।

वह क्या सोचती होगी अजित को लेकर ? अजित ने अपने भीतर अजब-सी बेचैनी अनुभव की थी। जरूर अजित को लेकर सोचती होगी कि एकदम आवारा और गुंडा हो चुका है। मोठे बुआ को तो उसने कभी पसन्द नहीं किया। एक बार मोठे को लेकर ही कहने लगी थी अजित से—'तू उसका साथ छोड़ दे !'

'क्यों ?' अजित ने कुछ चिढ़कर सवाल किया था, 'उससे तुझे क्या तकलीफ है ?'

'नहीं-नहीं, मुझे तो कोई तकलीफ नहीं है, पर तू जानता है ना कि वह ठीक आदमी नहीं है ?'

'फिर !…' अजित ने उसे कुरेदा था। पता लगाना होगा कि मोठे के बारे में क्या राय रखती है—बटनिया तो घर से कभी बाहर निकलती नहीं फिर इसे मोठे की हरकतों, करतूतों के बारे में कहां से पता चला ?…

'सब कहते हैं कि दारू पीता है, जुआ खेलता है, रंडियों के यहां जाता है…कित्ती बुरी बात !' वह जितना कुछ कह रही थी उससे पहले उसने आंखें नीची कर रखी थीं।

'उससे उसके साथ का क्या मतलब ?'

'मैं—मैं जे कह रही हूं कि फिर…तू भी उसी जैसा ही जाएगा !'

'ऐसे क्या वह जो करेगा, वह मैं करने लगूंगा ?' अजित ने कुछ चिढ़कर सवाल किया था, 'कोई अन्धेरगर्दी मची है ?'

'नहीं-नहीं, चन्द्र भइया कहते हैं कि संगत से बड़ा असर होता है। बटनिया ने जवाब दिया। आंखों में उदासी बिखर गयी थी—'खुद तुलसी बाबा ने ही लिख दिया है रामायणजी में !'

'तू ने रामायण के अलावा कोई और बात भी पढ़ी है कि बस !' झुंझलाकर अजित ने उसे डपटा था, 'और तेरे चन्दर भइया की अकल में दीवानी कचहरी की दफाओं के अलावा कुछ है भी कि नहीं ?…अकल दे रहे हैं हुंह।'

वह उदासी से उसे देखने लगी थी।

पर अजित को सचमुच ही झल्लाहट आ गयी। बटनिया से दो बातें क्या कर लेता है, समझती है कि अजित को विद्वान कर सकती है ! इस पर ब्रेक लगाना होगा। कहा था—'और मेरी तो समझ में ये बात नहीं आती कि मैं कुछ भी करूं, तुझे क्या कष्ट है ?…तू किसलिए बार-बार कुनमुनाती रहती है कि ऐसा कर, ऐसा मत कर !…तुझे भी क्या केशर मां की तरह बक-बक करने की आदत पड़ गयी है ?'

वह चुप हो चुकी थी। एकदम खामोश। अजित ने देखा था, उसे लगा

था कि सहमी ही नहीं है, उदास भी हो चुकी है। फिर बहुत दिनों बाद अजित को समझ आया था कि ऐसा क्यों कहती है। अजित को लेकर शायद काफी आगे तक सोच चुकी थी वह···उस दिन उसका मेटली लेकर आना और कहना कि···

अजित की आंखों के सामने उस दिन की बटनिया उभर आयी थी। मासूम, शर्मीली और सुन्दर बटनिया! ··बेकार ही बेचारी को डांटता-डपटता रहता था अजित।

अनायास ही अजित को मिन्नी याद हो आयी। वह भी शायद अजित जैसे ही किसी आदमी के कारण अब उस सबको सहज रूप मे स्वीकार चुकी हो जो उसके करीब आता हो?···और अजित उसे लेकर कुछ याद करने की कोशिश करने लगा था···

एक दिन बोली थी मिन्नी—'···दुनिया में पाप-पुण्य कुछ नहीं होता अजित, जो कुछ होता है, सिर्फ वक्त होता है, हालात होते हैं और···'

और उस दिन···उस दिन अजित को झूठ लगी थी उसकी बात। लगा था कि वह जो कुछ कह रही है, अपने आपको सही साबित करने के लिए ही कह रही है। पर···रात···रात की घटना। खुद अजित और बटनिया के बीच की घटना ने साफ कर दिया है कि हालात होते हैं··· वक्त भी होता है!

वैसा कुछ न होता तो वह सब कैसे हुआ?···अजित ने ही कहां सोचा था?···और बटनिया ने? वह तो एक पल के सौवें हिस्से मे भी उस सबकी कल्पना नहीं कर सकती थी···पर हुआ! ऐसा हो गया है कि न सारी जिन्दगी अब बटनिया ही भूल सकेगी और न खुद अजित!

सुबह एक चाय पीने की आदत है अजित को, पर बटनिया का सामना न हो, इस भय से पागलों की तरह भाग निकला था। अब मन होता है कि कहीं चाय पी जाये?···

मिन्नी के घर के सामने से गुजर रहा था वह। यही जगह ठीक होगी।

वह एकदम मिन्नी के घर की तरफ लपका।

मिन्नी होगी या नही ?···अगर होगी तब अजित उस दिन की बात को लेकर खुद क्षमा मांग लेगा। कहेगा—'हां मिन्नी, अब मुझे लगता है कि कही कुछ गडबड है···ऐसी गड़बड़ है जो कम से कम इस वक्त मेरी समझ में नही आ रही है और जब तक आती नही है, मैं तुम्हारी बातो का बुरा नही मानूंगा !'

मगर क्या ऐसी बात करना ठीक होगा ?—अजित ने अपने भीतर कुछ गहरा, बहुत गहरा संकोच अनुभव किया था। यह ठीक नही होगा। मिन्नी समझेगी कि मैं—अजित उसे अपने से ज्यादा समझदार समझ रहा हूं। किसी और तरह बात करनी होगी।

पर ये बातें तभी हो सकती हैं, जब मायादेवी या मास्टरजी घर मे न हों।—उनके होने का मतलब है कि बात सिर्फ रामायण, महाभारत, एलजब्रा या जयशंकर प्रसाद पर ही होनी चाहिए !—वह मुसकराया। ऊपर पहुंच गया। हौले से पुकारा—

जवाब मे एक कराह आयी, 'कौन है ?'

'मैं। मैं हूं आन्टी जी। वह अगले दरवाजे की तरफ बढ गया था, फिर निस्संकोच भीतर जा पहुचा था—'क्या बात है ? आपकी तबीयत···'

मायादेवी लेटी हुई थी। हौले से कराही, 'हा-रे !—पता नही क्या हुआ है कमर को ?—हर बखत कसकती है और जरा मौसम नम हो जाये ना, तो बस···'

अजित ने कोशिश की कि उसकी नजरों में सहानुभूति हो। वही मायादेवी देखें, किन्तु कितना हो पाया—अजित नहीं जानता। बस, आवाज कुछ भारी करके बोला था—'किसी डाक्टर को बतलाया आपने ?'

'बतलाया था ना···' मायादेवी बडबड़ायी थी, 'पर कोई कुछ भी नही समझता—कोई कहता है कि गठिए का दर्द है, कोई मसल्स का बतलाता है, और कोई···'

'आपको अच्छी तरह जाच करवानी चाहिए, आन्टी !' वह ऊबता हुआ बोला था। मन हुआ, कह डाले—'दर्द है तुम्हारे पापों का !—इसका

इलाज दवाएं नहीं हैं, दयानतदारी है सो तुममें है नहीं…' पर यह सब कहा तो जा नहीं सकता। सोचकर सन्तोष कर लिया जाता है। वही किया।

'देसी, अंगरेजी सब तो ही लिए—सोचती हूं किसी होमियोपैथ को दिखलाऊं।' वह फिर कराही।

'हां-हां, यह ठीक रहेगा!—होमियोपैथी इलाज देर में तो लगता है, पर लगता पक्का है—वही करवाइए!' इसके बाद उसने चोर नजरें इधर-उधर घुमायीं। कितना अच्छा हो कि मायादेवी खुद ही बतलायें मिन्नी किधर है? या कहीं गयी है? पर मायादेवी ने कुछ और ही सवाल किया, 'तू इन दिनों क्या कर रहा है रे?'

'मैं क्या करूंगा आन्टीजी। वही मैट्रिक—पिछले कित्ते सालों से तो कर रहा हूं। कम्बख्त होता ही नहीं?' बेशर्मी से अजित ने जवाब दिया। असल में ये सवाल इतनी बार लोग पूछ चुके हैं, पूछते रहते हैं कि अब जवाब देने में अजित को बेशर्मी समेटते हुए भी अजीब नहीं लगता। अब भी नहीं लगा।

मायादेवी सहसा गंभीर हो गयी थी, 'देख बेटा, जरा पढ़ाई पर ध्यान दे!—मिन्नी तेरे साथ ही थी, पर देख लिया ना कि बी० ए० कर चुकी—और…'सहसा उन्होंने कमर पर हाथ रखा और खलबलाकर कराहीं, 'हायरे!—रामजी!'

मौका मिल गया था अजित को। पूछा, 'मिन्नी किधर है?'

'ऊपर—रसोई में।' मायादेवी ने कहा था, 'मेरे लिए हलुआ बना रही होगी। अब कम्बख्त दांत भी तो दर्द करते हैं मेरे—'हे राम!'

अजित मुड़ गया, 'जरा उससे मिललूं, फिर चलूंगा।'

'हां, जा-जा!'—मायादेवी ने इजाजत दी, 'अरे सुन!'—उन्होंने अचानक ही उसे पुकार लिया।

'क्या आन्टी?' देहरी से ही पूछा अजित ने।

'कुन्दन को एक आवाज देता जाना गैलरी से—'

'अच्छा!…' उसने लापरवाही से कहा था, फिर गैलरी में आकर कुन्दन के नाम एक पुकार लगायी। सूचना दी, 'बुला रही हैं।'

इसके बाद तेजी से ऊपर सीढ़ियां चढ़ता चला गया—'मिन्नी? मिन्नी?—क्या कर रही हो?…'

और मिन्नी कुछ पूछ सके, इसके पहले ही गैलरी में पहुंचकर अजित ने स्टूल खींचा। बैठते हुए बोला था—'थोड़ा-सा हलुआ-चाय मेरे लिए भी दे!'

वह कुछ भौचक्का होकर अजित को देखने लगा थी। ऐसे जैसे निगाहों में एक सवाल लिये हुए हो—'आज तू बहुत बौखलाया हुआ है? क्या हुआ तुझे?'

अजित उसकी ओर मुसकराया था। इसी तरह मिन्नी से बात कर सकेगा, वरना फिर एक ऊब और उदासी पैदा हो जायेगी उनके बीच—सिर्फ बोरियत। मिन्नी भी जवाब में मुसकरायी।

वे बिना कुछ कहे, सिर्फ एक-दूसरे को देखते और बेकार ही मुसकराते रहे। और दिनों की तुलना में जाने क्यों आज मिन्नी उसे अच्छी लग रही है। उसने सोचा। शायद उसे भी अजित उबा नहीं रहा?—उसने यह भी महसूस किया।

अजित को लेकर वह उबी ही कब है? सिर्फ अजित ही उससे हर बार कतराता रहा है—भागा है—उससे जब मिला है—झगड़ा है… अजित ने एक गहरी सांस ली थी—'सब हालात की बात!…'

मिन्नी ने गैस बन्द की। एक प्लेट में हलुआ लेकर नीचे की ओर चली, कहा, अभी आ रही हूं।'

फिर वह चली गयी। अजित किचन में व्यर्थ ही इधर-उधर नजरें घुमाता रहा। पिछले कई बरसों में उसने इस किचिन में मायादेवी को कभी नहीं देखा। जब तक मायादेवी के पास जया दीदी रही, तब तक वह इसमें जुटी रहती थी, फिर अक्सर मास्टर साहब और मिन्नी—और अब अकेली मिन्नी!—इतनी उमर तो है नहीं मायादेवी की कि दांत, कमर, आंखें सभी कुछ जवाब दे जायें?—धूर्त कहीं की! कामचोर!—

'हा-अ्!—अब सुना?' मिन्नी आ पहुंची थी। उसने दो प्लेटों में हलुआ रखा और फिर चाय चढ़ादी। बोली, 'आ, छत पर बैठेंगे।' वह

बाहर निकल गयी। अजित उसके पीछे-पीछे। उसके हाथों मे प्लेटें थी। अजित ने आगे बढ़कर चारपाई बिछादी। दोनो बैठ रहे। धीमे-धीमे हलुआ गले मे उतारते हुए मिन्नी ने सवाल किया था—'तू इत्ती सुबह-सवेरे किधर से भूल पड़ा ?'

'ऐसे ही'''सुबह-सुबह केशर मा से कुछ झों-झों हो गयी थी। सोचा, तुम्हारे यहा चाय पियूंगा।' न चाहते हुए भी अजित झूठ बोल गया था।

मिन्नी के चहरे पर हल्की-सी उदासी उभर आयी थी। आवाज धीमी की थी उसने—'अजित, तुझे गुस्सा जल्दी आता है'''पर सच मान। तुझे लेकर बहुत सोचती रहती हू'''बहुत'''!'

'मुझे ही लेकर क्यों ?''''' अजित ने 'यूं ही' के भाव से सवाल किया था।

एकाएक मिन्नी जवाब नहीं दे सकी। बस, उदासी ज्यादा उतर आयी थी उसकी निगाहों में। अजित ने साफ-साफ देखा और फिर उसने महसूस किया था जैसे कहीं से अपने भीतर वह भी उदास होने लगा है''' जल्दी से कहा था, 'अच्छा चलो। यह बतलाओ कि क्या सोचती रहती हो ?'

'यही कि'''कि'''भविष्य में तेरा क्या बनेगा ?'

'आदमी हूं। सब्जी तो हूं नहीं कि किस तरह, क्या चीज बने मेरी ?' अजित ने जवाब दिया था, फिर उसे लगा कि वह कतरा रहा है। क्या वह जानता नही कि मिन्नी किसलिए, किस सन्दर्भ में ऐसे कह रही है ?

'देख अजित !''''' मिन्नी बोली थी—'तेरे पिता इस गली-महल्ले के बड़े लोगों मे थे। सब मानते-जानते थे उन्हें और तू''''

'मैं इस गली के छोटे लोगों मे से हूं—यही कहना चाहती हो ना तुम ?' अजित ने फिर से कतराते हुए कहा था—'पर मुझे भी सब जानते-मानते हैं मिन्नी ! आवारा, शरारती, अपढ़ की ही तरह सही—पर सब जानते हैं।' जवाब खत्म करने के बाद उसने अनुभव किया जैसे उसके अपने भीतर कुछ खालीपन उभर आया है। ऐसा, जिसे सिर्फ वह करीब से जानता है। बहुत करीब से।

मिन्नी उसे सहानुभूति से देखती रही। चुप हो गयी।

वह भी कुछ पल चुप रहा। हलुए की प्लेट खत्म करके एक ओर सरका दी। मिन्नी उसे किचिन में ले गयी। थोड़ी देर बाद लौटी। दो प्याले चाय उसके हाथों में थी। उसने एक प्याला अजित की ओर बढ़ाते हुए कहा था—'सुन!'

'सुन रहा हूं।' अजित ने चाय सिप की।

'अगर तू मैट्रिक भी न कर सका तो···' मिन्नी कुछ हिचकी, पर बात पूरी कर गयी—'तुझे···मतलब तेरी मा को भी बहुत तकलीफ होगी। सब जानते हैं।'

'और मैं नही जानता—क्यों?···तू यही कह रही है ना?'

'हा!···और अगर तू जानता है तो जानकर भी अनजान क्यों बन रहा है?'

अजित एक खोखली हसी हस पडा था, 'इतना बेवकूफ तो हूं नही कि जिस चीज को जानता हूं, उसे लेकर अनजान बन जाऊ?···

'तब ऐसा क्यो कर रहा है तू?···' मिन्नी ने बहुत अधिकार, जिद और गुस्से से पूछा था।

'बतलाऊं?'

'हूं?'

'तो सुन!' अजित ने कहा था—'इस के साथ-साथ मैं यह भी जानता हूं कि जो कुछ मैंने तय किया है, वही मेरे लिए ज्यादा सही है!'

'लेखक होना··· है ना?'

'हां!' वह आराम से चाय पीने लगा।

'मैट्रिक न करना जरूरी है लेखक बनने के लिए?'

'और मैट्रिक करना जरूरी है क्या लेखक बनने के लिए?' अजित ने सवाल उलट दिया था।

वह चुप हो गयी।

वह भी अचानक चुप हो गया। लगा जैसे मौसम कुछ खराब होने लगा है। उनके बीच कुछ है, जो फिर से परस्पर गड़ रहा है···

अजित ने वह सब भूलने की कोशिश की थी, शायद उसने भी।

असल मे अजित आदी हो चुका था वह सब भूलने के लिए। कितने-कितने लोग तो है, जो उसे गाहे-बगाहे यह उपदेश नही कर चुके है कि ऐसा न करे···ऐसा करे ··यहां तक कि वह कहा जाये, कहां बैठे, कितने समय खेले··· और रोज कितना पढे···या न पढ़े ! यह सब इस कदर पिटापिटाया और रटा हुआ-सा लगता है जैसे कुछ शब्द है, जिन्हे आदमी पीढियो की किताब से सीख लेता है और फिर एक खास उमर मे पहुचकर उन्ही बातो मे रिकार्ड की तरह बजने लगता है···

और अजित इस सबसे सहमत नही। बल्कि इस तरह का कुछ भी अजित को नही नजर आता, जिससे वह उसी तरह सहमत हो ले, जिस तरह पहले से लोग सहमत होते आये है या उसे निर्धारित करते आये है··· मिन्नी उनसे अलग नही। और चूकि अलग नही, इसलिए मिन्नी से उसकी कभी नही पटी। कितनी ही बार तो ऐसा हुआ है कि अजित और वह खुशी के साथ मिले है, पर जब अलग हुए है तब एक-दूसरे के लिए अजानी-सी गुस्सा और चिढ लिये हुए वापस हुए हैं !

···लगा था कि आज भी कुछ ऐसा ही होने वाला है···बात बदली जाये। अजित ने सोचा था। तभी मिन्नी का सवाल आ गिरा था उस पर—'तुझे मालूम है ना कि बैठे-बैठे खाने से कुए भी खाली हो जाते हैं ? और तेरे यहा तो कुआ भी नही है ?'

'मै बैठा-बैठा नही खा रहा हू।···' वह बोला, 'काम करता हूं। तुम्हे मालूम है। रोज पढ़ता हू···वह सब, जिसका एक छटाक भी तुमने बी० ए० करते हुए नही पढा होगा !···पढ भी लिया होगा तो खाक नही समझा होगा। समझा भी होगा तो सिर्फ उसी तरह, जिस तरह तोते को लैक्चरर से समझा दिया होगा···उसके बाद कुछ लिखता हूं। यह सब आसान नही है। समझी तू !'

मिन्नी स्नेह से मुसकराने लगी थी, 'अच्छा चल !···मानती हू और जानती भी हू कि तुझे लिटरेचर की बहुत समझ है···मुझसे कई गुना ज्यादा !···पर मैं जो बात कह रही हू, उसका इस सबसे कोई सरोकार नहीं है अजित ···'

'तब किससे सरोकार है ?' उसने प्याला खाली किया और चारपाई

के नीचे सरकाया।

'मेरा मतलब किसी नौकरी-चाकरी से है···' मिन्नी ने कहा था।

अजित सहसा निरुत्तर हो रहा। मिन्नी के इस सवाल का जवाब नहीं है उसके पास। उसे भी मालूम है कि बहुत कठिनाई होगी। अब घर की पहले जैसे बात नही है। वह खुद भी काफी कुछ जानने-समझने लगा है···केशर मा ने एक दिन उसे बिठालकर घर के बारे मे बहुत कुछ बताया था। बैंक की पासबुक, ऍश्योरस का आया पैसा, बचे-खुचे जेवर···सबसे जो नतीजा अजित ने निकाला था, वह यही था कि मामला साल-दो-साल से ज्यादा का नही है। फिर सिर्फ किराये मे नही चल पायेगा। जिस कागज के दस्ते को वह तीन आने के भाव लाया था, वही बढ़कर पाच आने हो चुका है···

केशर मां बोली थी—'अजित !···बेटा, तू समझता नही है कि महंगाई का क्या हाल है !···जो सब्जीवाली रगन में धनिया ऊपर से डाल दिया करती थी, धनिया बेचती है। कहती है कि अब नही हो पाएगा अम्माजी। अगरेजी राज का जमाना भी गया और माधो महाराज भी मर गये !···धनिया तो दूर, लोग घरों की माटी बेचेंगे ! वह वखत आने वाला है !···'

और वखत आ रहा है···अजित हर बदलते दिन के साथ-साथ यह सब देखने लगा था···

वह मिन्नी को देख रहा था उदास···बेचैन···

मिन्नी को लगा था अजित को बात लगी है। जब बात लग जाये तो आदमी पहाड़ तोड सकता है, मैट्रिक पास करना तो है ही क्या चीज ! जिस पर अजित ! वह तो छुई-मुई है ! पल भर में मान-अपमान महसूस होता है उसे। कहने लगी थी—'अजित, तू माने न माने, पर इस गरज से तुझे कुछ न कुछ सोचना जरूर पड़ेगा !···क्या तू यह चाहेगा कि तेरी मां किसी घर मे बर्तन मांजे !'

'मिन्नी !···' एकदम से लगभग चीख ही पड़ा था वह, 'तू···तू होश में है या नहीं !'

मिन्नी व्यग से हंसी थी—'जिस बात को तू सुन नही सकता, कभी

उसकी कल्पना की है तू ने ?···क्यों ? जब पैसा जेब में न होगा तब आदमी क्या करेगा ? बोल !···'

अजित चुप हो गया। जबड़े कसे हुए। लगा कि उसका अपना चेहरा ही बहुत बोझिल हो उठा है।

'तुझे कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा अजित !···कुछ भी !' मिन्नी ने खाली कप-प्लेट उठाये फिर से किचिन में समा गयी थी।

अजित गुस्से और चिढ़ से भर गया था, पर यह चिढ़ और गुस्सा अजित को मिन्नी से कहीं ज्यादा अपने आप पर हुआ···ठीक ही तो कहती थी। अजित को कुछ न कुछ करना होगा···कुछ भी ! मगर इतना तय है कि अजित अपने आपको वही बनायेगा, जो उसने तय किया है।···उस दिन सनातनधर्म मन्दिर में कथा थी। रामकिंकर उपाध्याय प्रवचन करते हैं कथा पर। अजित ने सोचा था—होगा कोई ढोंगी पण्डित !—कितने तो घूम रहे हैं इस देश में !—पर केशर मां जिद पकड़ गयी थी।

'मुझे पहुंचाकर आ !···'

'फिर लेकर भी आना होगा ?' बौखला गया था अजित।

'क्यों उत्ती रात क्या वहीं छोड़ आयेगा मुझे ?···' केशर मां ने कहा था, इसके बाद वह सामने बैठी सुनहरी को सुनाते हुए कहने लगी थी—'देखा, यह कपूत पैदा हुआ है मेरी कोख से।—बाकी तो किसी करम का है नहीं। एक कथा-वार्ता में मां जाना चाहती है तो इसे छोड़ना-पहुचाना भी बोझ लग रहा है मरे को !···सत्यानाशी !···नर्क में जायेगा !'

'छोड़ आ रे अजित !···'

अजित इस प्रहार से तिलमिलाया तो बहुत, पर बोला था—'ठीक है। पहुंचा दूंगा !···ले भी आऊंगा।'

और इसके बाद उसे अपनी साहित्य गोष्ठी की कुरबानी करनी पड़ी थी। अनचाहे ही उपाध्यायजी के प्रवचन में जाना पड़ा। केशर मां को स्त्रियोंवाले हिस्से में पहुंचाकर स्वयं भी औंघता हुआ-सा एक ओर बैठ रहा था। उपाध्यायजी ने प्रवचन शुरू किया। वन्दना···और न जाने क्या-क्या। लोक-परलोक, स्वर्ग-नर्क की बातें···और उसी दिन अचानक

उसने महसूस किया था कि बातें यूं ही नही है। पढे-लिखे पन्डित के सामने बैठा है वह। जरा ध्यान लगा दिया था। लगाया था या लग गया—मालूम नहीं। बस, इतना जानता है कि एक बात मार्के की पकडी थी उसने—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन'—किसी सन्दर्भ में उपाध्यायजी ने श्लोक सुनाकर कर्म की महत्ता बतलायी थी। कहा था—'कर्म अकारथ नही जाता। देर से सही, पर परिणाम अवश्य ही देता है···' फिर और भी बातें थी सिलसिले में। मगर अजित ने यही एक काम की बात पकड़ ली थी—

वह भी तो कर रहा है कर्म!—अकारथ नही हो सकता। अचानक मिन्नी के पास अपने ही मन से उलझे हुए उसे वही श्लोक याद हो आया था। कर्म!···वह कर्म किये जायेगा। हो सकता है कि फल देर में मिले···धैर्य महसूस किया था उसने अपने भीतर। मिन्नी आयी, तब कहा था—'तू शायद ठीक ही कहती है मिन्नी। पेट के लिए कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा···जब तक मेरी सरस्वती सिद्ध नही होती, तब तक तो करना ही होगा!'

मिन्नी ने खुश होकर कहा था—'यह हुई ना कोई बात!···और और अजित, एक बात मैं जानती हूं कि तू अगर कुछ करना चाहे तो न हो···यह असंभव है!···'

'सच?' अजित जैसे खुश भी हुआ, व्यंग से मिन्नी पर मुसकराया भी—'हां, एकदम सच!' मिन्नी ने जवाब दिया था।

लगा था जैसे उनके तनाव के बीच फिर से एक फुहार बरस आयी है। ठंडक देती हुई। वे सहज हो गये थे। अजित बोला था—'तू तो मुझसे बहुत कुछ कह चुकी मिन्नी, पर एक बात पूछूं तुझसे?'

मिन्नी ने भवें सिकोड़कर उसे देखा था।

अजित बड़े सहज भाव से बोला—'उस दिन तूने हालात की बात की थी। कहा था कि वक्त होता है—तुम पर ऐसा कौन-सा वक्त आ पड़ा था, जिसके लिए तुझे बी०ए० करने में गोविल से समझौता करना पड़ा?'

मिन्नी का चेहरा एकदम पिट गया था। ऐसे, जैसे अजित ने एक कीचड़ में भीगी कूची उस पर फिरा दी हो।

अजित उसे लगातार देखे जा रहा था—इसी तरह देखेगा—उसे बुलवाना पड़ेगा।

देर बाद मिन्नी बोल सकी थी। उसने उसकी ओर देखा नही था। दूर नीम के झाड़ पर नजरें टिकाये रही थी। कहा था—'तू नही समझेगा!'

'हो सकता है कि मेरे वैसे हालात न हों और मैं न समझू, पर···तू तो बता ही सकती है कि कौन से हालात और वक्त था जिसकी वजह से गोविल, सक्सेना, यहां तक कि बात घाटपांडे तक आ पहुंची!'

'तू सुबह-सवेरे क्या यही सब जानने-पूछने आया था?' अचानक मिन्नी का चेहरा तमतमा उठा था ···'मेरा···मेरा अपमान करने आया था—क्यों?'

वह सकपका गया, 'नही, नही, मैं तो उतने ही साफ दिल से पूछ रहा था, मिन्नी, जितने साफ दिल से अभी तू मुझसे बहुत कुछ कह चुकी है?

सहसा वह उठ खड़ी हुई थी, 'हुंह···साफ दिल!···' फिर वह तेजी से किचिन की ओर बढ़ी थी। अजित ने साफ-साफ देखा था कि उसकी आवाज की ही तरह चाल में भी एक तमतमाहट है। लगा था कि अपनी कमजोर नस पर झरला गयी है। सच तो यह है कि इसके कोई हालात ही नहीं रहे होंगे। यह है ही लुच्ची!···भला क्यों न होगी? ··मा किस कदर ··छिः छिः! अजित का मन खराब हो गया था। उठ पड़ा। जाते-जाते चीखकर सूचना फेंक दी थी—'जा रहा हू!'

मिन्नी का जवाब नही आया।

सीढियों पर थमा रह गया···

मास्साब और माया देवी मे कहा-सुनी हो रही है। नयी बात नहीं थी। अजित का मन हुआ था कि चल पड़े, पर रुका ही रहा। सुनना होगा। सुनने से ही पता चलता है। कहानी मिलती है। उस दिन गोष्ठी में किसी बड़े लेखक का भाषण सुना था। बोले थे—'कहानी हमारे बहुत करीब है।

ज़िन्दगी में···बस, जरा चौकन्नेपन से देखने, सुनने, समझने की जरूरत है···'

और कहानी नजदीक। अजित ने कान लगा दिए थे। मिन्नी को लेकर कुछ कह-सुन रहे हैं···

मास्साब की मिमियायी हुई आवाज थी—'···जरा तसल्ली से सोचना माया, ठंडे दिल से!···मिन्नी को इस तरह बिना किसी रिश्ते में बांधे रहना ठीक नहीं है। आखिर को पराया धन है···एक न एक दिन तो विदा करना ही है ··'

'तो मैंने कहां कह दिया है कि निजी धन है। जमीन में गाड़ के रख लो!···' माया देवी का जवाब आया था—'पर अभी हुई ही कितनी बड़ी है जो उसे लेकर ऐसी चिन्ता करने लगे?'

'चिन्ता तो करनी ही पड़ती है माया ··' मास्टरजी कराहे थे। शायद उनकी कमर में नहीं, सीने में दर्द है—अजित को कुछ ऐसा ही लगा इस आवाज से।

'और घर क्या तब तक तुम चला दोगे? ··अभी चार दिन तो हुए हैं कि ठीक से दो सौ रुपल्ली लायी है···वरना कमाती ही क्या थी—सत्तर रुपए! उस सत्तर में घर भी चला लेते, ब्याह भी कर लेते! हुंह!'

'इस सौ-सवा सौ रुपल्ली के लिए भी उस बेचारी ने क्या-क्या नहीं भोग लिया!···पर आखिर हम भी मां-बाप हैं···कोई कोठेवाले तो हैं नहीं?' इस बार मास्टरजी की आवाज इस क़दर तेज हुई कि अजित सीढ़ी पर हिल-सा गया। और फिर जो माया देवी ने धारा प्रवाह गालियां बकनी शुरू कीं, उसके बाद अजित को लगा था रुकना ठीक नहीं। कहानी तो हो चुकी थी···निबन्ध शुरू हो गया! वह सिटपिटाता हुआ-सा बरामदा पार करके लगभग दौड़ता हुआ सीढ़ी से उतर गया। गली में आकर काफी कुछ राहत मिली थी। कमीनी कहीं की!···उसने भीतर ही भीतर माया देवी के लिए एक गाली सोची थी। मास्साब ने ठीक ही तो कहा था—'कोठे वाले···'

बिल्कुल कोठे वालों ही बनाकर छोड़ दी मिन्नी!···अजित लौट पड़ा

था घर की तरफ। कुछ नाश्ता करके निकलना ठीक होगा। साहित्यिक गप्पबाजी कभी-कभी भूखा मार देती है! होटल में चाय-नाश्ते की गुंजाइश कब की खत्म हो चुकी। एक-दो बार मन हुआ था कि केशर मां की सन्दूक खोलकर एक बार फिर से कुछ साफ-सफाई कर दे, पर···हर बार रुकना पड़ा। उस दिन, जब सब कुछ खोलकर उसके सामने रखते हुए बोली थी—'तुझे इस सबमें आग ही लगानी है, तो लगा दे!' और अजित मन ही मन जलकर बुझ गया था। सचमुच बहुत आवारागर्दी की है उसने। अब केशर मां को कष्ट नहीं देगा!···उसने हाथ थाम लिए हैं तब से। दोपहर दो-तीन बार चाय की तलब लगती है। कमल बनर्जी उसका बहुत अच्छा दोस्त है। कवि है, कहानियां भी लिखता है। उसी की तरह जीवन में कुछ करना चाहता है। नाम तो है—कमल बनर्जी, पर कलम कलम कहते हैं सब। मज़ाक में रखा गया नाम अब जैसे असल ही हो गया है। उसी से पटती है अजित की। जेब, समझ, लेखन, हैसियत हर मामले में दोनों लग-भग बराबर हैं। दोनों निश्चित समय पर महाराजबाड़े पहुंचते हैं। एक होटल है। उसमें बैठकर या तो घन्टों यहां-वहां की बातें करते हैं या फिर अखबार पढ़ते रहते हैं और या सोचते हैं कि किस तरह रचनाएं छपें···

चाय-नाश्ते की तलब पर कोई भी मौसम हो—मोतीमहल जाना जरूरी होता है। वहां है सरकारी आफिस। एक क्लर्क है—जगन्नाथसिंह। बच्चे कम पैदा करो, करो तो तीन करो, खेतों में पानी दो, पानी दो गुड़-धानी दो···इसी किस्म की कविताएं लिखते हैं। सरकारी अखबार में छपवाते हैं, मिनिस्टरों को सुनाते हैं और कवि हैं। उनके पास पहुंचना होता है। कलम बनर्जी और अजित योजना बनाकर उनकी कविताओं की फर-माइशें करते हैं, प्रशंसा करते हैं और फिर मिलता है चाय-नाश्ता!···जब मन नहीं होता उतनी दूर पैदल जाने का, तब किसी और को ढूंढ़ना होता है। न कविता लिखने वालों की शहर में कमी है, न चाय पिलाने वालों की। बस, तारीफ करने का गुण चाहिए! वह अजित और कलम बनर्जी में कमाल का है।

आज दोपहर उसी तरह बितानी होगी···अजित ने सोच लिया था,

पर खाना तो नहीं हो सकता। इसलिए कुछ भरपेट खाना खाकर जाना होगा !···वह मुड़ गया था···

वटनिया फिर सामने आएगी !···अजित ने अपने भीतर कुछ बेचैनी महसूस की थी···पर कुछ भी वश में नहीं है। वह बटनिया से भाग नहीं सकता। उसका सामना करना ही होगा···लगातार करना होगा···तब तक करना होगा, जब तक कि वह इस गली से विदा नहीं हो जाती !

फिर यह सोचकर सन्तोष मिला था अजित को कि बटनिया जल्दी ही विदा हो जाएगी !···

मगर तरेट ?···वह सवाल तो जहां का तहा ही रखा है ?···मन हुआ था कि एक बार फिर बटनिया से कहे—नजर बचाकर ही सही, पर कह डालेगा, 'माफ करना बटनिया, उस दिन कुछ ऐसी गड़बड हुई कि असल चीज जो देखनी-समझनी थी, वह तो छूट ही गयी। क्या एक बार फिर···पर इस विचार के साथ ही अजित ने अपने से घिन, चिढ और नफरत महसूस की। इतना गिर चुका है अजित ? ऐसे शब्द कहेगा उससे ?···इस क़दर नंगी बात ?···उससे, जिसने आंखें मूदकर जैसे ज़हर पीते हुए अजित के सामने अपने आपको लगभग नग्न कर दिया था'' केवल कुछ शब्दों की ताकत पर···

वे शब्द'''बटनिया की ईमानदारी और अजित के प्रति प्यार-विश्वास भरे शब्द···

'···ठीक है ! मैं फिर से खड़ी हो जाती हूं। तेरा जो मन चाहे, वह कर···'

अजित एक दलदली अहसास से नहा गया था। इसी अहसास में डूबा-भरा घर आया।

चन्दनसहाय स्नान करने के बाद जोर-जोर से रामायण-पाठ कर रहा था—

> जो सुमिरत सिधि होय, करुणायक करवर बदन,
> करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि-राशि शुभ गुण सदन,
> मूक होय वाचाल, पंगु चढ़हि गिरिवर बदन,
> जासु कृपा सो दयाल···

स्साला ! ··ढोंगी ! रिश्वतखोर !···भगवान को रोज पाठ की रिश्वत फेंकता है। सड़े-सड़े मामलों की तारीखें बढवाने, फायलें दबाने-उगाने की दो-दो रुपल्ली लेने वाला शैतान !···

काश !···ये बटनिया का भाई न होता ! कभी-कभी तो लगता है जैसे ये बटनिया का कोई भाई है ही नही। कुछ भीतरी घपला है। इस घपले ने एक ही गमले में तुलसी भी रोपदी, बबूल भी !···

अजित सीढ़ियां चढकर अपने कमरे में आ गया था।

रसोई से बरतनों की आवाजें आ रही है। जरूर बटनिया ही घुसी होगी उसमे। वह जल्दी-जल्दी बाथरूम मे मुंह-हाथ धोकर बैठक में पहुंचा। केशर मा से कहना होगा रोटी के लिए···अक्सर बटनिया से ही कह दिया करता था, पर आज हिम्मत नही पड़ रही। वह देखेगी तो अजित बात कर पाएगा उससे ? कैसे करेगा ?···न्-न् ! नही कर सकता।

केशर मां बैठक में नही थीं। सिर्फ पानदान रखा है। अगर पानदान यहा रखा है तब वे शायद घर में ही नही है। और अनुमान करे, इसके पहले ही एक आवाज आयी थी। बटनिया की आवाज—'अम्मा नही है ?'

'कहा गयीं ?' सिलसिले में ही पूछ गया।

'कौल साहब के यहा।' जवाब आया।

'कब आयेगी ?'

'शाम तलक।'

अजित ने फिर कुछ नही पूछा। अब दिन भूखे ही गुजारना होगा। बटनिया के सामने पड़ने का साहस नही है। बस तेजी से मुड़ा—बरामदा पार करके कमरे में आया। सैन्डिलें पहनी और सीढ़ियों की ओर बढ़ा, आवाज ने फिर पीछा किया— '···तू कही जा रहा है ?'

'हा।' उसने एक कदम और बढ़ाया। लगभग भागता हुआ कदम।

'रोटी खा जा !'

एक पल के लिए मन हुआ कि कहदे—'नही, भूख नही है।' पर लगा कि बेवकूफी हो जाएगी। खाना कही नही मिलेगा। सिर्फ चाय और एकाध समोसे से क्या बनेगा ? बोला—'ठीक है।'

'कमरे में बैठ। वहीं थाली लाती हूं···' कहकर वह वापिस हुई। अजित ने कुछ सहम के साथ बरामदे में देखा—वह वापिस हो रही थी··· कांपती हुई-सी।

अजित एक गहरी सांस लेकर चुपचाप कमरे में आ बैठा।

थोड़ी देर बाद वह आयी। थाली उसने सामने रखी। अजित ने स्पष्टतः देखा था कि उसकी कलाई में बेहद कम्पन था। ऐसे, जैसे हाथ कई सेर सामान उठाए हुए हो। गले का थूक निगल लिया अजित ने। अपने से ही डर गया। वह थाली रखकर एकदम मुड़ी। बाहर निकल गयी।

कुछ पलों तक अजित सूनी देहरी ही देखता रहा। दिमाग़ जैसे बन्द हो गया था। लगा कि जितनी शर्म उसमें है, उससे एक गुना भी अजित में नहीं है। निहायत निर्लज्जता के साथ बैठा हुआ ग्रास तोड़ेगा, पेट भरेगा और कुत्ते की तरह गरदन झुकाए लौट जाएगा! मन उखड़ गया।

बाहर से आवाज़ आयी थी, 'जो चीज लगे, आवाज दे दियो!'

अजित का ग्रास तोड़ता हाथ फिर थमकर रह गया था। उसने चेहरे पर उभर आया पसीना कन्धा हचमचाकर पोंछा फिर थाली की ओर बैल की तरह गरदन झुका ली, और खाने लगा।

लगा कि भूख नहीं रही है···बिल्कुल भी नहीं। जबरदस्ती कर रहा है अपने साथ। बटनिया फिर आ गयी। वह फिर थम गया। बटनिया ने पानी के लोटा-गिलास रखे। लौटने को हुई तो सामने से थाली सरकाते हुए अजित बोला—'भूख नहीं है। नहीं खाऊंगा।'

'क्यों?' वह एकदम मुड़ गयी। दोनों ने एक-दूसरे को देखा। बटनिया ने सिहरकर नजरें झुकाली। थरथराते होंठों से कुछ शब्द फूटे—'क्यों नहीं है भूख? कहां खा आया?'

'कहीं नहीं।'

कुछ न कहकर वह थाली उठाने लगी। अजित जैसे भरभर बोल पड़ा—'सच तो यह है बटनिया, कि हमने पाप किया है और अब न तुझ पर ही उसे ढोते बन रहा है, न मुझ पर!···'

बटनिया ने फिर से उसे चौंककर देखा, फिर नज़र मिली, फिर

झुक गयी। वह बिना कुछ कहे थाली लेकर बाहर हो गयी।

अजित हाथ धो आया। आकर पलंग पर बैठ रहा। बीड़ी सुलगायी। यही कमरा, यही पलंग, ऐसा ही सन्नाटा···फिर वही सड़ाध देता, दलदली अहसास···

बटनिया देहरी के पास आ खड़ी हुई थी। ओट से कहा—'तू इकल्ला ही तो पापी नही है···'

उसने सुना। चुप बैठा रहा।

एक पल बाद फिर बोली थी वह, 'मैं भी हूं पापिन !'

'नही !···तेरा कोई दोप नही। न मैं तुझसे कहानी की खातिर वह सब करने को कहता, न वैसा होता···'

'नही-नही, तू अकेला नही है···मैं भी हूं !' बटनिया कुछ बुलन्दी से कहे जा रही थी—'इसीलिए कहते है कि जवान लडके-लडकी·· इकल्ले में नही मिलने चाहिएं !' पर गल्ती तो मेरी ही थी। मैं ही तेरे पास उत्ती रात क्यो गयी ?···'

'हां-अ्···शायद !' अजित गर्दन झुकाये हुए बड़बड़ाया—'प्प्र···' मुझे तो पता ही नही था कि मैं जवान हो गया हूं···'

'मुझको भी कहा पता था ?' वह भी उसी तर्ज मे बोली।

वे चुप हो रहे।

सहसा अजित के दिमाग में एक सवाल कौंधा था—'अव क्या होगा ?'

'अव क्या होगा अजित ?' वह भी बोली, जैसे रोयी हो।

अजित को जवाब नही सूझा।

'मैं तो 'भिरप्ट' हो गयी !' वह रो पडी थी।

अजित डरने लगा। अगर कही ज्यादा जोर से रोयी ··और नीचे से कोई आ पहुंचा तो पता नही क्या समझे ?···समझने को क्या है ? एक ही बात। केशर मां घर में है नही। बटनिया भी सिरफ···और अजित तो आवारागर्द है ही ! जरूर कोई शरारत की होगी।

घबराकर उठा और देहरी पर जा पहुंचा, 'चुप !···चुप रह ! आवाज नीचे तक जायेगी।'

'हा-अ्···' वह रुलायी थामने लगी। दोनों ही भूल गए थे कि आमने-

सामने नहीं आना था। आ नहीं पा रहे थे। घबराहट दोतरफा हो गयी थी।

उसने रोते-रोते फुसफुसाते शब्दों में फिर से सवाल दोहराया—'बता, अब क्या होगा ?···मेरा तो धरम ही गया !'

'धरम तो मेरा भी गया है ···' लगभग मिनमिनाते हुए अजित उसे हौले से कन्धे पर टहोका देते हुए केशर मा की बैठक की तरफ ले चला था। डर-डरकर पीछे देखता हुआ ··

वे बैठक में आ गए। अजित ने बटनिया से कहा था—'बैठ जा !··· जरा धीरज रख। सोचते हैं कि इसका प्रायश्चित कैसे करें ?'

वह बैठ गयी। उसी तरह रुक-रुककर नाक सुड़कती, आंसू पोंछती हुई। चेहरा उसका सुर्ख हो गया था।

अजित उसके सामने खड़ा हुआ भयभीत उसे देख रहा था। चेहरा एकदम उतर गया था उसका। बाप रे !···यह लड़की तो तूफान खड़ा कर सकती है !···

'मैं सारी रात नहीं सोयी···बस, सोचती ही रही···कि···कि अब, अब क्या होगा ?' वह जितना-जितना सिसकियों को रोकती, उतना-उतना सिसकियां बढ़ती ··

'मैं भी नहीं सोया।' अजित ने कहा, फिर उसे लगा कि उसकी अपनी आवाज भी रुआंसी हो उठी है—'मैं भी वही सोच रहा हूं···'

'अब क्या सोचें ?···' गुड़ी-मुड़ी होती आवाज में वह बुदबुदायी थी—'मैंने तुझ पर कितना विश्वास किया था अजित ?···' अचानक देर बाद उसने अजित की ओर चेहरा उठा लिया था। निगाहें अजित की निगाहों से टिकादी थी ! वे आंखें !···अजित कांप उठा था। लगता था कि किसी मासूम हिरन के बच्चे की आखें हैं—जिसे चोट लग गयी हो ··दौड़ न पा रहा हो···निराशा, दर्द, पराजय और दया···कितना कुछ था उन आंखो मे ? अजित लज्जा और अपने ही प्रति ग्लानि से भर उठा। कुछ न कुछ करना होगा। उसने सोचा था। किसी-न-किसी तरह भूल सुधार करना होगा ! बटनिया की इन आखों के जवाब न देने पर सारी उम्र सालती रहेंगी ये आंखें···बडबड़ाकर कहा था उसने—'डर मत !···कोई-न-कोई

तरकीब निकाल लेंगे !···सब ठीक हो जायेगा !'

वह चुप हो रही। रुलायी धीमे-धीमे हल्की हुई फिर थम गयी।

अजित गुमसुम बैठ रहा। रह-रहकर सीढियो का ध्यान आता। कोई आयेगा तो आहट होगी। इस आहट का भी ध्यान रखना होगा। उसने सोचा।

पर क्या हो सकता है बटनिया के मामले में ? अपराधी तो अजित है। आधी बटनिया भी। चाहती तो क्या भाग नही सकती थी, जब अजित पर पागलपन सवार हो रहा था ··पर वह भी शरीक हो गयी। नही-नही, अपराधी दोनो ही है। बटनिया तीस परसेंट, अजित सत्तर परसेंट। इसलिए ज्यादा बड़े अपराधी को ही प्रायश्चित्त की राह खोजनी होगी।

'मै कुए में डूब जाऊंगी !' अचानक वह बोली।

अजित के चेहरे पर जैसे मुक्का पडा। बौखलाकर कहा—'पागल हो गयी है ?'

'तो बता क्या करू ? मै तो धरमभ्रष्ट हो गयी !' वह फिर रुआसी हुई, 'महाभारतजी मे लिखा है कि ऐसी औरतें अगले जन्म मे कुतिया बनती है !···जगह-जगह गू खाती फिरती है···'

'चुप रह !' अजित ने एकदम से उसे डाटा। जरूरी है। न डाटा तो अभी रो-रोकर घर भर देगी।

'अरे, चुप कर !···' अजित ने फिर घुडकी दी उसे—'जगह-जगह गू खाती फिरती है ! जैसे तू देख आयी है ऐसी औरतों को ? किस महाभारत मे लिखा है ऐसा ? कहा पढा तूने ?'

'मैं कोई पढना जानती हू क्या ?···मुझे तो भाभी ने बतलाया है···' उसने सफाई दी। डर गयी।

'क्या बतलाया है ?'

'यही कि ये सुनहरी-वुनहरी जो करती है ना···उससे अगले जनम में कुतिया बनना पड़ता है···और जगह-जगह···' वह झींगुर की तरह बोलने लगी थी।

'कर्ण हुआ था कुंआरेपन में तो क्या कुन्ती···छि. !' ज्यादा ही चिढ़कर बोला था अजित, 'फालतू की बकर-बकर किए जा रही है ··मुझे

सोचने तो दे नही रही ?'

'राजा करन की वात और थी···वह सूरज भगवान···'

अजित ने एकदम टोका, 'मूर्ख कहीं की !···ये भगवान-वगवान को तू वीच में कहां घुसा रही ? जरा भी शान्त नही रह सकती।'

'अच्छा, ले नही वोलूगी।' वह चुप हो रही।

अजित फिर सोचने लगा—तीस परसेंट और सत्तर परसेंट !···गड़-बड़ तो हुई है। कुछ करना होगा। पर क्या किया जा सकता है ? समझ से बाहर। सिर्फ एक ही राह दीखती है कि वटनिया से शादी कर ले !

मगर शादी करना कोई बच्चो का खेल है ?···एक मसल याद हो आयी— अक्सर केशर मा बुदबुदाती है—'घर मे नही दाने, अम्मा चली भुनाने'। ऊंहु ! शादी से समस्या हल नही होगी। पर इस पर वटनिया को कैसे समझाया जाए ? अजित के दिमाग में एक सिहरन भर गयी थी। कहती है कि कुए में डूब मरेगी। और ये है इस किस्म की पगली। सचमुच ही डूब मरेगी !

देर तक खामोशी रही। दोनो ने एक-दूसरे को कितनी ही वार देखा, कितनी ही वार आंखें झुकाली। फिर बोल पड़ी थी वटनिया—'मैं कुछ कहू ?'

'हा, वोल ?'

'भइया कहते है कि हर पाप का 'पिराचित' लिखा है किताबों मे। तूने तो खूब किताबें पढी है। ढूंढ ना कि ऐसा करम करो तो कैसे पिराचित हो उसका ?'

अजित का मन हुआ, कहदे—'मालूम है। तेरे ढोंगी भइया को खूब गहरे तक जानता हू मैं !···रिश्वत का प्रायश्चित ही तो करता रहता है···ढेरों शरीफ और भोले लोगों के मामले खराब किए होंगे दुष्ट ने। कई गरीबों को डुवोया होगा और प्रायश्चित्त हर शाम कर लेता है···जाने से पहले एडवांस में फाइन के तौर पर कीर्तन भर जाता है। पर लगा कि ऐसा कहने से बुरा मान जाएगी वह। चन्दनसहाय जो भी हो, तीन, पाच तेरह—पर वटनिया के लिए तो उसका वड़ा भाई है। पूज्य।···फिर इस जैसी लड़की के सामने तो राक्षस भी रिश्तेदारी मे पड़ जायें। ये कह

देगी—मुझे खा लो ! अगर इसकी जगह कोई सुनहरी, सहोद्रा होती तो अजित एक लात देता ऊपर से—कहता—भाड़ में जाओ ! मोठे ठीक ही कहता है ··तुम लोग···अजित ने सोचना बन्द कर दिया। चेहरा उठाया।

पर कोई राह नही।

उसकी निगाहें उसी तरह लटकी हुई। आशा के साथ। अजित कुछ कहेगा। उसके लिए प्रायश्चित्त ढूंढ़ लेगा।

और अजित सोचने लगा था कि जो प्रायश्चित्त है, वह न किया जाकर अगर किसी तरह बटनिया के दिमाग से अपराध बोध निकाला जा सके तो ज्यादा ठीक रहेगा। वह साफ था कि बटनिया उनमें से नही, जिन्हे समझा-बुझाकर या तर्क देकर शान्त रखा जा सके। पर यह सब इस तरह नहीं सोचा जा सकेगा। एकाध दिन में ठंडे दिमाग से कोई बात सूझेगी और वही बात बटनिया के मन में बिठाल दी जाएगी। कहा था—'मैंने भी सुना तो है कि प्रायश्चित्त है ··इसका भी प्रायश्चित्त है। मगर क्या है, किस तरह है—किस किताब में लिखा है—यह पता नहीं। मालूम करना होगा।

उसकी भोली निगाहों में एक चमक पैदा हुई थी, जैसे अचानक पाप ही उतर गया हो। बोली—'तो किताब ढूढ। कैसा भी कठिन 'पिराचित,' हो, मैं करूंगी।'

'मेरे खयाल है महाभारत में ही होगा।' अजित ने बड़बड़ाकर कहा था, फिर बटनिया की ओर एक गहरी सास ली। बोला—'आज बतलाऊंगा। ठीक ?'

बटनिया ने खुश होकर स्वीकार में गरदन हिलायी। कहा—'अच्छा !'

अजित बोला—'अब रोटी दे ··भूख लग आयी।'

वह उठी और रसोईघर में चली गयी।

अजित सोचने लगा था—क्या ठीक कर रहा है ?···इस सीधी-सादी लडकी को बहकाकर वह ठीक करेगा ? शायद नही। मन में कही दर्द की एक हल्की-सी लहर उठी, किन्तु इस लहर को पी गया···

न करता तो यह पगली क्या कुछ कर डालती—तय नही !···अजित

को लगा था कि मिन्नी के यहां से लौट आना ठीक ही हुआ। अगर वैसा न करता तब बटनिया अपनी महाभारतकालीन समझ से क्या गुल खिला देती—यह भी तय नहीं। उसने अपने आपको कुछ शान्त महसूस किया था।

'जा-जा!' बटनिया की आवाज आयी थी। अजित उठ पडा। रसोई की तरफ बढ़ा था। प्रायश्चित्त की बात ने शायद उस सरलमन लड़की के मन से अपराधबोध निकाल दिया है···अब सिर्फ लाज है, ग्लानि नहीं।

पर अजित के भीतर से ये अपराध-बोध कभी निकल सकेगा?···

शायद कभी भी नहीं! उसने सोचा और रसोई मे आ गया।

बटनिया से आंखें मिली। उसने होंठ हौले से काटकर मुस्कान देखी और बुदबुदायी—'मैं तो बहुत डर गयी थी अजित ··घिन के मारे चैन नही पड़ रहा था। पर जब 'पिराजित' हो जाएगा फिर कुछ नही! ···'

अजित ने कहना चाहा था—'हां-हां। तू ठीक कहती है ···' पर बड़ी कठिनाई से जुटाए गए शब्द ही उसके भीतर गले मे आकर बिखर गए··· चुपचाप खाता रहा। बैल की तरह गरदन झुकाए·· बटनिया सब्जी बढ़िया बनाती है, मगर पता नही कोई स्वाद क्यों नही आ रहा है? ··

तरेट भी सवाल बनी रही थी, मिन्नी भी। तब कितनी-कितनी बातें तो होती थी जो इसी तरह दिनो, महीनों तक यहां तक कि बरसो सवाल बनी रहती थीं! मिन्नी के पास लगता था कि कहानी है···पर वह थी कि अच्छी-खासी दोस्ती के बाद भी कहानी निकालने को तैयार नहीं। अजित को उस दिन भाषण दे डाला था, पर अजित ने जब उससे गोविल, सक्सेना और घाटापान्डे वाली बात साफ-साफ सुननी चाही थी तो कतरा गयी!···

बटनिया और मिन्नी की तुलना करने लगता। एक है बटनिया—दूध की तरह सफेद! ··मन पर कालिख की परछाई भी आ आए तो उसे

हटाने के लिए पिशाचित ढूंढ़ती है और एक मिन्नी। सिर्फ कालिख—बड़ी शान से उस पर तर्क और बुद्धि का सफेदा पोते हुए !

दोनों ही अजित की दोस्त। पर कितना फर्क ?···एक अजित के सामने नग्न होकर भी नग्न नही और दूसरी सारे कपड़े पहने हुए भी नग्न !··· मिन्नी को लेकर भी वही श्रद्धा करना चाहता है अजित, जो वटनिया को लेकर है। मगर वैसा नही हो पाता। सहानुभूति देना चाहता है, सो वह भी नही। असल में मिन्नी ही नही चाहती ! अजित ने सोचा था—उसका ख़याल छोड़ दिया !···उसके बारे में माथापच्ची करना ही बकवास।

मास्साब और माया देवी की बातों से लगा था कि मिन्नी को सचमुच सहानुभूति और प्यार चाहिए !···बेचारी को ठीक उसी तरह पिसना पड़ रहा है, जिस तरह मायादेवी ने जया मौसी को पीस डाला था···अब क्या इसकी शादी भी किसी आख वाले, भोथरे आदमी से कर देंगी ? जो पढाई-लिखाई में एकदम जीरो होगा ? मिन्नी बात चलाती, कुछ कहती तो ये सारी बातें निकलती, पर वैसा कुछ भी नही। मिन्नी कभी कुछ नहीं बतलाएगी···यों दोस्त के नाते अजित का भी इरादा था वह सब जानकर मिन्नी की हंसी उड़ाने का नही। अगर कोई इरादा है तो सिर्फ यह कि मिन्नी से सहानुभूति हो उसकी तकलीफ समझे। उसके लिए तकलीफ भी महसूस करे। तब यही कुछ सोचा था उसने। पर मिन्नी ने शायद उसे भी मोठे बुआ, छोटे बुआ या इसी तरह के और-और लोगों में समझ लिया !···अजित कितनी ही बार सोचता और कुछ रूठता।

पर कुछ दिनों में ही चिढ होने लगी थी···इस चिढ़ में ही अजित ने तय किया था। समझती क्या है मिन्नी ? वह नही बतलाएगी तब क्या मैं कहानी नही निकाल सकूंगा ?···यों, अपने लोगों पर कहानी लिखी जाए, अजित ने कभी नहीं सोचा, पर सोचना होगा !···ऐसे दिलछुपाऊ लोग भी कोई अपने होते हैं ?

इस इरादे के साथ ही उसके दिमाग मे चमका था भांडे बुआ···! वह एक आदमी है जो कुछ सिक्कों पर घर की भगोनी भी बेच सकता है,

मिन्नी की मुसकानें भी। कुन्दन दरजी से अक्सर पैसे ले लिया करता था। अजित को मालूम है। बरसों देखा है उसने। क्या इस बात के कि वह मायादेवी, अपनी मां और कुन्दन को लेकर सिर्फ चुप है ? इस चुप के एक दाम।

एक बार मोठे बुआ ने बतलाया था—'तुझे मालूम है ये स्साला भांडे बुआ तो दलाल हो गया, यार !···एकदम दल्ला ! बल्कि दल्ले इस हरामी से कहीं ज्यादा इज्जत वाले होते होंगे !'

'क्या मतलब ?' अजित ने सवाल किया था।

सिर्फ अजित ही नही था। उस दिन सब गली के लड़के इकट्ठा थे। भांग का प्रोग्राम बना था···अजित शामिल नही था, पर बातों में शामिल। मोठे बुआ ने खाली भांग छान रखी थी। कहा था—'डाक्टर गोविल से पैसे लिया करता है। मिन्नी से भी···और, और तुझे मालूम है—वह जो स्साला इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल है ना सक्सेना साहब !···वह भी इससे डरता है, जैसे ये मिनिस्टर है। उसके आफिस मे दन से घुस जाता है। मुझे तो लगता है उससे भी घुर करता है !'

'वे इसे किसलिए पैसा देंगे ?' अजित ने कुछ रूखी आवाज में पूछा था। मिन्नी से वह नाराज है, मगर किसी भी बार मिन्नी और उसके परिजनों को लेकर उछाली जा रही बातों को सह नही पाता। क्यो ?··· नही जानता ! आज भी यही हुआ।

मोठे ने कहा था—'हो-हो-हो···अबे चपड़घोंच पंडित !·· तुझे इत्ती-सी बात समझ मे नही आती ?'

'तुम कभी भी ठीक से बात नही करते !'

'तो ले ठीक से ही सुनने का !···' मोठे ने बतलाया था—'वह गोविल और सक्सेना ने मिन्नी से टाका भिडाया है ना ?···ये स्साला उसका भाई है। सड़क पर पकड़ ले और बिन दोनों की कभी भी बखिया उधेड़ दे··· डरते है भांडे बुआ से !·· बिसको रुपया-दो रुपया देके पटाए रखते हैं। अपनी इज्जित की खातिर !···'

कुछ कहा नही था अजित ने। आगे बढ़ गया था। इस आदमी से बहस तो की ही नही जा सकती। अक्ल की जगह पांच सेर का वजन रखा हुआ

है—बस ! सोचा था—क्या सचमुच भांडे बुआ इस कदर जलालत पर उतर सकता है ?···आवारा है, चोर है, अपढ़ और घटिया आदमी है··· मगर इस क़दर गयागुजरा तो नहीं कि मां-बहिनों के ही दाम लेने लगे ?··· न-न् !·· विश्वास करने का मन नहीं होता।

पर मोठे की बात पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। भांडे बुआ को कुन्दन से ही पैसे वसूलते अजित ने कई बार देखा है। उसकी बातें भी सुनी हैं···जैसा बोलता-सोचता है, वही तो होगा वह ?··· और अगर वह है—तब उस जैसे आदमी के लिए कठिन नहीं यह सब करना !

पर भांडे बुआ से बात निकालना इतना आसान नहीं होगा। सीधे-सीधे कुछ कहा, वैसे ही भड़क पड़ेगा। उससे तो मिलजुलकर, कुछ दिनों तक उसकी यारी करके बात निकाली जा सकेगी। अजित को पछतावा हुआ था। बीच में अच्छी-ख़ासी बात पटती थी भांडे बुआ से। गड़बड़ यही की कि रिश्ता तोड़ बैठा। यह सोचकर कि आदमी घटिया है। अब लगता है कि घटिया आदमी नहीं खोया, कहानी खो दी !···

भांडे बुआ उससे कतराता है। विशेषकर इसलिए कि अजित मोठे बुआ का दोस्त है और मोठे बुआ के लिए गाली देना जितना आसान है, उससे हजार गुना आसान है लाठी चलाना !···भांडे बुआ चलतू आदमी है, पर इतना नहीं कि मोठे बुआ के चलतूपन तक जा पहुंचे।

अजित ने तय किया था। कहानी के लिए ही सही पर भांडे बुआ से दोस्ती करनी पड़ेगी !···हर टूटा जोड़ इस तरह जोड़ना होगा कि भांडे बुआ बीच की सारी दरार भूल जाए।

इसमें वक्त लगेगा। भांडे बुआ जिन धन्धों में है, उनमें एकदम आदमी को अपने साथ नहीं जोड़ लिया जाता। धीमे-धीमे जुड़ना होगा···

अजित उस दिन प्रतीक्षा करेगा···याद सिर्फ इतना रखना है कि उसे मिन्नी की कहानी पा लेनी है।

'मिला कुछ 'पिराचित ?' एकाएक ही वह सामने आ खड़ी हुई थी। अजित घबरा गया। इधर-उधर देखने लगा।

'केशर मां सन्डास मे हैं।' वह बोली थी। पलकें झुकी हुई।

अजित आश्वस्त हुआ। केशर मा का लीवर गड़बड़ाया हुआ है। कुछ और-और तकलीफें भी है। सबने मिलाकर स्थिति यह कर दी है कि सन्डास में एक-एक घन्टे बैठी रहती है। अस्तित्व का पता चलता है उनके खांसने-खखारने से।

सोचने लगा था कि क्या प्रायश्चित्त बतला दे? बिजली की फुर्ती से तरकीब सोच निकाली थी। उसने कई पुराणों के नाम सुने है अजित से। गरुड़पुराण, मत्स्यपुराण आदि। कहा—'सुन, पता चला है कि नौ दिनों नमक न खाकर, सिर्फ हाथ की बनी रोटी खायी जाए तो वह सारा दोष दूर हो जाता है जो हमने किया है।…'

'कौन-कौन से दिन?'

'कोई भी नौ दिन। लगातार होने चाहिएं।' अजित ने बतलाया। और भी उलट-पुलट सोचता गया था। कुछ ऐसी कल्पना शक्ति भिडानी होगी कि बटनिया के दिमाग मे बात जम जाए—ऊची किस्म का प्रायश्चित सुझा रहा है। कहा था—'और भी बढ़िया किस्म का प्रायश्चित्त करना हो तो मिरची भी नही खानी चाहिए। इससे सिर्फ एक बार का ही नहीं, बार-बार का दोष भी खत्म हो जाता है।'

'कहा पढा तूने?' वह खुश हो गयी थी।

'हूँ?' वह चौका, फिर बुदबुदाया, 'मत्स्य पुराण में।' बात को ज्यादा प्रामाणिक बनाने के लिए कह दिया था—'तूने सुना ही होगा कि एक बार विश्वामित्र मुनि और मेनका अप्सरा भी ऐसा ही कुछ घोटाला कर बैठे थे, तब उन्होंने यही प्रायश्चित किया था और भगवान ने कहा कि जाओ, तुम लोग बरी हो गए! मजे करो!'

वह खुश हो गयी थी। 'आज ही से शुरू कर देती हूं।' कहकर वह दूसरे कमरे मे चली गयी थी। अजित ने मन ही मन अपने को सराह लिया था—क्या बुद्धिमानी से बात टालदी?…पर खुश होते हुए भी मन को कुछ अच्छा नही लगा था। बटनिया के साथ छल-पर-छल करता गया है वह…क्या ठीक हुआ?

पर भूल जाना होगा इस सबको। लगा था भूल नही सकेगा। केशर

मां आ पहुंची थी। माथे पर पसीने की बूंदें, सांस धौंकनी की तरह चलती हुई। थकी हालत में चुपचाप चारपाई पर आ लेटी। बटनिया के नाम एक पुकार फेंकी थी—'आधे कप चाय तो बना ला, बटनिया !'

'अच्छा !···' अगले कमरे से आवाज आयी, फिर तेजी से बटनिया रसोईघर की ओर चली गयी।

अजित चुपचाप बैठा रहा। मन हुआ था कह दे—'इतनी चाय पीती हो इसीलिए लिवर राम-राम बोल गया है···' पर नहीं कहा। केशर मां को जरा कुरेदने का मतलब होगा, सत्यनारायण कथा की तरह शुरू हो जाएगी। गालियां, घटनाएं, गतागत सभी का लेखा-जोखा करने लगेंगी··· बीमारी ने आदमी से ज्यादा सिर्फ चिढ़ बना छोड़ा है उन्हें। उठ खड़ा हुआ था। अपने कमरे में बैठेगा। 'चांद' की कोई पुरानी फायल निकालकर कहानी, लेख जो मन चाहेगा—पढ़ेगा। पर जाये, इससे पहले ध्यान गली की ओर खिंच गया।

ढप-ढप ढपर-ढपर···

ढप-पढप···

अजित लपककर गैलरी में जा खड़ा हुआ। गली के हर घर का मुंह उस घरवालों से भर गया है—वैष्णवी, मुनहरी, बदनसिंह की बहू, पांडे, वैजापुरकर, सुरगो···सभी बाहर जा खड़े हुए हैं। सबकी नजरें गली के मोड़ से भीतर प्रवेश करते हुए एक छोटे-से जुलूस पर।

केशर मां खासती, हांफती गैलरी में आ बैठी। बैठते-बैठते पुकार लगायी—'अरी बटनिया···! जल्दी आ जरा !···जल्दी !'

अजित कुढ़ा, पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। ध्यान लगा है उस छोटे-से जुलूस पर।

सिन्धी टोपनदास सफेद पाजामा-कमीज पहने हुए आ रहा है। सिर पर चमकता मुकुट···दाढ़ी भी सलीके से साफ है, बालों में खिजाब। झुर्रियों भरा तपेदिकी चेहरा भी जैसे अजब-सी रोशनी में नहाया हुआ है···गले में माला। पीछे-पीछे सॉटन की सलवार-कमीज पहनी हुई कोई युवती। चुन्नी पर सलमासितारे। गर्दन तक घूंघट खींच रखा है। उसके पीछे-पीछे लटकते स्तनोंवाली दो-तीन सिन्धी औरतें···ढोल-मार गाते···

पीछे-पीछे मुहल्ले के बच्चे। सबके चेहरों पर मुस्कानों के अम्बार। औरतो ने भी नये कपड़े पहन रखे है। एक औरत नयी बहू के ऊपर छतरी लगाये चल रही है···

वैष्णवी, सुरगो, मुनहरी सभी एक-दूसरे की ओर व्यंगभरी नजरों से देखती-मुस्कराती है, जैसे कह रही हों—'देखो तो मसखरी···'

सबसे आगे चलता आदमी एक ढोल पीटता जा रहा है···

ढप-ढप ढपर् ढपर्···

ढप-पढप्···ढपर्···

अजित भी अनचाहे ही मुसकरा पडा। बटनिया देहरी से चिपकी अजब-सी अर्थभरी निगाहों के साथ उस ओर देख रही थी। केशर मा ने बड़बड़ाकर कहा था—'मरा अफीमची! अब इस कबर के बिज्जू से पूछो कि इस औरत की हवन-आरती उतारेगा, क्या करेगा?···मरते बखत संडे को सुयंबर की सूझी!···'

जुलूस गुजरकर सरदार मराठे के बाड़े की ओर चला गया है··· हल्की-हल्की 'ढपर-ढपर ढप-ढप' अब भी सुनायी पड़ रही है···मुहल्ले के मुंह खुल गये है···

'काकी!···' सुरगो चिल्लायी—'देख लिया?···' उसने 'लियाअ्' को ऐसे खीचा जैसे पतग की डोर तानी हो। आखें कुछ खास तरह नाची। यह नाच कत्यक की मुद्रा जैसा था। मौन भाव से सब कुछ कहने वाला।

केशर मां ने एक गहरी सांस लेकर जवाब दिया था—'इसी को लिक्खा है कि कलजुग है। मरते बखत भी आदमी को राम नाम नहीं, कामदेव याद आएगे!···' वह कराहती हुई उठ पडी। 'धन्न है मेरे रामजी!···अब तो इस नरक से उठा ले!'

अजित चुपचाप खड़ा रहा। सुनेगा, वे क्या-क्या कहती हैं ·· पर वे कुछ नही बोली। अपने-अपने घरों में समा गयी। असल में भोजन वगैरा

से निवृत्त होकर फिर बैठेंगी चौपाल पर। तब बात उठेगी। वह-वह रहस्य खुलेंगे कि अजित कहानी क्या पूरा उपन्यास पा जाये···

बटनिया रसोई की ओर चली गयी थी।

केशर मां फिर से चारपाई पर···अजित मन मारे हुए अपने कमरे की ओर लौट आया। रसोई के सामने से निकला तो फुसफुसाती आवाज सुनी थी बटनिया की—'तू भी चाय···'

अजित खुश हुआ, 'बनायी है क्या ?'

'हूं। लाती हूं, तू कमरे में रहना···' फिर वह एक प्याला चाय लेकर जल्दी से बैठक की ओर बढ़ गयी।

अजित कमरे में आ बैठा। दृश्य अब भी आंखों के सामने था। उत्तेजना-सी भरता हुआ। अजित ने साटन की शलवार-कुरती में कसे उस बदन को अच्छी तरह देख लिया है। औरत खूब भरी-भरी और गदर है···एकदम जवान। और टोपनदास का खयाल एक ऐसे नर्क-कुंड का खयाल है, जिसका हर किनारा टूटा-गला हुआ हो···बीच में सड़ांध से भरी दलदल हो और हर तरफ गलीजपन फैला हो···समझ नहीं आ रहा कि उस उफनती उम्र की खूबसूरत लड़की ने टोपन को पति बनाना कैसे स्वीकार कर लिया होगा ?···पर किया है—यह सच !

मोठे ने कहा था—'टोपन साईं जिसे ला रहा है ना, बस समझना कि बिजली है स्साली !···चार सौ चालीस वोल्ट !···जिसको छू लेगी न वो स्साला खिंच के चिपका रह जायेगा !···'

और गलत नहीं, सचमुच चार सौ चालीस का वोल्ट !···बल्कि उससे भी ज्यादा कोई पावर होती हो तो वह···कहते हैं कि जवान औरत सम्हलना बूढ़े के बूते में नहीं होता। हो भी कैसे सकता है ? अजित खुद राजनाथ मास्टर साहब और मायादेवी का हाल देख चुका है। पढ़े-लिखे मास्टरजी को छोड़कर उसने कुन्दन जैसे मूर्ख दरजी से दोस्ती करली। क्यों ? ··यही जवानी और बुढ़ापे का चक्कर !···

मोठे बुआ ने बतलाया था—'समझो टोपन अपनी खातिर कुछ नहीं कर रहा है, सब कुछ चूहरमल की खातिर कर रहा है···छोटे सांई की खातिर !'

'सो क्यों ?' अजित ने पूछा था, 'ब्याह टोपन कर रहा है कि उसका छोटा भाई चूहर ?'

'ब्याह तो टोपन ही कर रहा है, पर मजे चुहर के आ गये !' मोठे बुआ रस ले-लेकर कह रहा था।

'यार, तुम हमेशा गंदा-गंदा ही सोचते हो···' अजित ने भुनभुनाकर कहा था, 'टोपन अगर ब्याह कर रहा है तो क्या ब्याह का मतलब एक ही होता है कि उसे औरत चाहिए ?···अरे, ब्याह के मतलब तो कई-कई होते है। टोपन ने सोचा होगा कि इतना पैसा है, पर बुढ़ापे में सेवा करने के लिए कोई नहीं ? इसीलिए···उसने इस लौंडिया को ब्याहा होगा ···'

'और लौंडिया ने किसलिए इस स्साले को ब्याहा होयेंगा—वह तो बता ?' मोटे ने खीझकर सवाल किया।

'उसने भी सोचा होगा कि एक सहारा मिला।' अजित ने कहा।

'चूतिया है तू !' मोठे ने झुंझलाकर कहा।

अजित कुछ कहे, तभी छोटे बुआ ने कहा था, "पडित ठीक बोलताय भाऊ ! ··तुम्हारे को मालूम है ना कि ये भागो बेचारी राड है। इसको भी कोई सहारा होना था···टोपन इसका सहारा हो गया है, ये टोपन का हो गयी !" बस, इस ब्याह में इसके अलावा कोई चक्कर नहीं !'

'वेड़ा आहे तू आणि हा स्साला पडित !···' मोठे ने राय दी थी, 'तुम लोक स्साले अभी कुछ भी नही समझते हो !···टोपन ने दूध मे पाणी मिला-मिला के जो कमाया है विसके बाद विसको जवानी चढ गयी ·· सोचा कि एक परी ले आओ !···पन ये नही सोचा कि परी आ जाने के पीछू विसके पर का क्या होयेंगा ! जिस दिन पंख फड़फड़ायेगी, विस दिन देखना तुम इस स्साले टोपन के हाल !···इदर भैसों के गोवर में ही मुंह डालके पड़ा होयेंगा !···देख लेना ! आखिर को जवान औरत है। भागो !···और ये टोपन स्साला दिखने का आदमी है···आगपेटी* का खोखा !'

---

* आगपेटी—माचिस।

'क्या अ् कुछ तो भी बकते हो यार !' अजित ने मुंह विसूरकर कहा था, 'तुमको सब तरफ खराब-खराब ही दिखता है···हूह !'

'ये खराब नहीं है, खरोखर बात है !···' मोटे अपने तर्क दिये गया था, 'अबी दस दिवस पाछू देखना, टोपन हरे राम हरे राम करता नजर आयेंगा···'

'वह तो रोज हरे राम-हरे राम करता है···इसमे क्या खास बात है !'

'बिसको ओईच् करना था···!' नफरत उगलते हुए मोठे बड़बड़ाया—'फालतू में ये स्साली गैस की लालटेन ले आया···अब बोलेंगी कि मेरे को जलाओ !···ये बोलेगा स्साला कि फकत पेटी-पेटी है इसके पास।···वह चिनचिनायेगी !···गैस की लालटेन है तो क्या फालतूच् में रखी रहने को है ?'

'छि.-छि' !···' अजित ने नफरत से नाक सिकोड़ी। किस कदर गंदगी बके जा रहा था मोठे बुआ···अचानक वह गुस्सा हो गया था, 'हरामी कहीं का !···मैं इस टोपन स्साले को एक न एक दिन ऐसा गोता दूगा कि अक्कल आ जाये ! ··फालतूच् मे स्साला एक लालटेन लाया ! ··ये भागो इस स्साले के साथ शोभा देगी ··? अरे, इसकूं तो किसी आदमी के पास होना था ··मर्द के पास !···'

अजित सरक आया था उस चर्चा से ··अच्छा नहीं लगा था, पर आज जब, भागो श्रीमती भागवती टोपनदास साईं डेयरीवाला की गृह-शोभा बन चुकी है तब अजित को भी लग रहा है कि ठीक नहीं हुआ··· जवानी-बुढापे से कुछ अलग दोष नजर आते है अजित को। पहले ही ख़बर मिल चुकी थी कि टोपन जिस लडकी को ब्याहकर लानेवाला है वह न सिर्फ जवान है बल्कि विधवा है। अजित को लगा था कि विधवा-विवाह ठीक है। होना चाहिए। परन्तु वह टोपनदास के साथ हो यह ठीक नहीं। टोपन तो दोबारा विधवा कर जाएगा उसे। भागो के किसी हमउम्र के साथ होता तो ठीक रहता···

पर यहां भी असल रोल किया था कलदारों ने। पता नहीं, वे विक्टोरिया रानी के जमानेवाले थे या नेहरू जी के जमाने के···पर है कलदारो का चमत्कार !···कितनी-कितनी जगह ये कलदार अपनी तरह

चमत्कार नही दिखाते ? अजित सोचने लगा था। मायादेवी और राजनाथ भटनागर के बीच से लेकर रेशमा-शभू और अब भागो-टोपन तक ये कलदार ही कलदार हैं···आदमी कहां है ?

पर आदमी और जगह भी कहां है ?···लगता है कि किसी जगह कलदारों का न होना चमत्कार बनता है तो किसी जगह होना !···

बटनिया ने चाय की प्याली ला रखी है।

अजित के सोचने पर अंकुश लगता है कुछ पलों के लिए, फिर ये अंकुश टूट जाता है। बटनिया कहती है—'देख तो, टोपन ने कैसा अनरथ कर दिया ?'

'कैसा ?'

'देखी नही उसकी घरवाली···? मेरी-तेरी उमर की ही होगी, बस ! और ये मरा साई है पचास साल का !'

'उसके पास पैसे है' अजित ने कहा, 'बैंक में जमा है।'

'तो पैसे होने का मतलब ये थोड़े ही है कि किसी भी लडकिनी की जिनगी खराब कर दो !···' बटनिया जितनी दुखी है, उससे ज्यादा नाराज, 'पैसे न होते तो ये ऐसा कर सकता था ? इस घिनेटे को कौन वरता ?'

'तब इसकी कोई बहिन होती, जिसे ये किसी और पैसेवाले टोपन से ब्याह देता !'

वह चौंकी, जैसे पूछा हो—'कैसे ?'

अजित ने कहा, 'ये सब माया का खेल है बटनिया। आदमी पैसे के लिए ऐसे ही बिकता-खरीदता रहता है···तू चन्दन भइया को क्या कहेगी ? पैसा बचाने के लिए ही तो तुझे हरदोई भेज रहे हैं···?'

बटनिया सहसा गभीर हो गयी, 'पर हरदोई वाले कोई टोपन साई जैसे हैं क्या ? बूढ़े तो हैं नही।'

'बूढ़े होते तो चन्दन भइया का उत्ता खर्च भी नही होता, जितना होगा।'

'तो क्या भइया पईसे बचाने के लिए ही मुझे हरदोई···'

'हां !' अजित ने बीच में ही कहा था, 'अगर ऐसा न होता तो तेरे

लिए क्या और लड़का नहीं मिल सकता था? तुझ जैसा ही सुन्दर, सही कद-काठवाला…?'

'तू मुझसे ऐसी बातें मत किया कर!' वह बोली। अजित को लगा था कि आवाज नम हो गयी है उसकी। चुप हो गया।

वह मुड़ गयी। उसके जाते-जाते अजित ने देखा—वह आसुओं को पोंछने लगी थी। अचानक ही उसे लगा था कि इस तरह हरदोई वाली बात छेड़कर वह ठीक नहीं करता है। बटनिया दुखी हो जाती है।

तय किया था कि आगे से वैसी बात नहीं करेगा!

मन ने कहा—न करे!…पर बात न करने से बात का सच तो बदल नहीं जायेगा? वह अपनी जगह रहेगा। हमेशा रहता है। कितनी बातें, कितने सच तो हैं जो हर घटना के बावजूद अपनी जगह कायम हैं। घटनाओं में रुचि-अरुचि लेते रहते हैं हम, पर उनके सच में रुचि नहीं लेते। लें तो यह समझते देर कहां लगती है कि जो 'कुछ यूं ही-सा' होते नज़र आता है, वह यूं ही नहीं है "सब के पीछे अर्थ है। आंकड़े हैं। गणित है।

टोपनदास ने एक गणित लगाया था—डेयरी, भैंसें, बहुत-सी भैंसें और उसके बाद परी। भागो!…उजली, दूधिया बदन वाली कसी-गसी खूबसूरत युवती। इस गणित में न तो टोपन ने अपनी उम्र जोड़ी थी, न अपनी आंखों से निरन्तर बहता गीजर, न ही अपना झुर्रियों भरा तिनका बदन…उसने सिर्फ भागो का मीज़ान लगाया था।

और भागो ने भी एक गणित लगा रखा था…बहुत दिनों बाद पता चला था उसका गणित। उसमें उसने टोपन, उसकी उम्र, उसकी भैंसें, बैंक के पैसे…सभी कुछ जोड़ा था। जोड़ में एक गारंटी पा गयी थी। इसी जोड़ में उसने चूहरमल और पहूदास का भी एक हिसाब लगा रखा था। उन्हें टोपन से काटना होगा। दोनों टोपन के भाई। भरी-पूरी गिरहस्थियां थीं दोनों की। टोपन के बैंक-बैलेंस को प्रभावित करते थे दोनों। भागो ने बड़ी गंभीरतापूर्वक सोचा था इस बारे में। फिर एक गणित लगाया और जोड़-बाकी करने लगी थी…

ये जोड़-वाकी, गणित, मीजान, बहुत बाद में सामने आये थे। कहीं गलत हुए थे, कहीं सही। पर हुए थे···

किसके नहीं हुए ?···सबके हुए···कुछ हो चुके थे। कुछ हो रहे थे। कुछ होने थे। किन्तु अजित तब केवल दर्शक था। किसी भी बार नहीं समझा था कि जो हो रहा है, वह एक सायास या अनायास आयोजित जीवन-गणित का हिस्सा है। इससे अधिक कुछ नहीं। वह खोजता था कहानी···पर बिना ये समझे कि कोई कहानी, बिना गणित के होती ही नहीं। जब तक कहानी का गणित समझ न आये, कहानी—कहानी नहीं बनती।

वटनिया से बोले झूठ, फिर झूठ और झूठों का सिलसिला, जिसे अजित वटनिया के ब्याह के बाद भी निबाहे गया था सिर्फ झूठ ही तो नहीं था? एक निश्चित गणित था। किसी मीजान तक पहुंचाने वाला गणित··· अन्तर केवल यही था कि किसी बार जोड़ करके आंकड़े गिने थे और किसी बार आंकड़े गिनकर जोड़ किया था। या हर बार गणित।

पर उन दिनों समझ से बाहर था सब···या कि समझने की कोशिशों का एक दौर था···इन सारे गणितों के बीच कब बदले वक्त ने कुछ नये आंकड़े ला बिठाये थे—पता ही नहीं चला था।···सिर्फ कुछ ऐसी घटनाएं घटने लगी थीं जिन्हें लेकर अजित ने कभी सोचा ही न था···

घटना घटी थी, छोटे बुआ को लेकर। एक दिन अचानक ही अजित से बोला था—*'अब मैं आगे नहीं पढ़ पाऊंगा यार !'*

'क्यों ?' चौंककर पूछा था अजित ने।

'तुझे तो मालूम ही है। मोठा भाऊ कुछ करता-धरता नहीं है।'

'तो तू क्या करेगा-धरेगा ?' अजित ने सवाल किया था, 'अभी पढ़ाई छोड़ देगा तो काम क्या करेगा ? टीचरी ?'

'हा-अ् !···ऐसा ही कुछ करना पड़ेगा या फिर मैं ओवरसियरी की ट्रेनिंग करूंगा।'

'उसमें क्या मिलेगा ?'

'कुछ तो मिलेगा ही।'

'पर तुम लोगों की तो खेती है यार !···धरती है, नौकर-चाकर है

गांव में…'

'अब कुछ नहीं है। बस, धरती है। वहा आई-काका रहेंगे। मोठे भाऊ को विदरीच् ले-के जायेंगे। वो इधर भिघड़ रहा है। विदर गांव मे विसको साथ-सगत ठीक मिल जायेगा तो कुछ सुदरेगा।'

अजित उदास हो गया था। जाहिर था कि मोठे-छोटे अब ज्यादा नहीं मिला करेंगे। छोटे बुआ ने विदा ली थी—'अभी शिवराम दादा हैं ना, बिदर जा रहा हू। काका ने विनको बोल दिया है। कोई नौकरी से लगा देंगे।' फिर वह तेजी से चला गया था। और अजित सोचने लगा था, किस तरह वक्त बिगड गया। भला कब सोचा था अजित, छोटे या मोठे बुआ ने कि एक दिन इस तरह भी कुछ करना होगा। सिरीपाल सिंह ड्राइवर के यहा सोफा आ गया था। उसने अपने मकान को दो मंजिला करवा लिया था। बैठकवाले कमरे मे रेडियो बजता और सुबह-सवेरे भजन आते। केशर मां छज्जे पर बैठकर सुना करती। अजित को अजीब-सा लगता। पंडितजी के जमाने की सारी कुर्सिया टूटने लगी थीं। उनकी लकड़ी पर रंग की जगह कीचट जम गयी थी। पहले हर साल पुताई करवाया करते थे, पर अब मकान दो-तीन साल मे एक बार पुतता…

अजित पूछता—'इस साल भी नहीं पुतवाओगी मां?'

'नहीं।' केशर मां जवाब देती—'इस किराए मे रोटी खाएं या मकान पुतवायें?'

'पुताई में खर्चा ही क्या आएगा?' अजित बहस करता—'कितना बुरा लगता है। दस-बीस रुपये के पीछे गली मे एक अपना ही घर होगा जो अनपुता दिखेगा?'

'अब अपने यहां कमाने वाला कौन है?…तू जिस दिन कमाने लगे, पुतवाना।' बोलते-बोलते केशर मा की आवाज भर्रा जाया करती। इस भर्राहट में जैसे एक रुलायी छिपी होती। उनकी पुतलियों के गिर्द फैली सफेदी ज्यादा ही गहरी हो जाती। लगता कि विगत से जुड़ गयी है।

और क्या अजित खुद भी विगत से नहीं जुड़ जाया करता था?… शायद वह भी। कुछ पलों के लिए लेखक होने का इरादा बहुत दूर, कहीं किसी कोने में धकिल जाया करता। उसकी जगह उभर आता एक प्रश्न-

महाभारत, गीता···बहुत सी पुस्तकों का पाठ जानती हैं। पर उस तुलना मे बाकी तो कुछ भी नही जानती···अजित भी दूसरे बच्चो की तुलना मे ज्यादा ही जानता-पढता और समझता है, पर फिर भी वह उन बच्चों की नजर मे हेय क्यो होने लगा है?···

हेय होने के कारण बहुत दिनो बाद, पर समझ मे आने लगा था···एक दिन पोस्टमास्टर का लड़का महेश बोला था—'अजित, कैरम खेलेगा?'

अजित ने तुरन्त 'हा' कर दी थी। वह उसे अपने कमरे मे ले गया। कैरम बिछायी और रुपये-पैसे खेलने लगे···सफेद सिक्का बीस का, काला, दस का और क्वीन पचास रुपये की। जो, जिस कीमत का सिक्का बटोर सके···तभी मैनपुरी वाली आ पहुची थी। पोस्टमास्टरनी। कुछ अजब-सी गुर्राहट के साथ उसने अजित और फिर अपने बेटे को देखा था। कहा था, 'सुन महेश। जरा बाहर आइयो!' वह धमधमाती कमरे के बाहर आ खड़ी हुई थी। महेश बाहर गया। अजित ने साफ-साफ सुना था···

मैनपुरी वाली कह रही थी—'देख, अब हुआ सो हुआ। आगे कभी इस मरे को तू घर में लाया ना तो कान खींचकर हथेली पर धर दूगी···समझा!'

'इस मरा' यानी अजित!···सुलगकर रह गया था अजित। सहसा विश्वास नही हुआ था। वह कहे गयी थी—'तू पढ़-लिख रहा है···और इन मरो के बाजे बज चुके है। ऐसो की सगत करके क्या छोटा बनेगा?··· यह तो होगा कही चपरासी और तू कम से कम पुरफोसर तो बनेगा!··· तेरा इसका क्या मुकाबला?'

अजित जैसे कोड़े खाकर रह गया। चुपचाप उठा और बाहर निकल आया था। एक नजर सहमते हुए मैनपुरी वाली पर डाली थी फिर कदम बढा दिये। उसकी निगाहों में ऐसी नफरत थी, जैसे मैले टोकरी को देख रही हो?···

ऐसा किसलिए होने लगा है? अजित सोचता ··सोचता रहता। अक्सर हर एकात इसी एक सवाल से उलझा होता···इसीलिए ना कि अब पडितजी यानी अजित के पिता नही है? वह नही हैं तो पैसों का वह दबदबा भी नही है···दबदबा नही है, इसलिए अजित होकर भी नही है। केशर मा रामायण-महाभारत पढ़कर भी अपढ़ है···

एक अजब-सा दर्द उतर आता जिस्म से जहन तक···काश ! अजित पढ सका होता। पर अब ?···अब होंठों पर मूछो की हल्की रेखें लिए हुए क्या मैट्रिक में पढने जाएगा ? न। यह नही हो सकता ! तब क्या होगा ?··

तब ?···अजित जवड़े कस लिया करता। तब सिर्फ अजित होगा ·· उसे कुछ ऐसा करना होगा, जिसके कारण केशर मा की बदली आंख से गली का मौसम बदल जाया करे ! उसे कुछ ऐसा करना होगा, जो चढी निगाहों को पिघला सके !···

पर क्या करना होगा ?···कैसे ?···

जवाब था—'काम !···' कोई काम करना होगा ! काम करने से पैसा मिलेगा। पैसे से यह सब बदलेगा, जो अचानक करवट बदल गया है ··

मगर काम ?···अजित को महसूस होता कि उसके भीतर की आग अचानक ही राख में बदल गयी है। धुआं छोड़ती हुई राख !·· काम क्या मिल सकता है उस जैसे आदमी को ?

अनायास ही अजित के गणित में कब काम का आकडा आ बैठा था, उसे नही मालूम। सिर्फ इतना मालूम था कि इस काम के आंकडे ने उसके गणित का मीजान अगर गलत नही किया है तो कही न कहीं से गड़बड़ा जरूर दिया है ··

एक बार फिर से नयी गिनती के साथ शुरू हुआ था वह · काम करते हुए उसे लेखक बनना होगा ! अब न तो केशर मा की पैसोंवाली पेटी देखते हुए कोई रस जनमता है मन मे, न ही फिल्म देखते हुए···हर पल याद रहता है कि एक उसी का घर है, जो गली मे अनपुता पड़ा है···केशर मा उधार के रेडियो से भजन सुनती है ··एक टटपूंजिया पोस्टमास्टरनी पडित जी के बेटे और अपने बेटे के बीच तुलना करते हुए उसे होनेवाला चपरासी कह चुकी है···सरदार मराठे गली में उपस्थित होते हुए भी अचानक अनुपस्थित समझे जाने लगे हैं··

एक अजित ने ही सोचा था क्या ?···लगता है, सभी ने कुछ इसी

तरह सोचा था। बल्कि यही सोचा था। सिर्फ गली-घरों में ही क्यों, शायद पूरे देश मे यही सोचा जा रहा था···सिर्फ और सिर्फ यही !···

तरक्की!···समाजवाद !···गरीबी-अमीरी बराबर कर देना !··· महाराजबाडे पर आये दिन भाषण होते थे। किसी बार तख्त पर तख्त लगाये हुए मिनिस्टर साहब भाषण करते—राजा, जमीदार, जागीरदार खत्म कर दिये गए हैं !···छोटे-बडे का भेद खत्म !···अब न कोई ऊंचा है न नीचा। समाजवाद आ रहा है···सब बराबर हो जायेंगे। हो भी रहे है। भाइयो, आप को यह जानकर खुशी होगी कि साक्षरता बढ़ रही है। सरकार नयी-नयी जगहे निकाल रही है। नयी-नयी किताबें पढ़ा रही है। नया-नया ज्ञान दे रही है ! अब सबके पास रोटी होगी, रोजी होगी, काम होगा। घर-घर रेडियो बजेंगे, खुशियां नाचेंगी और इन्सान तरक्की-दर-तरक्की करता जाएगा !···

गाधीजी की जै होती, नेहरूजी जिन्दाबाद किए जाते !···और अन्त मे घासीराम साहब की जै बोली जाती। अखबार के हाकर हुआ करते थे कभी। अजित को एक बार कलम बनर्जी ने बताया था—'यह जो घासीराम है ना, अपने ऐजुकेशन मिनिस्टर, यह पहले दानोआली में अखबार लगाया करते थे। गाधी जी के आन्दोलन मे इन्हे पुलिस ने पीट दिया था करफ्यू टाइम मे अखबार लगा रहे थे। बस, अब मिनिस्टर हो गए है। अखबार सुना रहे है !'

अजित मुसकराकर रह गया था। इसके अलावा और बस मे भी क्या है ? उसने सोचा था, जो बस मे है, वह नेहरूजी के बस में है । और नेहरूजी के बस मे भी क्या है। घासीराम या घासीरामो के बस मे है।

कुल मिलाकर यह कि समाज का आमूल-चूल परिवर्तन हो रहा था। पिछले सारे की चूल-चूल हिलादी गयी थी और अगले का मूल तय नही था, तय सिर्फ यह था कि समाजवाद लाया जाना है।

एक बार राजनाथ मास्टर साहब ने कहा था—'कैसे आयेगा समाजवाद ?'

अजित ने कहा था—'मुझे मालूम नही सर !'

मिन्नी बोली थी—'समाजवाद को भी कहां मालूम है कि कैसे

आयेगा ?'

और मायादेवी ने परेशान होकर सवाल किया था—'यह समावाद होता क्या है ?'

बगल में बैठे कुन्दन दरजी ने कहा था—'गांधीवाद का चचेरा भाई होता है, बहिनजी !'

इसी तरह की बातें होती, पर लोगों को लगता कि समाजवाद है जरूर कुछ। एक बार बदनसिंह ने कहा था—'हम लोग उतनी ऊंची बात समझते नहीं हैं। असल में ये समाजवाद कोई ऐसी चीज है, जिसके आने पर ड्रायवर, कम्पाउन्डर, जमादार, जमींदार सब बराबर हो जायेंगे।...'

हा-हा-हा करके हंसा था मोठे बुआ। बोला था—'क्या ऊंची बात कही है बदनसिंह ?...भला समाजवाद का मतलब यह होता है ?'

'तब क्या होता है ?' बदनसिंह ने कुछ भुनभुनाकर सवाल किया था। उसे महसूस हुआ था कि मोठे जैसा आवारा आदमी उसे सार्वजनिक रूप से ज्ञानदान की चेष्टा कर रहा है।

मोठे ने कहा था—'देखो, समाजवाद यानी सब एक से।'

'और मैं क्या कह रहा हूं ?' बदनसिंह ने चिढ़कर पूछा था।

'तुम वह नहीं कह रहे हो जो मैं बोलता हूं।' मोठे ने जवाब दिया था—'मैं बोलता हूं कि समाजवाद माने ये कि मैं तुम्हारी जेब काटूंगा, तुम दूसरे की जेब काटोगे, दूसरा तीसरे की जेब काटेगा...अन, जेब काटने का ये लाइन तब तलक चलेगा, जब तक कि दुनिया में कोई जेब बाकी रहेगी—समझा !...'

'क्या हौपलेस बात करते हो !' बदनसिंह चला गया था।

'अरे, सीधा-सादा बात समझाया मैं इसकूं तो समजा नहीं ?' हैरत से मोठे ने जवाब दिया था—अजित का कन्धा थपथपाकर समझाने लगा था—'अपून को तो समज आता है, पंडित कि समाजवाद एक ऐसा गोरमिन्ट टाइम होयेगा जिसमें एक जेबकट को दूसरा जेबकट पकड़ेगा। जब सब एक-दूसरे का जेब काटता नजर आयेगा तो सब बरोब्बर नहीं हो जायेगा—येईच् समाजवाद। क्या समझा !'

हसकर रह गया था अजित। मोठे बुआ बात समझता, अपनी तरह था—कोई और वक्त होता तो अजित शायद विरोध करता, क्या बेसिरपैर के अर्थ निकालते हो, पर लगा था कि अपनी तरह सही, पर अर्थ गलत नही कर रहा है मोठे बुआ। उसे भी लगता है कि मच पर परिभाषित समाजवाद एक-दूसरे को लूटने की गाधीवादी पद्धति का नाम है।···कितना कुछ तो देख रहा है वह? ऐजुकेशन मिनिस्टर घासीराम कोर्स मे नयी किताबे चलवाने का पैसा प्रकाशकों से खा गये। प्रकाशक लेखकों से सस्ते मे किताब लिखवाकर पैसा खा गये। लेखको ने अपने नाम दिये और किराये से जरूरतमन्द अध्यापकों को लगाकर किताबें लिखवादी।···जेब-कटी के बाद जेबकटी का एक खुशफहमी भरा व्यापार···सब सुखी···सब आनदित! एकदम समाजवाद!

और फिर एक ऐजुकेशन में ही समाजवाद आया हो, ऐसा तो नही है। समाजवाद चतुर्मुखी आ रहा है···जहा-जहां नही आ पा रहा था, लाया जा रहा है···जब सभी एक से, एक मनोवृत्ति, एक ईमान, एक निष्कर्षवाले हो जायेगे तो फिर फर्क कहां रहा?···वही समाजवाद!

सोचकर चिढ भी होती, दुख भी और बेबस हसी भी आती। पर किसी के वश में कुछ नही।

सारे दिन मटरगश्ती करके अजित घर लौटा तो सीढिया चढते ही बटनिया ने बताया था—'तुझे बड़ी देर से अम्मा पूछ रही है।'

'क्यों?' अजित चौका था। ऐसी तो कोई बात नही हुई, जिसके लिए अजित को लेकर पूछा जाये?···अजित को लगा था कि इधर-उधर पैसे रखकर भूल गयी होंगी और अजित से जवाबतलबी करेंगी कि पैसे कहा गये?'

पर बात वह नही थी। केशर मा ने कहा था—'तू नीचेवाली बैठक से अपना सामान हटा ले···बटनिया भी साथ दे देगी।'

'वह क्यों?'

'बैठक किराये पर दे दी है। कल से किरायेदार आ जायेगा।'

'कौन ?' अजित ने कुछ चिढ़कर पूछा था। बैठक में पिता का सामान रहा करता था। अब वह नहीं है तो क्या उनकी जगह भी मिटा दी जायेगी ? अच्छा नहीं लगा था उसे।

'अरे, चालीस रुपया महीना मिलेगा।' केशर मां ने कहा था, 'मोटर कंपनी है ना, उसके कोई बड़े अफसर है। बदनसिंह लाया था उन्हें। आदमी यों भले लगे। गुजराती बाम्हन हैं। इन्दौर के।'

अजित ने कुछ नहीं कहा था। चालीस रुपये का महत्त्व वह भी जानता है। बोला था—'हटाये लेता हूं।'

बटनिया और उसने मिलकर बारह बजे के बाद तक सामान ढोया था। केशर मां बोली थी, 'सुबह-सबेरे ही आ जायेंगे वह। कमरा साफ मिलना चाहिए। अजित ऊपर आकर मुंह-हाथ साफ करता रहा था और थोड़ी देर बाद बटनिया कमरा साफ करके आ पहुंची थी। 'रोटी परोस दूं ?'

'हां।' अजित चारपाई में धंस गया था। बीड़ी सुलगा ली। चालीस रुपये !···ऐसे कितने चालीसों रुपये अजित ने यूं ही उड़ाये होंगे ? वह सोचने लगा था। आज ऐसे ही चालीस रुपये के लिए पिता के बैठने की जगह मिटानी पड़ी है। मन भारी हो आया था। लगा था कि फिर से वही प्रश्नचिह्न उभर आए हैं···।

बटनिया ने थाली ला रखी। अजित ने गंभीर भाव से ग्रास तोड़ा और मुंह में डाल लिया। सहसा ऐंठन से मुंह बिगड़ गया उसका। पूछा, 'यह कैसी सब्जी है ?···न नमक, न मिर्च ?···रोटी पर घी भी नहीं ?'

बटनिया लज्जा से भरकर नीचे देखने लगी। बुदबुदायी, 'भूल गया तू ?'

अजित ने चिढ़ते हुए सवाल किया—'क्या ?'

'वही, पिराश्चित !'

बुझ गया अजित। कुछ कहे, तभी बटनिया बोल पड़ी।

'संग-संग नहीं करेंगे तो पाप कैसे मिटेगा ?'

'हूं ?···' अजित ने भिनभिनाकर जवाब दिया—'हां, ठीक है। ठीक

ही है।' वड़ी बेबसी से चुपचाप ग्रास तोड़ा और सब्जी लगाकर इस तरह खाने लगा जैसे घास खा रहा हो। जैसे-तैसे खा सका था।

बटनिया समझ गयी। पूछा, 'पेट नहीं भरा ना तेरा ?'

'हां।' न चाहते हुए भी चिढ़कर बोल गया अजित। क्या मालूम था कि ये प्रायश्चित्त उसके अपने गले भी आ पड़ेगा। यह सोचकर और भी परेशान हुआ कि *बटनिया वह सिलसिला पूरे नौ दिन चलायेगी*···बेवकूफ कहीं की ! मन ही मन अजित ने उसे कोसा।

बरतन समेटते हुए वह कहे गयी—'मुझे भी रोटी अच्छी नहीं लगी, पर क्या करें···पिराचित तो करना ही है !···' अजित ने उत्तर नहीं दिया था। वह चली गयी।

वह बीड़ी के कश लेने लगा था···कल नया किरायेदार आ रहा है। कैसा होगा ? अनायास ही सोचने लगा था वह। केशर मां ने बतलाया था—मोटर कम्पनी में अफसर है। कौन-सी मोटर कम्पनी ?···कोई प्रायवेट या रोडवेज ?

बटनिया आ पहुंची थी, 'सौंफ खायेगा ?'

'हूं।' उसने हथेली फैला दी।

बटनिया ने चुटकी भर सौंफ उसकी हथेली पर रखी। अनायास ही अजित उसकी गोरी गुलाबी हथेली को देखने लगा था···जिस्म में उसने सनसनी महसूस की···

वह जाने के लिए मुड़ी।

'सुन।'

थम गयी, 'हूं ?'

अजित बिस्तरे पर उठकर बैठ गया। सांस कुछ तेज हुई, 'इधर आ !'

'नहीं !' उसने एकदम लजाकर जवाब दिया और फिर अजित कुछ कह सके, इसके पूर्व ही तेजी से बाहर निकल गयी।

अजित भुनभुनाया-सा बैठा रह गया···देर तक सूझा ही नहीं था कि क्या करे ? फिर चुपचाप, 'कहानी' पत्रिका उठायी और पढ़ने लगा। यह नयी पत्रिका निकली है। नये कहानी लिखने वाले छपते हैं इसमें। जिसकी छप जाये, उसे महत्त्व मिलता है।

सुबह जब घर से निकला, तब तक नया किरायेदार नहीं आया था।

सुरगो के घर चेला साईं आवाज लगा रहा था—'भैणजी ? भैणजी ?'

अजित निकल जाना चाहता था, याद है कि सुरगो का दिया वायदा गड़बड़ा गया होगा और उस दिन सिन्धी-सुरगो के बीच अजित पड़ गया था। ऐसे गरदन डालकर निकला, जैसे चेलाराम से उसने उधार ले रखा हो, पर चेला ने रोक दिया, 'अबी राम-राम तो लेओ ना साईं ?'

'राम-राम !' अजित थम गया।

'भैणजी-ई-ई···!' चेला ने पुनः पुकार लगाई और अजित से कहा, 'किसी दिन हम बोला था नी अजित भइया, ये बाई का जबान खाली जायेंगा। ओ हो गया ! कल का वादा था···आई नहीं।'

अजित कुछ कहे, तभी सुरगो आ खड़ी हुई। लड़की गोद में रो रही थी। नाक चाटती हुई। सुरगो ने आंचल से उसकी नाक पोंछी, घिघियाते हुए कहा था—'आज स्याम को चुनमुन के बापू आ रहे हैं···वैसे ही तुम्हारा हिसाब भिजवा दूंगी !'

अजित को खुशी हुई। कम्पाउन्डर आ रहा है। अच्छा हुआ। सुरगो के क्लेश छट जायेंगे। चेला साईं मुड़ गया था, 'अच्छा है बाई। अच्छा है। भैंड़ा हमको भी बड़ी खुशी हुआ। कल तुम नहीं आयी तो पूछने आया था—वड़ी क्या हुआ ? बच्चा लोक की तबीयत तो ठीक है ना ?'

'सब राजी-खुशी है साईं !' सुरगो ने चहकते स्वर में जवाब दिया। चेला मुड़ गया था, 'अच्छा है। अच्छा है !···'

अजित को भी बड़ी शान्ति मिली। चल पड़ा। मोड़ पर रेशमा, बैजापुरकर, अनसूयाबाई और बंडू खड़े हुए थे। बंडू का सिर एक खास तरह घुटा होता है। चाद पर बालों का एक गोलाकार चंदा बनवा दिया जाता है। पंडिताई चुटिया। बंडू का जनेऊ बड़ी छोटी उम्र में हो गया था। बनियाइन पहने रहता है और नीचे खाकी निकर। उम्र यही कोई

पन्द्रह-सोलह साल की है। पैर नंगे। खुद बैजापुरकर भी नंगे पैर ही रहता है। बिवाइयों की जगह काली, गंदली लाइनें दिखती हैं। अनसूयाबाई टायरों की चप्पल पहनती है। लागवाली साड़ी से शरीर पर दो बड़े-बड़े हंडे नजर आते है। बंडू के अण्णा से कुछ लम्बी है, सेहतमन्द भी। केशर मां कहती हैं—'लम्बी औरत, लम्बे भाग !...'

पहले काफी सोचता था अजित—क्या सचमुच ही लम्बी पत्नी होने से आदमी के लम्बे भाग होते हैं? पर अनसूयाबाई की लम्बाई ने जाहिर कर दिया है कि झूठ है। बंडू के अण्णा का भाग न लम्बा है न चौड़ा... बल्कि उस भाग का कोई साइज ही नजर नही आता। कभी वह दलिया का कटोरा होता है, कभी साखर की छोटी कटोरी। यही है भाग का साइज। पर केशर मा हैं कि अनसूयाबाई को साइज समझा रही हैं। बकवास !...

रेशमा कह रही थी, 'कित्ता खरच आयेगा?'

'अब पत्ता तो अपून को नही मालूम, पर आयेंगा कोई पांच-सात रुपये। ...' बडू का अण्णा—शकरराव बैजापुरकर बतला रहा था।

'करवा लो !...'

अजित थम गया। क्या करवा लो?...किस चीज का खर्च? ये दोनों शैतान पति-पत्नी क्या कुछ सिखा-पढ़ा रहे हैं रेशमा को? अनचाहे ही पूछ लिया था, 'क्या करवा रही हो भाभी?'

अनसूया और शंकरराव ने कुछ मुह बिगाड़कर अजित को देखा। जल्दी-जल्दी पोटली उठाने लगे। काफी बड़े आकार की पोटली।

रेशमा ने कहा था, 'कुछ नही लाला !...कल शिवरात्री है ना, सोचती थी भगवानजी के छत्तर सिंगार पर उजलाहट करवा लू?'

शकरराव चल पड़ा था। पीछे-पीछे पोटली उठाये बंडू। अजित चौंका। शंकर भगवान के छत्र-सिंगार को उजलवाने जा रहे हैं दोनों। जाने क्यों लगा था कि कोई शरारत कर दें...पर मन मसोस लिया। बहुत धूर्त है दोनों, पर इतने नही कि भगवान के साथ भी दांव खेल जाएं।

रेशमा भीतर चली गयी थी। अजित आगे बढ गया।

अनसूयाबाई ने कहा था—'तू भी आने का अजित। काल रात्री

भगवान का अभिषेक करने का !...'

'अच्छा !'

मिन्नी के घर के सामने से निकलते में अनचाहे ही यमना पड़ा। गैलरी में खड़ी मिन्नी ने पुकार लिया था—'एए अजित !...जरा ऊपर आना !'

अजित का मन हुआ था इनकार करदे, पर वैसा न करके ऊपर जा पहुंचा। मिन्नी अकेली थी घर मे। पूछा, 'चाय बनाऊं ?'

'नही।' न चाहते हुए भी अजित ने कहा। अभी रुकेगा और कुछ कहासुनी हो जाएगी इससे। व्यर्थ ही मूड खराब नही करना चाहता। पूछा, 'काम क्या है, वह बता।'

मिन्नी ने उसे देखा, कुछ सोच में पड़ गयी, जैसे ऊहापोह में हो—अजित से कहे या नही ? कोई घोटाले का काम है। अजित ने सोचा फिर कुरेद दिया, 'बोल।'

'देख अजित...तुझसे कुछ भी नही छुपा।...पर ये काम बड़ा जरूरी है। न हुआ तो...' वह हिचकते-हिचकते कहे गयी—'मेरा बड़ा नुकसान होगा...'

'ऐसा क्या काम है ?'

'ऐसा ही है।' सिर झुकाकर बोली थी वह, 'तुझे आगरे जाना होगा।'

'आगरे ?' अजित परेशान हो उठा।

'हा।'

'ऐसा क्या है...?'

'कुछ है।' वह लगभग हाफती हुई बोली थी, 'ऐसा ही कुछ है। एक चीज लानी है वहां से।'

'ऐसी क्या चीज है, जो यहा नही मिलती और आगरे से लानी होगी ?'

'ऐसी ही चीज है।' उसकी आवाज लडखडाने-सी लगी थी। बड़ी कठिनाई से कह सकी थी वह, 'कुछ दवाएं हैं...'

'यहा क्या दवाओं की दुकानें नही हैं ?' अजित ने सवाल किया था।

'हैं, पर बिना जान-पहचान के वह दवा मिल नहीं सकती और यहां मेरी कोई पहचान नहीं है···आगरे में है। एक चिट्ठी भी दूंगी, वह ले जाना !' वह बड़बड़ाए गयी, अजित ने देखा उसके चेहरे पर एक वेरौशन आसमान बिखरा हुआ था···उदास और फीका ! ऐसा क्यों ?···अचानक उसे मोठे बुआ की एक बात याद हो आयी थी। बोला था—'पंडित ! आजकल ऐसी-ऐसी दवाएं आती हैं कि चाहो तो बच्चा होने दो, चाहो तो रोक दो !···स्साली बदमाश औरत लोक इनको काम में लाती हैं।···'

अजित ने कहा था, 'तुम तो ऐसे कह रहे हो जैसे गवर्नमेंट सोती रहती है और ऐसी दवाएं बिकती रहती है ?···'

'मजा तो ये ही है कि ये जो स्साली गोरमिन्ट है ना, इसीने बिन दवाओं को छोड छुट्टी दी है। बोलते हैं फेमिली प्लानिंग कर रहे हैं। फेमिली प्लानिंग, माने ज्यादा बच्चा पैदा होने से रोकना। फालतूच् में भीड़ बढ़ती है और स्साला राशन कम पड़ जाता है। इसकी खातिर सरकार ने फेमिली प्लानिंग चलाया है। यानी जी चाहो तो बच्चा कर दो, जी चाहो तो बच्चा रोक दो !···इसकी जो दवाएं निकली हैं, बिससे कसम खाकर बदमास मझा मारते है !' फिर वह हंसने लगा था।

अजित टकटकी बांधे हुए मिन्नी को देखने लगा था···वह नजरें झुकाए हुए थी। ऐसी ही किसी दवा के चक्कर में है शायद। अजित के दिमाग में घंटियां बजने लगी थी। सहसा गंभीर होकर पूछा था उसने, 'मैं चला तो जाऊंगा आगरे, पर सच बता मिन्नी, क्या गडबड है ?' उसकी आंखों में सन्देह और धिक्कार आ बैठे थे···मिन्नी ने एक नजर देखा था, ज्यादा ही बुझ गयी थी।

'बता ?' अजित ने उसे कुरेदा था। जाने क्यों उसे गुस्सा आने लगा था। एक पल के लिए सोचा भी था उसने—किसलिए गुस्सा आता है मिन्नी पर ? ··लगती क्या है अजित की ?···पर गुस्सा हर तर्क से परे बढता ही गया···इतना बढ़ा कि उसने झपटकर मिन्नी की दोनों बांहे जकड ली। जबडे भींचे और गुर्रा पडा, 'बोलती क्यों नहीं, यह सब क्या चक्कर है ? कैसी दवाएं है, जो यहां मिलकर भी नहीं मिलेंगी ? सिर्फ पहचान की जगह से ही मिलेंगी ?···परिचय की चिट्ठी लगेगी ?···'

उसकी आंखें छलछला आयीं। कुछ डर, सहम और शर्म से उसने अजित को देखा था, फिर फुसफुसा पड़ी थी—'अब तुझसे कुछ भी नहीं छिपाऊंगी...यह, यह अबार्शन की दवाएं है !···मैं—मैं दो महीने के गर्भ से हूं।'

'छिः !····' घृणा से एक जोरदार झटका देकर उसने पलंग पर धकेल दिया था उसे, 'तू—तू बेशर्म है !···मैं तो सोच ही नहीं सकता मिन्नी, तू···ओफ्फोह !' जोर-जोर से दांत पीसने लगा था अजित। सिर दाएं-बाएं हिलाता हुआ गुरगुराया था, 'तुझे क्या कहूं ?····'

वह रोने लगी थी···

'यह सब···यह सब तूने सिलसिला बना लिया है—ऐं ?' अजित उसी तरह बड़बड़ाये जा रहा था, 'राम-राम !····'

वह सिसक रही थी···

झुंझलाहट और क्रोध से भरा अजित थोड़ी देर खड़ा रहा था, फिर सहसा मुड़ गया था। जानता था कि वह रोक नहीं सकेगी···अब अजित से उस तरह की बात करने का साहस नहीं जुटेगा, शब्द नहीं होंगे···

आखिर कह ही कैसे गयी मिन्नी ?···उसने हैरत और गुस्से से सोचा था। अजित से वैसी बात !···वह अपने पर ही गुस्सा हो आया था। सिर्फ गुस्सा। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

पर अजित गुस्सा क्यों हो रहा है ? किसलिए ?···मिन्नी से उसका रिश्ता ? कुछ भी तो नहीं !

फिर भी गुस्सा !

सीढ़ियां उतरकर एकदम नीचे आ पहुंचा था वह। क्यों, कहां, किधर जा रहा है, क्रोध मे यह भी तय नहीं। बस, अजब-से मशीनी ढंग से चलता चला गया था···व्यर्थ, निरुद्देश्य !

यह दूसरी बार हुआ। उसने सोचा था। मिन्नी सब कुछ जानते हुए वही क्यों किए जा रही है ? क्या वह नहीं समझ पा रही होगी कि एक

दिन आता है, जब सारा लड़कीपन चुक जाता है···मातृत्व-हत्या का यह घिनौना पाप शरीर को जितना सालता है, उससे कहीं ज्यादा आत्मा को साल जाता है ?···

मिन्नी, उससे कहीं ज्यादा जानती होगी। स्वयं भोगी जो है। फिर भी ?···क्यों ?

अजित ने भूल की। बजाय गाली-गुत्ते करने के, पूछना था—'ऐसा क्यों कर रही है तू ? कौन-सी लाचारी है ? तू तो ऐसी कभी थी नहीं, फिर···?' अजित अपने ही भीतर रोने को हो आया था।

मिन्नी के चेहरे से उम्र की सारी दमक इस तरह उतरने लगी है, जैसे बर्तन से कलई उतरती है। कितनी-कितनी जगहों पर फीकापन, बदरंग उखड़ी चमक और धब्बे। ये धब्बे गहराते जाएंगे। ब्रह्मचर्य एक तेज होता है। पढ़ा भी है, सुना भी है। सुनहरी को देखते हुए लगता भी है कि हां होता है। अजित के देखते-देखते सुनहरी के चेहरे की सारी आब धुलने लगी है। धीरे-धीरे ही सही, धुलती जा रही है। एक दिन आयगा कि ऊबड़-खाबड़ हो जायेगी। बिना उम्र बूढ़ी-सी लगने लगी है। सुरगो की हरसाल पैदा होती औलादों के बाद धीमे-धीमे पनियाता जाता सुरगो का चेहरा अजित देखता रहा है···हर बार लगता है सौ में से पन्द्रह की गिनती कम होती जा रही है। पहले पिचासी, फिर सत्तर, फिर पचपन, फिर चालीस···एक दिन आएगा शून्य रह जाएगा !

क्या यह सब मिन्नी नहीं जानती ?

अजित से ज्यादा ही जानती होगी।

तब ?···

गन्दी !···स्साली !···अजित अपने ही भीतर गालियां उबालने लगा था। देर बाद गालियों का सिलसिला बन्द हो जाता है और दिमाग एक सतह पर आकर शान्त होने लगता है···

मिन्नी मन से फिर भी नहीं हटती। सिसकियां भर-भरकर रो रही थी। कितनी बार अजित के कुरेदने पर नहीं भड़की है ? हर बार अजित को, अपने आपको झुठलाती रही, और आज अचानक ही सही, पर कैसे टूटकर बिखर पड़ी ?···एकदम पारे की तरह। बूंद-बूंद। बोली थी—

'अब तुझसे कुछ भी नहीं छिपाऊंगी···यह अबार्शन की दवाएं है !···' ··

बस, अजित एकदम से बकने लगा था। ऐसे, जैसे मिन्नी उसकी ब्याहता औरत हो ! ऐसा क्यों हुआ ?···

और अजित को लगा था कि उसके मन में मिन्नी के लिए कहीं कुछ है। यह कुछ समझ मे नही आता। पर है। कुछ ऐसा ही बटनिया को लेकर है। यही है, जो मिन्नी के प्रति अजित को बौखला देता है, गालिया बकवाता है। पीटने का मन करता है। और यही कुछ है, जो बटनिया को लेकर उदास हो जाता है। दुख से भर उठता है या फिर चिढ़ जाता है।

नही ! बकवास है सब !···कुछ भी नही है। क्यों होना चाहिए ?···

इसके बावजूद अजित ने महसूस किया जैसे अपने पर ही झूठ लाद रहा है। व्यर्थ ही अपने आपको पुडककर दवाये रखना चाहता है।

वह महाराजबाड़े पर आ गया था। कब, जयाजी पार्क की सीढियों पर बैठकर बीडी सुलगा ली थी मालूम ही नही हुआ। आखों ने यान्त्रिक ढंग से टाउनहाल भी देखा होगा, बैंक की इमारत भी, विक्टोरिया मार्केट भी···पर देखकर भी अनदेखा। सिर्फ दिखती है मिन्नी। रोती, सिसकती, सुबकती हुई बेबस मिन्नी···

अजित की गालियों और धिक्कार पर सिर्फ रोती रह गयी थी···

अजित अनायास ही उठ पड़ा था। बहुत विश्वास से कहा होगा उसने। जब कोई राह नही बची होगी, तब अजित को सामने पाया होगा उसने। वही एक विश्वसनीय। इस विश्वास की जगह गालियां बककर चला आया अजित।

और अजित को लगा था कि आगरे जाना होगा। मिन्नी की खातिर नही, शायद अपनी खातिर !···रोती हुई मिन्नी को सह नही पाएगा। एक पल के लिए महसूस हुआ था, वही मिन्नी उसके करीब है। बचपनवाली, छोटी-सी मिन्नी। बस्ता लटकाकर अजित राजनाथ मास्टर साहब के यहा पढने पहुचा है। सहमा, डरा-डरा-सा। मिन्नी बरामदे मे ही है। किधर है, दिखती नही। बस, पुकारकर सूचना देती है—'आ-आ अजित !··· आज मा नही हैं। पिताजी भी नही···'

- 'कहा गए ?'

'बाजार। देर से आएगे।' मिन्नी का जवाब, फिर वह उसके सामने आ जाती है, कहती है—'कह गए है कि तुझे रोक दूं।'

अजित को बड़ी राहत मिलती है। बस्ता एक ओर रखकर उसके पास जा पहुंचता है। कहता है—'यह तो बड़ा मजा रहा!...' गैलरी में आ जाता है। बगल के घर वाले चबूतरे पर रहनेवाले एक प्रौढ उम्र के जोडे पर निगाहें जा ठहरती है। अजित ने कई बार देखा है। पति दफ्तर से लौटता है तो पत्नी थककर बाहर चारपाई पर आ बैठे पति को एक प्याला चाय लाकर देती है...कैसे अजब-सी भीगी-भीगी नजरों से देखती है पति की तरफ? और कुछ पति भी अजीब तरह...

वह प्याला धीमे-धीमे सिप करता है। घरवाली धरती पर बैठ रहती है। यहा-वहा की बातें करने लगते है। रोज का नियम। इस पल भी वही। अजित ने पुकार लिया था मिन्नी को, 'ऐ—य् मिन्नी! देख?'

वह आ पहुची है। वही कुछ देखती है। पूछती है—'क्या?'

अजित उत्साहित स्वर में कहता है, 'वह देख। घरवाली घरवाले को चाय कैसे मजे से पिलाती है...'

दोनों देखते है। मिन्नी अजित को देखकर लजा जाती है फिर कहती है, 'चल, खेलेंगे!...' इसके बाद अजित को चारपाई पर बिठाल देती है, कहती है, 'मैं अभी आती हूं।' दौडी हुई भीतर चली जाती है।

देर तक ऊवता हुआ अजित बैठा रहता है फिर जब झल्लाकर उसे पुकारना चाहता है, तभी वह आती दीखती है। हाथ मे प्याला, धीमे-धीमे मुस्कराती हुई...अजित के पास आकर होंठ काटती है। प्याला उसकी ओर बढाती है। अजित भौचक्का-सा देखता है। वह कुछ गुस्से से कहती है—'ले ना?'

अजित प्याला लेता है।

'अब पी!' वह एकदम से धरती पर बैठ जाती है। उसी तरह, जिस तरह वह औरत बैठ गयी थी।

सब कुछ जान-समझकर अजित उस मर्द जैसा रोल निवाहने लगता है। खुश। बहुत देर इस अभिनय से खेलते है। सहसा जोर से हस पडते है। मिन्नी पूछती है—'कैसा मजा आया?'

'हां-अं !···बहुत !'

कैसे-कैसे खेल खेलते थे वे। थोड़ी देर के लिए घरवाला-घरवाली बन जाते थे।···अजित यादों की लगातार बूंदों से नहाया हुआ अपने भीतर ही सिहर गया है···

यही मिन्नी सुबक रही है···बड़ी मुसीबत आ पड़ी उस पर। अजित को आगरा जाना ही होगा। वह जल्दी-जल्दी लौट पड़ा था।

मिन्नी घर पर ही थी, पर अकेली नहीं। इस बीच मास्साब और मायादेवी आ पहुंचे थे। सीढ़ियों में आवाजें सुनी थीं अजित ने। मिन्नी की ही आवाज थी। कह रही है—'मैं जाऊंगी। जरूर जाऊंगी !···'

'अकेली ?' मायादेवी की घबरायी हुई आवाज।

'हां !'

'पागल तो नहीं हो गयी तू ?' मास्साब कह रहे हैं, 'मालूम है जमाना···'

'मैं कोई बच्ची नहीं हूं।'

'हम यहां कहते हैं, पर इत्ती समझदार भी नहीं है कि अकेली-दुकेली आगरा-बम्बई घूमने लगे। लड़की की जात है। कुछ औंधा-सीधा हो गया तो सब हमें ही नाम धरेंगे !' मायादेवी भुनभुनाती हैं।

इसका मतलब है कि मिन्नी ने खुद आगरा जाना तय किया है ? अजित थमकर रह गया है। सीढ़ियों में।

'औंधा-सीधा ?···अब क्या बचा है औंधा-सीधा होने के लिए ?···' वह रुआंसी हो उठी है—'यह तुम कह रही हो मम्मी ? तुम ?···' उसने ऐसे कहा है जैसे थूक दिया हो मायादेवी के चेहरे पर।

'चार पैसे कमाने लगी है तो इसका मतलब यह नहीं कि तू मुंहजोरी करेगी ?' मायादेवी चीखी हैं।

'मिन्नी, बेटी जरा सोच तो···' मास्टरजी की सकपकाहट, विनती, लड़खड़ाता स्वर···

'सब सोच चुकी हूं···सब !'

'ठीक है फिर मर हमारी तरफ से ! भाड़ में जा ! आवारा कहीं की !' मायादेवी की गुर्राहट। एक तरह चीख।

'ठीक है माया, फिर मैं इसके साथ चला जाता हूं···' मास्साब का हारा हुआ स्वर···

'नहीं ! मैं किसी को साथ नहीं ले जाऊंगी !' मिन्नी की गर्जना।

'यानी तू एकदम आजाद हो गयी है, क्यों ?'

'कुछ भी समझ लो, पर मैं···मैं बच्ची नहीं हूं। और आगरा कोई सात समुंदर पार भी नहीं है। सारी दुनिया जा रही है।

'ठहरेगी कहां ?'

'होटल में !···'

'होटल में ?···तू ?···लड़की की जात ?···अकेली !' मायादेवी ने अचानक एक आवाज़ पैदा की है—चटाक् !···

लड़खड़ा जाता है अजित। मिन्नी को मारा ! ठीक उसी तरह, जिस तरह अजित एक दिन जया मौसी को···ऐसी ही आवाज हुई थी !

एकदम ऊपर जा पहुंचता है। नहीं !···मिन्नी को नहीं मारा है। खुद ही माथा पीट लिया है मायादेवी ने। रुआंसी आवाज़ में कहे जाती है—'भाग हमारे !···अब बस, यही बचा है कि किसी दिन लोग अंगुली उठायें··· लड़की हाथ से निकाल दी। मनमरजी की मालिक···!' पर सहसा चुप हो जाती हैं। अजित पर नजर जा ठहरी है···मास्साब भीतर चले गए हैं। मिन्नी नफरत से अजित को देखती है। अपने कमरे में समा जाती है।

मायादेवी बड़बड़ाए जा रही हैं, 'बस ! अब, सब खतम !···कैसा जमाना आया ? लड़की की जात और ये मुहज़ोरी !···ये हिम्मत !···जी होता है पैर पै पैर रखकर चीर दूं !' फिर आवाज गुम गयी है उनकी··· भीतरी कमरे में गुम हो गयी हैं।

अजित बरामदे में अकेला।

मिन्नी उससे गुस्सा है। वह सहमता हुआ मिन्नी वाले कमरे में पहुंचता है। वह देखती है। व्यर्थ ही किताबें वहां से यहां रखने लगती है। मुंह फूला हुआ।

एक पल की खामोशी के बाद अजित बुदबुदाकर पूछता है, 'तू अकेली आगरा जा रही है ?'

'हां ! जा रही हूं···तुझसे मतलब ?' वह एकदम जैसे चीख पड़ी है।

'यह···यह ठीक रहेगा ?'

'हू आर यू टु से दिस ?' वह जोर से चीखती है।

'मैं अंगरेजी नहीं जानता !'

'नहीं जानता तो जा !···यहां क्या करने आया है ?'

'बतलाऊं क्या करने आया हूं ?' अजित एकदम चिढ़ गया है।

'क्या करेगा तू ?···ऍं, क्या करेगा ?' वह सीना फुलाकर उसके सामने आ खड़ी होती है।

भारी, उभरी छातियां, गुस्से से तमतमाया बदन, फूली हुई सांस··· जबड़े कस लेता है अजित, बेशर्म कहीं की। अजित अच्छी तरह बात कर रहा है और वह है कि अकड़ी जा रही है। 'एक तो लुच्चपन करती है, ऊपर से···' एकदम तिलमिलाकर इधर-उधर देखता है, फिर गुरगुराकर पूछता है—'बतलाऊं ?'

'हां-हां, बतला ना ?···क्या ? क्या करेगा तू ?'

'ये करूंगा !···' और अजित ने बिना सोचे-समझे एक जोरदार धक्का देकर उसको अपने से दूर उछाल दिया है फिर उछलकर एक जोरदार थप्पड़ उसके मुंह पर जड़ता है···'ये !···ये करूंगा मैं !'

'तू ? ···' वह एकदम से फुसफुसी आवाज में बोली है। विस्मय से आंखें फटी रह गयी हैं उसकी। जैसे विश्वास करने की चेष्टा कर रही हो कि अजित उसे पीट सकता है ? सहसा रो पड़ी है. 'तूने मुझे मारा ? ' मुझ पर हाथ उठाया ?···' सहसा रोते हुए भी उसे आवाज का ध्यान आता है। सिसकियां घोंटने लगती है। शायद खुद से ही डर गयी है। और अजित को भी लगता है कि वह डरने लगा है···यह क्या कर बैठा ? किस आधार पर, किस अधिकार से मार दिया उसे ! अगर मायादेवी को मालूम हो गया तो धक्के मार मार कर घर से धकेल देंगी। उनकी बेटी को मारा ? कहेंगी— 'पाजी !···तू होता कौन है हमारा ?' बुरी तरह सहम गया है अजित। पर अब मिटपिटाना ठीक नहीं होगा। उसी रोब को कायम रखना होगा, जिसे दिखा चुका है। कहता है, 'जा रहा हूं···पर याद रखना मिन्नी ! मैं तेरी दोस्ती के लिए आया था···यह तय करके कि आगरा जाऊंगा !···पर जब तूने मुझे दोस्त ही नहीं समझा तो···'

मुड़ जाता है अजित। क्या सचमुच उसी तरह, जिस तरह मुड़ा है ? नही। वस्तुस्थिति में उसे लगता है कि वहां से सरक जाना ही ठीक। माया देवी तक तमाचे की आवाज पहुंची होगी, लगता है···अभी, पीछे से गिरह--बान थाम लेंगी अजित का···उससे पहले भाग जाना ठीक !

वैसा कुछ नही होता। मिन्नी कहती है, 'अजित ?···सु-सुन ?'

न चाहकर भी वह रुकता है।

वह आंसू पोंछती, गाल सहलाती करीब आ खड़ी हुई है। सहसा पलकें झुकाकर भर्रायी आवाज मे कहती है—'मुझे माफ करदे।···मैं-मैं तुझसे यों ही बोल गयी। सच मान, अजित···मैं—मै बहुत परेशान हूं। समझ में नही आता कि···' वह फिर से रो पड़ी।

अजित चुपचाप खडा रहा। डर कम हुआ। बल्कि अच्छा लगा। लगा कि उसके अपने भीतर कुछ रोने को हो आया है। जी हुआ था, मिन्नी को बांहों मे भरले और खुद भी रो पड़े। कह दे—'तू चिन्ता मत कर !··· मैं जाऊंगा आगरे !···पर, पर वायदा कर मिन्नी, तू आगे कभी ऐसा नहीं करेगी।···'

वैसा कुछ नही कहा था। मिन्नी आंसू पोंछते हुए बोली थी—'तू बैठ। मैं अभी आती हू।' फिर वह वैसा ही स्तब्ध छोड़कर बाहर चली गयी। कुछ मिनटों बाद लौटी थी, कहा था—'मम्मी बुला रही हैं तुझे।'

'क्यों ?' उसने घबराकर सवाल किया था।

'उनसे कह दे कि तू मेरे साथ जा रहा है।'

'पर···पर तू भी ··?'

'हा।' वह गाल सहला रही थी। आंखो मे खुशी थी। कहा था, '···· पैसे की चिन्ता मत कर। मेरे पास बहुत है। खूब घूमेगे।'

'मगर मिन्नी···'

'मैंने सब सोच लिया है। तू जा तो !···कह दे कि तू भी जा रहा है।' फिर वह उसे हौले से धकेलती हुई बोली थी—'जा ना !'

सिटपिटाया हुआ-सा अजित मायादेवी के सामने आ खड़ा हुआ था, 'हां, आन्टी ?'

'तू भी जा रहा है क्या ?'

थूक निगलकर अजित ने मिनमिनाहट की थी, 'हां।'

'तब ठीक है···' मायादेवी ने आश्वस्त होकर कहा, 'अब चिन्ता नहीं है। देखो तो पगली को···कह रही थी अकेले ही ताजमहल घूमूंगी। कोई ठीक लगता?···पर अब कोई चिन्ता नहीं···अरे, सुनते हो?' वह जोर से चीखीं।

पास के कमरे से मास्साब बाहर आए। हिलते हुए-से। पूरा बदन अब हिलता रहता है। लगता है उनके बदन में लगातार आंधियां चलती रहती हैं···लगातार उन्हें गिराने की कोशिश करती हुई। कब पूरी तरह गिरा देंगी—तय नहीं।

'अजित भी जा रहा है आगरा···मिन्नी को अब डर नहीं।' मायादेवी सूचना दे रही थीं।

अजित बाहर निकल आया था। मिन्नी ने बरामदे में आकर कहा था,

'कल रात पठानकोट से चलेंगे।···याद रहेगा ना तुझे?'

'हां!' कहकर जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतर गया था अजित। जाने क्यों अजब-सी चिन्ता और घबराहट हो रही थी उसे। अब तक किसी लड़की के साथ अकेला नहीं घूमा···तिस पर आगरा···? होटल में रहेंगे वह?··· एक कमरे में?···घबराहट बढ़ती ही चली जा रही है। उससे भी कहीं आगे चिन्ता और डर···अजित ने धीमे-से पसीना पोंछ लिया था माथे का!

सारे दिन इधर-उधर टहलता रहा। कार्पोरेशन के किनारे पड़े पुराने रेल डिब्बे में खुले साहित्यिक कैन्टीन में उधार चाय पी। कलम बनर्जी और गौतम के साथ डाक्टर जैसिंह के यहां गया, बिसेसरदयाल की तह ढूंढी। दोनों साहित्य सभा में पद-राजनीति के खिलाड़ी हैं। अजित को मालूम है उनके लिए वोटर की बहुत कीमत है। न सिर्फ चाय-नाश्ता करवाते हैं, बल्कि गाहे-बगाहे साहित्य पर बातचीत भी करते हैं। रस ले-लेकर अजित, गौतम और कलम बनर्जी सुनते रहते हैं। जानते हैं कि न बिसेसरदयाल का साहित्य से कोई लेना-देना है, न डाक्टर जैसिंह का। दोनों की दुनिया

किसी तरह खबरों मे रहना है। लोकल अखबारों की सुर्खियों में। इस तरह जैसिंह यूनिवर्सिटी में राजनीति पकाकर पदों के खेल खेलते हैं, तो बिसेसर-दयाल राजनीति में पैर जमाने की कोशिश करते है। साहित्य उनके लिए सिर्फ शार्टकट।

और अजित, बनर्जी या गौतम के लिए ये दोनों शार्टकट। जानते है कि दोनों ही तिकड़मी है। आगे-पीछे काम आयेंगे। आर्थिक रूप से काम आयेंगे। कभी-कभी लगता है कि ये ठीक नही है। दोनों की ऊटपटांग साहित्यिक कलाबाजी देखनी-सहनी पड़ती है। सभा के पद पर बैठकर साहित्य का लेखा-जोखा भी करते है दोनो। लोकल तौर पर किसी के भी साहित्यिक या असाहित्यिक होने की स्वीकृति-अस्वीकृति भी देते रहते है। कुछ अच्छा नही लगता। क्लेश होता है···पर होता रहे! यह साहित्य और साहित्यकार की कोई नयी नियति नही है। उसके निर्णायक ऐसे ही रहे हैं···यह विडम्बना ढोते हुए ही यात्रा करनी होगी।

यात्रा जारी है··

जैसिंह और बिसेसरदयाल भी जारी है···

एक दिन डा० जैसिंह ने एक कहानी लिखी थी—'धब्बे'। तकदीर के मारे अजित, बनर्जी और गौतम जा पहुंचे थे उनके घर। जैसिंह ने पत्नी से चाय बनाने को कहकर कहा था, सुनो कहानी।

बेबस भाव से एक-दूसरे को देखते हुए कहानी सुनने लगे थे। कहानी थी एक ऐसी लड़की की जो बदसूरत है, बड़ा तिरस्कार, अपमान सहती है, विवाह होता है, भयभीत रहती है कि उसकी बदसूरती के कारण पति भी वही सब देगा, जो मिलता आया है। पर पति सुहागरात को घूंघट उठाता है और जब पीड़ा से दुखी होकर लड़की अपना बदसूरत चेहरा छुपाती है तो पति बतर्ज अशोककुमार कहता है—'ऐसे अपने को मत छिपाओ रानी!···' रानी कहती है—'नाथ!···मेरे स्वामी!···मैं बदसूरत हूं। आप सह नही पायेंगे!' इस पर पति गुड़गुड़ाती आवाज में उत्तर देता है—'यह तुमने क्या कहा पगली!···अरे, बदसूरत तो चांद भी है···पर इससे उसकी चांदनी मे तो फर्क नही पड़ता?' और एकदम से उसका घूंघट खोल देता है! लड़की सामने है। धब्बेदार चेहरा, पर धब्बे तो चांद पर भी हैं।

मुग्ध होकर सीने से लगा लेता है पति···यह हुई कहानी।

कहानी ख़त्म करके डाक्टर जैसिंह ने पूछा था, 'बोलो अजित, कैसी रही रचना?'

तीनों ने एक-दूसरे को देखा, फिर एक ही साथ बोल पड़े थे, 'वाह!··· वाह! क्या बात है डाक्टर साहब?···वाह!'

अजित ने कहा था—'इस कहानी से मुझे अचानक महादेवी का स्केच 'घीसू' याद आ गया!···उसमें घीसू का करेक्टर उभरा तो है, पर वह बात नहीं जो इसकी बदसूरत औरत में है, क्यों कलम?'

'बिल्कुल ठीक है।···बल्कि यह कहानी कुछ-कुछ रियलिस्टिक भी है उसकी तुलना में!'

'हां-हां, बेशक!···' गौतम बुदबुदाता है।

अरे, ?···' सहसा अजित उठ खड़ा हुआ है। सब चौंकते है। अजित कहता है, 'मैं तो बिलकुल ही भूल गया था···अम्मा की दवा लानी थी?' फिर जैसे काफी कुछ समझकर गौतम और कलम बनर्जी भी उठ जाते हैं, 'तो चल, यहां क्यों बैठा है?' और डाक्टर जैसिंह को स्तब्ध-सा छोड़कर वे बाहर निकल आते है। गली पार आकर गौतम भुनभुनाता है, 'बोर कर दिया स्साले ने!'

अजित हसता है—'लिखता है—नाथ, मेरे स्वामी-ई-ई···'

कलम बनर्जी भी हंसता है, 'पता नहीं किस जमाने की बातें लिखता है। एकदम देवकीनन्दन खत्री टाइप···'

'चुप बे!' अजित टोकता है उसे, 'देवकीनन्दन खत्री कह रहा है इस बौड़म को? अबे, खत्रीजी सचमुच लेखक थे।'

'तो, लेखक तो ये भी है भइया!···उसकी किताब भी छपी है पुस्तक मन्दिर से।' गौतम की मुसबुगाहट।

'नहीं, ये लेखक नहीं है।' अजित का निर्णायक स्वर।

'तब क्या है यह?' कलम का सवाल।

'यह लखेरा है!···'

फिर हंसी।

इसी तरह दोपहर काटकर महाराजबाड़े से विदा हुए हैं तीनों। अगले

दिन का वायदा ले-देकर···

अजित भुनभुनाता सोचता चला आता है—'किन-किन की किताबें छप जाती हैं ?'

एक दिन कलम बनर्जी ने उदास होकर कहा था—'इसी तरह चलता रहेगा भाई ! यह कोई नयी बात नहीं है। हर शाख पे उल्लू बैठा है···'

'पता नहीं हम जैसे तोतों का कब क्या होगा !' गौतम ने गाँजे की सिगरेट भरते हुए एक तकलीफ भरी साँस ली थी···

कितनी-कितनी बार यही बातें इसी तरह नहीं हुई हैं ?···पर शाखें भी कायम हैं, उल्लू भी कायम हैं, तोते भटक रहे हैं···

कितनी ही बार झुंझलाहट होती है—न भटकें !···किसने कहा है कि भटको। पर अगली सुबह के साथ फिर वही भटकना···फिर शाख पर जगह की खोज···फिर शाख ही एक आसरा···

गली के मोड़ घुसते ही कई तेज-तेज आवाजों ने हर सोच तोड़ दिया।

शामलाल कम्पाउन्डर के घर के आगे भीड़ लगी हुई है···चेला साईं जोर-जोर से चीख रहा है···

'भँडा हमको पगला समझा है क्या-अ-ऽऽ ! पिछू तीन महीने से चक्कर काट रहा हूं। अबी शाम को आओ, सुबेरे आओ, फिर शाम को आओ, सुबेरे आओ !···अरे हम भी दुकानदारी करता हूं। कोई भाड़ नहीं झोंकता ना !···ऐसा बेशरम लोक नहीं देखा भाई-ईऽ !···मिलट-मिलट आ के बोलता था नी साईं, एक पाव बेसन दो, आठ आने की मिरचा दो, धनिया दो···अब पैसा देने के बखत हमको दांत दिखाता है ?···'

जल्दी-जल्दी अजित भीड़ में जा खड़ा हुआ है। देहरी पर बैठा कम्पा-उन्डर शामलाल चुप है। उसके ठीक सामने चेलाराम साईं बार-बार गंदी धोती का एक हिस्सा दांये उछालता है, फिर बांए, फिर दाएं···चेहरा विकृत हो गया है···आंखें उबली-सी पड़ रही हैं···कहता है—'पूरा सत्तर रुपये बारह आने हो गया !···पन हमारे को चक्कर कटवाया एक

सो मत्तर वेरी !···भैंडां आप लोक ही बोलो नी—हमने किसका क्या बिगारा है ?···चार पैसा कमाता है। बाल-बच्चा पालता है। ऐसा पूंजी खा जाओगे तो हम क्या घास खायेंगा भाई-ई-ई···जरा सोचो नी ?'

शामलाल कम्पाउंडर ने दोनों हथेलियों में माथा दबा लिया है, उकड़ूं हो गया है। पांडे आगे बढ़ता है, 'जरा सबर से काम लो चेला सांई। शामलाल का बहुत नुकसान हो गया। नही तो भला किसलिए कोई किसी के पैसे नही देगा ?···कलेस किसको पसन्द होता है ? जरा धीरज धरो। दो-चार दिन में सब ठीक हो जायेगा !'

'अरे, भैंड़ा हम तो सबूरी कर लेगा नी, पन जरा इनको भी तो सोचने को बोलो।' चेला ज्यादा ही कातर हो उठा है—'···इसका औरत बोला था शाम को आओ तो आया। पन कोई जबान भी होती है भाई-ई-ईऽ...'

'अच्छा-अच्छा, जो हुआ उसे भूल जाओ। दो-चार दिन में तुम्हारे पैसे पहुच जाएगे।' पांडे कहे जा रहा है, 'आदमी काले कोसों से थकामादा आया है। चार घड़ी उसे चैन मिलने दो, सब रस्ते निकल आते हैं।'

'जाता है भैंड़ा, पन इसकू बोल के रक्खो। इस हफ्ते पैसा करे। खिट्-खिट् किसको अच्छा लगता है भाई···ऽ ई ऽ !' चेला विदा हो रहा है।

शामलाल एक गहरी सांस लेता है।

भीड़ भी उदासीन होने लगती है।

पांडे शामलाल के पास उकडूं बैठ रहता है, 'क्या चक्कर हुआ भइया ?···'

'क्या बताऊं पांडे काका !···सब भाग का खेल !' शामलाल की मरी-सी आवाज।

पांडे कुछ कहे, इसके पहले ही भीतर से ऊंचाई से लुढ़के ढोल की तरह सुरगो बाहर आ जाती है। एक अंगुली में घूंघट दबाये हुए दोनों के सामने खड़ी होकर चीखती है, 'भाग को काहे दोस देते हो ? करमगती कहो ना !···सत्यानासी जुआ गले डालोगे और कहोगे कि भाग का खेल !···सरम नही आती बुढापे मे !'

इसके पहले कि शामलाल कुछ कहे, सुरगो जोर-जोर से रोने लगी है। छाती पीट लेती है···पर्दा छोड़ दिया है, भारी-भारी छातिया जोर-

जोर से हिलने लगी है। हर दोहत्थड़ के साथ सीना नंगा होता चला जाता है। अंगिया की चटखनी के बटन चट्-चट् खुल जाते हैं···पाडे को जेठ भाव से देखती है, मर्यादा देती है, पर आज क्रोध और पीड़ा मे मान-मर्यादा कुछ भी नही।

शामलाल उसी तरह माथा थामे सहमा हुआ है···सुरगो की चीखें, दहाडे और पिटते सीने के धमाकों ने वातावरण मे अजब-सा जलजला ला दिया है···

अनसूया, सुनहरी, सहोद्रा सभी के चेहरो पर तकलीफ गहरा गयी है···अनसूया कहती है—'अरे, बस कर सुरगो! क्यों अपना जी हलकान करती है। ये तो मर्द लोक को सोचना चाहिए कि बेचारी औरत लोक क्या करे?···तुम जो जुआ-सराप करके सब फूंक उडा दोगे और बाल-गोपाल क्या भीख मागेंगे?'

'सही बात है काकी। सही बात है···' कोई औरत स्वर। कौन बोला है, अजित देख नही पाता। अक्सर एक कौतूहल उसे घेरे रहा है। सुरगो की छातिया अस्वाभाविक रूप से बड़ी है···रग भी गोरा है··कितनी बार मन करता है, उन्हे देखे ··आखिर क्या है उनमें?

अजित स्तब्ध, भौचक्का-सा उधर ही देखता है। बदन एक डर और सनसनी के साथ-साथ गुदगुदी भी महसूस करता है ··तभी पाडे पर नजर जाती है। वह भी यहा-वहा की बातें करता देख वही कुछ कर रहा है···ये पांडे भी कम बदमाश नही है। अक्सर इसी तरह ताक-झाक करता रहता है! हालांकि इसके पास अपनी औरत है—वैष्णवी! फिर भी पता नही आदमी का मन। एक बार छोटे बुआ ने कहा था—'यार अजित!···ये मर्द जात भी क्या कम होती है? आदमी अपनी औरत छोड़कर सारी दुनिया की औरतें ढूंढता है···स्साला भूल ही जाता है कि उधर दूसरे पेड पर भी गिद्ध बैठे होयेंगे!'

दूसरे पेड़ के गिद्ध!···अजित का मन हंसने को हो आया है, पर हसता नहीं। गंभीर रहना होगा। फिर सुरगो का यह विकराल स्त्रीत्व देखकर तो स्तब्ध ही रहना होगा!···सचमुच कमाल की औरत है। मोठे बुआ ने कहा था—'औरत हो तो सुरगो जैसी। पूरी नौ पिल्लियों को गले-गले

दूध पिला दिया बिसने···पर देखो स्साली को ! लगता है कि भिंड की भैंस है !···ओ-हो !'

भिंड की भैंसें बहुत मशहूर हैं। कहते हैं एक वख्त में दस से बारह सेर तक दूध दे सकती हैं। आश्चर्यजनक !···मोठे बुआ की तुलना गलत नहीं है ··

अजाने ही अजित बेतुकी, पर भौंड़ी कल्पनाएं करने लगा है। सुरगो कितनी चौड़ी, कितनी फैली हुई और शामलाल सीक जैसा···एक विद्रूप कल्पना उसके मन में अरुचि भर जाती है।

'तीन महीने की तनखाह !···पूछो तो इस भाग के दुश्मन से। क्या किया ? रंडी-वेड़नी खा गयी कि फिलास में उड़ेल दी ?···पूछो ?'

'अब जो हुआ सो हुआ। किसलिए क्लेस मचा रही है !' सहसा ही वैष्णवी आ पहुंची है। बाजार गयी होगी। सब्जी का थैला एक तरफ रख-कर फैली-बिखरी सुरगो को बांहों में भरने लगती है, 'चल, भीतर !··· सरम नहीं आती—बाजार में तमासा करती है ? एं ? चल !···' एक बद-हवास-सी कोशिश करने लगती है सीतलाबाई वैष्णवी।

पांडे शामलाल को बांह पकड़कर उठाने लगता है, 'तुम इधर आओ !···मेरे साथ चलो !···चलो !'

वैष्णवी उसे भीतर ले गयी है···रोने, कलपने, गालियां बकने, भाग कोसने की आवाजें आती रहती हैं और शामलाल कम्पाउन्डर बेआवाज, बेजबान पांडे के साथ उसकी पाटीर मे समा जाता है।

यह शामलाल भी अजीब है। सुरगो ने भर-बाजार नंगपन रचा दिया पर वह शिला की तरह शान्त बैठा रहा।

सुनहरी बड़बड़ा रही है—'बेसरम हो गये हैं बाई !···सुरगो कोई अब से रो-पीट रही है ? ··चार बरस से मैं देख रही हूं। हर बार तनखाह में से आधा-पूरा जुए मे हार आते है और ऐसे ही मुरदा बने बैठे रहते हैं !···पता नहीं कैसी अभागी लत पड़ी है !'

'ये जुए की आदत मे तो दुरपदी बिक गयी थी सुनहरी—शामलाल तो है काहे में ?' अनसूयाबाई बड़बड़ाती हुई रेशमा के साथ लौटने लगी है···

'राम-राम !…' रेशमा की गुनगुनाहट…

अजित छज्जे की ओर निगाह दौड़ाता है। कमाल की बात है ! इतना सब हो गया और केशर मा छज्जे पर नहीं आयी ? ओट मे बटनिया खड़ी दीखी थी · बस चुपचाप घर की ओर चल पडता है।

शामलाल अकेला आदमी है जो जुए का खिलाड़ी है। दिवाली-दशहरे चालीस-चालीस घटे की बैठक लगाता है…'फड़' कहते है उसे। एक दिन हवलदार आ गया था। बडी देर सुरगो की पाटौर में फुसफुस-घुसघुस होती रही, फिर हवलदार कब लौट गया था, पता नही चला। शामलाल ने शायद उसका दानापानी कर दिया था।

बैठक जारी रही थी। उस बार शामलाल जीत गया था। सुरगो को अगले ही दिन नयी साडी पहने देखा था अजित ने। घर में मिठाइयां भी खूब आयी थीं। बडे जोर की मनी थी दिवाली…

चुनमुन के कानों में इयरिंग नजर आने लगे थे…सुरगो बड़ी खुश थी। आवाज मे भी एक रौब पैदा हो गया था…केशर मां से बतियाते हुए कहा था उसने—'ये मराठे काका तो अब बहुत परेसान करने लगे है काकी !…'

'सो क्यों ?'

'वही सडासवाली बात। अब हमारे और पडितजी के पास सडास नही है तो सारा घर इठा-इंठा जाता है…' सुरगो ने मुह बिगाडते हुए कहा था—'समझते है कि इन्ही के भरोमे सारी दुनिया टूटी-फरागत को जाती है…चुनमुन के बापू तो कह रहे थे कि एक संडासघर बनवाए लेते है !… फिर मुह देखें अपने पखाने मे ! हा, नई तो !'

'अच्छा रहेगा।' केशर मा का उस दिन सिर दर्द कर रहा था। हर स्थिति से उदासीन थीं।

'इसी महीने बनवा लेंगे !…'

सुरगो ने कहा था, फिर थोड़ा-बहुत बतियाकर बच्ची को झुलाती चली गयी थी। केशर मा ने मुह सिकोड़कर कहा था—'देखो तो टकियारी औरत की बातें !…मराठे साहब की भीख पर पली हैं चार पीढ़िया… और आज खसम तीन पत्ते क्या जीत आया होगा—इन्दर लोक खरीदने

की बातें कर रही है—छिछोरी !'

पर सच ही तीन पत्तों का ये महल हमेशा ही दग़ाबाज़ साबित हुआ है···दो सप्ताह बाद ही चुनमुन के इयरिंग गायब हो गये थे। सरदार मराठे के पाख़ाने को लेकर सुरगो कहते सुनी गयी थी—'आखिर को राज-ज़मींदारी भले चली गयी हों, पर राजा तो राजा ही रहेंगे ! हमारी तो चार पीढ़ी मराठे काका की कृपा पर पली है···हमसे सडास नहीं छीनने वाले ! जलनेवाले जला करें ! ऐसे गरीबों से मुंह नही मोड़ेंगे। हां, नहीं तो !'

छज्जे पर केशर मां ने बुदबुदाकर कहा था—'देखा बटनिया !··· टकियारी, फिर टके भाव बिकने लगी है !···जब इसी तरह चलना है तो काहे के लिए सूंघरिया-सा मुंह मारती फिरती है यहां-वहां !···हुह ! जबान बन्द रखा करे !'

तीन पत्ते का महल फिर से गिर गया था···जरा जोर से गिरा ! दीवारों के गिरने की आवाज़ें अब भी आ रही हैं···

ऐसा क्यों होता है ? अजित सोचता। अक्सर सोचने लगता। जब-जब ये छुटपुट घटनाएं घटती हैं···किसी पल मुसकान होती है, किसी पल आंसू। किसी पल अहं की गर्जना, किसी पल बेबसी की रिरियाहट··· अजित को लगता है कि आदमी हर पल अपने को और सबको धोखा देकर खुश होता रहता है···

किसी जगह पढ़ा या सुना था अजित ने—जीवन यही है !···बच्चों की तरह खिलखिलाता-सिसकता हुआ···

पर यह सब झूठ है। यह भी तो पढा है कहीं ? तब सच क्या है ? सच भी शायद यही है। अजित उलझ जाता है। सुरगो के मोटे शरीर के पार एक ऐसे आसमान में पंछी की तरह विचरने लगता है जो जीवनाकाश की थाह नही पा रहा हो। थकता-थकता फिर से वहीं लौटा आता है···

एक बार फिर सुरगो और सिर्फ सुरगो तक।

अजित का मन होता है इस सब पर बात किया करे। क्यों होता है ऐसा ? किसी को कुरेदे, किसी से बहस करे···पर किससे ? मोठे, छोटे या बटनिया··· किससे ?···झुंझलाहट से भर उठता है वह। इस गली में यही

एक गड़बड़ है। बात पैदा कर रहे हैं सब। बातों पर बात कोई करने को तैयार नहीं। लगता है इस तरह कुछ खो जाता है···

क्या ? अजित नहीं जानता, पर खोता है !

महादेव के छत्र सिंगार दमदमा रहे हैं···रेशमा खुश। सीढ़ियों के पास बैठी अभिषेक देखती है। नीची जात। श्रद्धा से हाथ जोड़ा रखे हैं। आखें इस तरह शिव-मूर्ति पर टिकी हैं जैसे ज्योति-किरनों के हाथ फैलाकर हौले-हौले मूर्ति स्पर्श कर रही हो···

अभिषेक-प्रसाद लेते हुए अनायास ही अजित के मन में आया था रेशमा को मन्दिर में ले जाये और कहे—'भाभी !···तुम यहां बैठो। भगवान के पास। प्रसाद तुम्हें ही बांटना चाहिए !'

पर ऐसा न तो हो सकता है, न किया जा सकता है। रेशमा है नाइन। भगवान के कक्ष में उसका प्रवेश वर्जित। मन्दिर बनाकर पुण्य कमा लिया है—यही बहुत। कुछ ऐसा लिक्खा है कि शूद्र द्वारा ईश्वर पूजा पाप है !

क्यों ? अजित फिर से ठुनककर सोचने लगता है। क्यों ? इतनी श्रद्धा से सीढ़ियों पर बैठी रेशमा पूजा की अनधिकारी है और वैंजापुरकर जैसा धूर्त, ठग अधिकारी हैं ? कैसी विडम्बना ?

पर यह विडम्बना ही सच है। इस सच से सहमत नहीं हो पाता अजित। तर्क-वितर्क करता रहता है, निष्कर्ष नहीं निकाल सकता। पर निष्कर्ष निकालना होगा !

निष्कर्ष निकले हुए है। गांधी कहते थे—'छुआछूत अधर्म है ! सच में पाप यही !' मगर न खुद रेशमा ने कभी माना है, न किसी और ने। सरकारी कानून बन चुके है कि ऐसा करने वालों को सजा मिलेगी। मगर सजा देनेवाला कौन है ? लेनेवाला कौन है ?···

कोई नहीं। सिर्फ कानून है। वह किताब में बन्द है। लिखा रहेगा। बहुत सी बातें लिखी रहती हैं। बन्द रहती हैं।

पर क्यों होता है ऐसा ?···हमेशा की तरह एक निरुत्तर बौखलाहट से

उलझकर रह जाता है अजित।

प्रसाद खाकर सीढ़ियां उतर आया है। मिन्नी प्रतीक्षा कर रही होगी। पठानकोट ग्यारह बजकर कुछ मिनिट पर जाता है···जल्दी-जल्दी घर पहुचकर थैला उठा लेता है। केशर मां को पहले ही सूचना दे चुका है। जैसी कि आशा थी, बौखलायी, पर अनसुना कर दिया था उसने। बटनिया से कहा था—'मेरे कुछ कपड़े धो देगी···?'

बोली थी—'हा, पर···बहुत दिन तो नही लगायेगा तू?'

'नही।' उसने कहा था, सहसा पूछ बैठा था—'तुझे क्या चिन्ता ?'

वह लजा गयी थी—'यो ही···बस, ऐसे ही पूछ रही हू।'

अजित गुनगुनाहट से भर उठा था—क्या लड़की है यह भी। बिलकुल बेमतलब ही घरवाली बनी जाती है···ऐसे करेगी जैसे पांडे से वैष्णवी करती है। मुस्करा पड़ा था।

जल्दी-जल्दी थैला उठाया, चल पड़ा। सीढ़िया से उतर ही रहा था कि बटनिया दौड़ी आयी थी, 'सुन ?···सुन ना !'

'क्या ?' अजित कुछ चिढ़ गया। अब फिर कुछ कहेगी···बेकार ही घरवाली बनी जाती है पागल !···

बटनिया ने दस रुपये का एक नोट उसकी ओर बढ़ा दिया था, 'अम्मा ने दिया है। कहा है कि तू खाली हाथ रहेगा।'

अजित ने नोट जेब में डाल लिया। तेजी से सीढ़िया उतर गया था। ये केशर मा भी खूब हैं। गालियां और ये नोट !···ज्यादातर मांए ऐसी ही होती है। वह जल्दी-जल्दी गली पार कर गया था।

मिन्नी प्रतीक्षा ही कर रही थी। अटैची तैयार। बरामदे में मास्साब और मायादेवी ने कहा था—'जरा ध्यान से रहना !···'

'हा !···' मिन्नी बोली।

'मै तुझसे नही, इससे कह रही हूं।'

'तुम निश्चिन्त रहो आन्टी।' अजित ने उतावली में कह दिया, फिर मिन्नी की ओर मुडा, 'जल्दी करो मिन्नी। आधा घन्टा लगेगा स्टेशन पहुचते, फिर आज भीड भी बहुत होगी···'

'भीड़ होती है शरदपूनो के दिन···ये तो ऐसी ही पूरनमासी है।'

मास्साब ने कहा।

दोनों ने कुछ सुना, कुछ अनसुना कर दिया। मिन्नी ने अजित के थैले को देखा। बोली थी—'थैला अलग से क्यों ले रहा है! इसी अटैची में आ जायेगा सामान।' फिर इसके पहले कि अजित कुछ कह सके, मिन्नी ने जल्दी से अटैची खोली, अजित के कपड़े थैले से निकालकर अटैची में बन्द कर लिये।

अजित को अच्छा भी लगा था। अजित को अच्छा नहीं भी लगा।

महाराजवाड़े तक अजित को अटैची उठानी पड़ी। रास्ते में बिशन भी मिला था, मोठे बुआ भी। अजब ढंग से घूरने लगे थे दोनों। सहसा मोठे ने टोक दिया था उसे, 'एए अजित?'

अजित का जायका बिगड़ गया था, 'क्या?' चलते-चलते ही पूछा था उसने। अब बेकार ही कुरेदेगा। इस आदमी से दोस्ती क्या की है, गुनाह किया है।

मोठे पास लपक आया था। मिन्नी एक ओर खड़ी हो रही। चुप, गम्भीर। मोठे ने मिन्नी की ओर देखते हुए धीमे से पूछा था, 'किदर?'

'आगरा!' अजित ने कह दिया।

'आगरा?' मोठे बुआ हैरान हुआ। कुछ भौंहें सिकोड़ता हुआ फिर से मिन्नी को देखने लगा था…अटैची भी।

अजित ने तुरत झूठ बोला था—'मैं नहीं, मिन्नी को स्टेशन छोड़ने जा रहा हूं।'

'मैं चलूं?' मोठे कुछ उत्साहित स्वर में बोला था।

'नहीं!' अजित ने एकदम जैसे गुर्राकर कहा, चल पड़ा। मिन्नी पीछे। मुड़कर भी नहीं देखा था। सिर्फ आवाज सुनी थी मोठे बुआ की, 'अरे स्साला!…देखो तो कैसे बिलबिलाता है जैसे बिसको काट लिया मैंने?…'

बिशन की हिनहिनाती हंसी।

हरामजादे!…मन ही मन गालियां देता अजित चलता गया था। मिन्नी ने क्या सोचा होगा?…उसे सहसा मिन्नी पर ही क्रोध आ गया था। यह लड़की हमेशा ही इसी तरह मरवाती रही है। बदनाम इस क़दर

हो चुकी है कि इसके साथ भगवान रामचन्द्र भी चलें तो लुच्चे कहलायें ! तांगे में सारे रास्ते मूड खराब रहा।

ट्रेन में भीड़ बहुत थी। रास्ते में भी ज्यादा कुछ बातचीत नहीं हुई। अजित को निरंतर एक संकोच काटता रहा था—पहली बार लड़की साथ लिए जा रहा है। मालूम नहीं कोई क्या सोचेगा ?···हो सकता है कि कोई पूछताछ भी करने लगे ?···

होटल में कमरा लेते समय हल्का-हल्का पसीना महसूस किया था अजित ने। लगा था कि यहीं कुछ घट जायेगा···पर वक्त टल गया।

अब लगता है जैसे मिन्नी ने बहुत समझदारी से काम लिया। अजित तो काफी कुछ सिटपिटा गया था जब होटलवाले दोनों को सिर से पैरों तक घूरते हुए सवाल किया था, 'आप लोग···'

तो अजित कुछ कह पाये, इसके पहले ही मिन्नी बोल पड़ी थी—'हस्बैंड-वाइफ !···'

'अच्छा-अच्छा !···' कहते हुए रजिस्टर अजित की ओर बढ़ा दिया था उसने। अजित के हाथ कांपने लगे थे···पर शुक्र भगवान का। होटलवाला उठकर दूसरी ओर चला गया था, 'गोपी···साहब लोग का सामान बारह नम्बर में पहुंचा।'

अजित ने जल्दी-जल्दी नाम भर दिये। खानापूरी करके खड़ा हो रहा था···मिन्नी ने रास्ते में ही रुपये दे दिये थे। कहा था, 'तू ही लेन-देन करेगा तो ठीक लगेगा।' अजित ने एडवांस जमा किया था। होटलवाला कमरे में पहुंचा गया।

दरवाजा भीतर से बन्द करके अजित एकदम बिस्तरे पर लेट रहा। आंखें मूंद लीं। एक जटिल स्थिति कट जाने का हल्कापन भी था···एक बोझ भी। कितनी बेशर्म लड़की है। कह दिया—हस्बैंड-वाइफ···छि ! छि. !

वह बाथरूम में समा गयी थी। अटैंची खुली पड़ी है। अजित ने बीड़ी सुलगायी। दिमाग थोड़ी देर के लिए बन्द सा हो गया। जो स्थिति थी,

उसके सत्य पर सहसा विश्वास नहीं कर पा रहा था।

कभी सुना था कि आवारा लड़के लड़कियों को लेकर इसी तरह अपने शहर से गायब होकर रंगरेलियां मनाते हैं ··बिलकुल इसी तरह···अजित ने अपने-आपको उसी स्थिति में महसूस किया है · बिलकुल वही स्थिति··· मिन्नी को ऐसी आवारगियों का काफी अनुभव लगता है, किस हिम्मत से बोल गयी थी —'हस्बेंड-वाइफ···!'

असल में बचा लिया उसने, वरना अजित की तो घिग्घी बंध रही थी ?···उसने अपने भीतर शान्ति महसूस की।

तुरंत लगा था कि ठीक नहीं हुआ। मोटे बुआ मिल गया था। जरूर खोजबीन करेगा। अजित की भी खासी बदनामी होगी। बात केशर मां तक भी जायेगी और बटनिया तक भी···क्या-क्या सोचेंगी वे ?···अजित यह सब भी करने लगा है ?···

सारा महल्ला उसे अजब-सी नजरों से घूरेगा···जरा लौटे तो सही। मिन्नी ने बड़ी कठिनाई में डाल दिया। संकोच, बेचैनी और घबराहट में परेशान होने लगा था वह।

वह बाथरूम का दरवाजा खोलकर बाहर आ गयी। गीले बाल, चेहरे पर मोतियों की तरह चमकती पानी की बूंदें···ट्यूबलाइट की रोशनी में कैसी जगमगा रही थी वह ? अजित के भीतर खून की रफ्तार तेज हो गयी थी···उसने मुसकराकर देखा था उसे। पूछा, 'तू नहीं नहायेगा ? थोड़ा फ्रेश हो ले ?'

वह फिर उखड़ गया। इस लड़की को तो जरा संकोच-शर्म नहीं है। अजित के साथ अकेले कमरे में ··वोना, नहीं।'

उसने बालों को कन्धों पर छितराया और कुर्सी-टेबल पर पेटीकोट-ब्लाउज टांग दिये। छि:-छि: !···कड़वाहट महसूसता हुआ अजित ऐंठ गया ··जी हुआ उठे और एकदम बिगड़ पड़े— शर्म नहीं आती तुझे ! मेरे सामने इस तरह कर रही है जैसे मैं आदमी ही नहीं हूं ? क्यों ?··· क्या जानती नहीं कि मैं-मैं तेरा दोस्त हूं, साथी हूं, पर···पर मैं अजित भी हूं—आदमी !···मर्द !

वह लापरवाही से ड्रेसिंग टेबल के स्टूल पर जा बैठी। कुछ [illegible]

पंखा खोल दिया। बाल सुखाने लगी···

अजित उसे घूरता रहा···जाने क्यों उसे गुस्सा आता रहा···खूब-खूब उबलता, उफनता हुआ गुस्सा···पर बेवस···

वह मुसकरा रही थी···

अजित ने जबड़े इतनी जोर से भीचे कि महसूस हुआ जैसे कड़कड़ाकर वह अपनी ही हड्डियां चबा लेगा। दांतों में धीमा-सा दर्द बिखर गया।

वह सिर में होले-होले झटके देने लगी, फिर आगे को एक झोंक खिलाकर बाल गोद में गिरा लिए···सहलाने लगी··

अजित ने थूक का घूट निगला···देखे गया। गोरी, दमदमाती मिन्नी। इस मिन्नी को कितनी बार देखा होगा। कितने एकांतों में इसके साथ खेला होगा। झूमाझटकी करके कोई किताब या चीज छीनी होगी···पर ऐसा कभी नहीं हुआ। इस क़दर बुखार किसी भी बार महसूस नही हुआ। ऐसी तो कभी लगी ही नही वह ?—उसने अपने को थामने की कोशिश की थी—छि !—कैसा घिनौना सोच रहा है वह ? मिन्नी को लेकर इस तरह सोचना चाहिए भला ?—फिर यह—

और अजित सारी रात इसके साथ अकेला रहेगा। होटल के रजिस्टर में पति-पत्नी दर्ज हैं दोनों।—सो पायेगा ?

घबराकर उसने अपने इर्द-गिर्द देखा। बहुत संकरा कमरा। सिर्फ एक पलग, चादर। थूक का घूट निगल लिया।

वह एकदम से उठ पड़ा। तमतमाया हुआ। लगा था कि हल्का-सा कंपन भी है उसके बदन मे।

'क्या हुआ ?' वह चौंक गयी थी।

'कुछ नही।' अजित ने कहा, बाथरूम की ओर बढा।

'तौलिया तो लेता जा !' वह बोली।

अजित सहमकर मुडा।

'तेरे कपड़े ऊपर ही है···'

वह अटैची पर झुक गया। कुछ हड़बड़ी मे उसने एक कुरता-पाजामा निकाला। अन्डरवीयर अनदेखा कर गया। ब्रेसरी पडी थी साथ। अजित के हाथ ज्यादा ही काप उठे। वह कपड़े उठाकर जल्दी से बाथरूम मे समा

गया। एकदम तेज शावर खोल लिया उसने। बैठ रहा था उसके नीचे—जाने कितनी देर बैठा रहा होगा—याद नहीं—याद आया था तब, जब हौले से दरवाजे पर थपकी पड़ी, मद्धिम-सी आवाज आयी, 'अजित ?—कितनी देर भीतर…'

'निकल रहा हूं—बस !' वह उठ पड़ा था। कुछ सहज हो लिया। तौलिया से बदन पोंछते, कपड़े बदलते वह फिर से जैसे किसी आग में झुलसने लगा था—लग रहा था कि अब भी सामने बैठी है मिन्नी। खुले, गीले बाल—बाहों पर पानी से चिपका ब्लाउज और उसके भीतर से झिलमिलाता बदन…

ध्यान आया था अन्डरवीयर भूल आया—एक पल घबराया-सा खड़ा रहा, फिर हिम्मत संजोकर दरवाजा हल्के-सा खोला, कहा था, 'जरा अन्डरवीयर देना अटैची से !' दरवाजे से सटकर खड़ा हो रहा। दो पल बाद मिन्नी की गोरी बांह ने अन्डरवीयर बढ़ा दिया था सांस ने—नि.शब्द !

वह टकटकी बांधे उस गोरी अंगुलियों में जकड़े कपड़े को देखता रह गया था।

'ले ना !…' वह कुछ झुंझला उठी थी।

'हूं ? हां-हां !' उसने झपट लिया था अन्डरवीयर। एकदम से दरवाजा बन्द कर दिया। चुप खड़ा रहा वह। जोर-जोर से सांसें लेता हुआ। उसने अपने आपको एक गाली दी थी—'नहीं आना था इस बेवकूफ लड़की के साथ !…' फिर फौरन ही वह कसमसा उठा था—'कड़वा सच ?' उसने अपने आप सवाल किया था।

पर वही मिन्नी ?···उसे लेकर जितने जोड़-बाकी किये, कुछ समय मे गलत हो गया।

तब नहीं सोचा था कि क्यों हुआ ऐसा ?···तब सिर्फ सोचा था यह कि क्या कुछ हो रहा है !···कुछ मिन्नी कर रही है, कुछ अजित, कुछ अपने आप हो रहा है···

पर अब लगता है मिन्नी, अजित या किसी का किया हुआ, कुछ भी तो नही था। उनके सोचे हर आकड़े में तो वह सब था ही नही, जो जोड़ मे आने लगा ?···फिर किसने दर्ज किये आंकड़े ? किसने किया गणित ?··· किसने लगाया वह मीजान ?···

मिन्नी ने नही। लगाया होता तो भला उस दिन अन्धेरी रात मे सुगबुगाती हुई क्यों कहती—'तुझे गुस्सा आ रहा है ना ?···मुझे भी बहुत आता है। अपने पर ही आता है। पर बता तो मैं क्या करती ? ··और मेरी जगह कोई और मिन्नी हो; तब वह क्या करेगी ?'

अजित गालियां देते-देते थम गया था। जवाब नही उसके पास। सच तो, क्या करती मिन्नी ?···और कोई भी क्या कर सकता था ?

'पापा किस तरह जी रहे हैं, क्या तुझे मालूम नही ?' उसने पूछा था।

'··और तू किस तरह जी रही है—नही जानती !' अजित ने चिढ़कर सवाल किया था।

वह बोली थी, 'जानती हूं—वेश्या की तरह !···'

अजित घिन से भर उठा था।

'पर न जियूगी तो क्या होगा—मालूम है !' उसने अन्धेरे में होले से करवट ली थी। अजित ने बिस्तरे पर लेटे हुए उसकी करवट के साथ स्पर्श महसूस किया था। सुलग उठा था बुरी तरह। सरककर पाटी से चिपक रहा।

वह भी सरक गयी।

एक पल चुप फैल गया था उनके बीच। फिर अजित ने कहा था, 'खूब जानता हूं।'

'क्या ?'

'यह सब न करके भी तो जिन्दा रहा जा सकता है !'

'पर पापा कैसे जियेंगे ?···'

'आखिर बहुत से आदमी दुनिया में आधे पेट खाकर भी जी ही रहे हैं···किसने कहा है आन्टी से कि जार्जेट की साड़ी पहनो ?'

'मा को छोड़ दे ··उनके लिए ये सब बेमतलब है । मुझे लेकर वह क्या सोचेंगी, उन्होंने तो खुद को लेकर भी कभी नही सोचा । जया मौसी को लेकर भी नही सोचती, पर ···'

'पर जया मौसी अच्छी थी । उन्होंने कम-से-कम यह सब तो···'

'पर मिला क्या उन्हे ?'

'क्या नही मिला ?' अजित बुदबुदाया था—'सुरेश जोशी के साथ कही भी दाल-रोटी खा रही होंगी । वह जीवन इस सबसे अच्छा !'

'वह अपने लिए ही तो जी···और पता नही कि किस तरह जी रही है ?' मिन्नी की एक गहरी सास सुनी थी अजित ने—ऐसे जैसे अपने को ही पी रही हो । बुदबुदायी थी—'कौन जानता है ?'

'जो भी हो, पर अपने लिए जीना कहां बुरा है ?'

'हा, बुरा नही है···पर मुझे बुरा लगा···'

'यो क्यो नही कहती तुझे यह सब अच्छा लगा !' नफरत से बोल गया था वह । दात पीस लिये थे ।

'हो सकता है···हर आदमी अपनी तरह सोचने के लिए आज़ाद है । मैं कभी नही कहूंगी कि कोई मेरी तरह सोचे !' वह कराह रही थी ।

शायद रुआसी हो गयी है । अजित ने महसूस किया था, पर बोलता ही गया—'अच्छा हो मिन्नी, हम यह सब न सोचें । तकलीफ होती है ।'

'हां, होती है···'

'जब मुझ-जैसे पराये आदमी को इतनी तकलीफ हो सकती है तो··· मास्साब को कितनी होगी—कभी सोचा तूने ?'

'हा !···'

'फिर भी ··'

'हा, फिर भी···'

'छि: ?···'

'तेरी जो जी आये समझ !'

'कितना घिनौनापन है…'

'बहुत !…'

'……'

'पर ऐसा न करके जितना होता, उससे कम !'

'बहस करना खूब आता है तुझे !…बचपन से मुंहजोर है तू !'

'हां-अ्…हूं-अ् !…' वह हौले से सुबकी है।

'अब त्रियाचरित्र…' अजित का मन उबकाई खाता है।

'कुछ भी समझो…'

'……'

'पर एक बात समझ ले…फिर कुछ कहना…' उसने हिचकी ली है।

'क्या ?'

'तुझे शायद मालूम नहीं…'

'क्या ?'

'पापा को टी० बी० है· ·थर्ड स्टेज !'

'है ?…' वह अंधेरे में एकदम उठ बैठा है।

वह रोने लगी है…रोते-रोते कहती है, 'हां-अ् अजित !…इसीलिए तो…सोच भला—मैं क्या करती ! ··क्या करती मैं ?' उसकी हिचकियां बंध गयी हैं।

अजित स्तब्ध हो गया है। बुत की तरह। एक पल के लिए निर्जीव-सा।

मास्साब को टी० बी०…? थर्ड स्टेज ? ··सहसा आवाज लड़खड़ा उठी है उसकी—'यह…यह कब से है ?…कितने दिन हुए ?'

'बस, कहते हैं कि मौसी के जाते ही हो गयी थी ··कब हुई—यह तो कभी उन्होंने बताया नहीं।…बहुत बाद में पता चला। देखा नहीं, किस तरह सीढ़ियां चढ़ते हुए हांफने लगते हैं वह !'

अंधेरे में मास्साब का चेहरा उभरने लगा है ··मायूस, मायूस, लाचार चेहरा !…किसी बच्चे जैसा। लगता है कि बांहें पसारे हुए किसी का इन्तजार कर रहे हैं…किसका ?…न जाने किसका ? चेहरे पर भय भी

है। शायद मृत्यु-भय।

···सहसा उन्हें मिन्नी गोद में भर लेती है। ठीक उसी तरह, जिस तरह कभी मिन्नी को उन्होंने गोद मे भरा हो।

अजित उठता है। अंधेरे में टटोलकर हौले से लाइट जला देता है। देखता है कि मिन्नी औंधी पड़ी हुई तकिये मे मुह छिपाये बहुत धीमे-धीमे रो रही है···अजित बीड़ी सुलगाता है।

वह एक पल चुपचाप देखता है फिर आगे बढकर उसके करीब जा बैठता है। हौले से उसके सिर को दुलराता है—'मिन्नी?'

वह जोर से रो पड़ी है।

'आय-एम-सौरी!···' वह बडबडाया है, जैसे अपने से ही बोला हो।

मिन्नी की छातियां बिस्तर से दबी हुई हैं। गोरा, गदराया बदन अजित के स्पर्श में है···सधा-सधाया शरीर···पर जरा भी उत्तेजना नही। अजित के भीतर कुछ भी तो नही। सिर्फ एक रिसता झरना··· सिर्फ नमी।

मिन्नी ने कहा था—'हां, अजित!···कोई लडकी शौकिया वह सब नहीं करती है···वर्ना मुझे क्या जरूरत थी इतनी जल्दी बी० ए० करने की··? इतनी जल्दी प्रमोशन लेने की और इतनी जल्दी · छिः!··'

और अजित की समझ मे नही आ रहा है कि क्या कहे?···

कोई क्या कह सकता है भला?

गणित!···

जया मौसी बोली थी उस बार—'···हां, अजित!···अगर मैं न गयी होती घर से—तो मैं भी शायद वह सब मान लेती जो मिन्नी ने माना होगा···वह सब, जो मिन्नी ने किया!···जीजाजी···' वह रुआंसी हो गयी थी।

अजित एक बार फिर वैसा ही स्तब्ध बैठा रहा गया था, जिस तरह कभी आगरे के उस एकान्त होटल की रात मे मिन्नी के सामने बैठा रह

गया था।

जया मौसी ने कहा था—'…जीजाजी…उन पर गुस्सा करूं या रहम खाऊं—यह कभी नही समझ सकी !…'

अजित भी कहां समझ सका था कि मास्साब पर गुस्सा किया जाये या रहम ?

मगर मिन्नी पर जरूर रहम आया था …जितना गुस्सा, उतना ही रहम। पर सही क्या या दोनों में—आज तक तय नही कर सका है।

शायद मिन्नी भी तय नही कर पायी होगी। कर पाती होती तो उस तरह किसी पल हंसती…?

…और फिर रोती ?

कितनी अजीब बात ! आदमी अपने पर ही हंसता भी है, रोता भी है। यह किसी बार तय नहीं कर पाता कि रोना ठीक था या उसका हंसना ?…

जया मौसी भी अपने बारे मे कहा तय कर पायी थी ?

मिन्नी, बटनिया, सुरगो, अनसूयाबाई और रेशमा…यहा तक कि खुद अजित—वह भी कभी तय नही कर सका !…हसने का गणित सही है, या रोने का ?

या दोनों ही !

या उनसे परे कोई तीसरा गणित ?

आदमी के अपने आकड़े—अपने जोड़। हालातों के अपने आंकडे—अपने निष्कर्ष और घटित का अपना घटना—घटते जाना !

यह घटते जाना ही सच है क्या ?…

या घटाना ?…घटाने की कोशिश ?…

अजित कभी नही समझ पाया। शायद कोई भी नहीं समज पाया होगा। पर समझाने से भी तो नही थकता आदमी ? लगातार इन तीन गणितों के बीच मे ही समझने की कोशिश करता-करता बीत-रीत जाता है…यही है ससार। संसार-कथा। यह ससार-कथा ही तो सत्य है।

और कितनी तरह के सत्य ? अपने-अपने, अपनी-अपनी तरह के सत्य !

एक सत्य जया मौसी का था। उनका भागना…और फिर दिवाकर

से उनकी भेंट···और दिवाकर से उनका कहना—'···तुमने क्या कहा था दिवाकर, कि तुम्हारे दिल नही है ? ये दिल का दौरा क्या बिना दिल वालों को पड़ता है ?···'

उन्हीं जया मौसी का सत्य कभी सुरेश जोशी था, फिर दिवाकर हुआ···और फिर उनका जी० बी० रोड पर होना···

यह सब एक कहानी। पर एक सच। न वह झुठला सकी थी, न अजित। पर यह भी कहां झूठ था कि उन्होंने जो सच बटोरना चाहा था—वह भी सच था !···एक घर का सच ! अपगता के बीच सुरेश जोशी के पैरों पर पंगुता ढूंढने का सच ! ··उनका अपना आंकड़ा। उनका सच। फिर हालातों का आंकड़ा—दिवाकर। वह हालातों का सच। और घटित का अपनी तरह घटते जाना एक तीसरा गणित···किसका आंकड़ा, किसका जोड़, किसकी गिनती—? कौन जाने ? पर उसका सच जया मौसी का जी० बी० रोड पर होना !

एक और सच भी है नैनीताल के स्कूल में पढ़ती नन्ही-सी लड़की··· पिता की जगह तब वह अजनबी नाम पढ़ा था अजित ने। दिवाकर शर्मा ! ये दिवाकर शर्मा भला सुरेश की जगह कैसे आ गया ?

मिन्नी का भी वह सच था···बोली थी—'···तू क्या समझता है कि मुझे इस सबका शौक है ? भला कौनसा प्राणी होगा, जो अपना मास बेच-कर खुशियां खरीदेगा अजित ?···पर मैं वही कर रही हूं।'

जब तक इस सच की तह तक नही पहुंचा था, तब तक लगता था कि मिन्नी को खूब-खूब नफरत करे, बेइंतिहा···पर।

पर उस रात मिन्नी से बतियाते हुए लगा था कि नहीं, मिन्नी को बहुत-बहुत प्यार चाहिए !···उतना, जितना अजित के पास नहीं है। उसके वश में नहीं। इसके विपरीत वह सहानुभूति देता रहा था उसे। श्रद्धा, प्यार कुछ नहीं—सिर्फ सहानुभूति। यही तो अजित का सच था ··

अपने-अपने सचों के सामने कैसे बेबस होता है आदमी ? कोशिश के लिए भी बेबस, परिणाम के लिए भी बेबस !···

जया मौसी ने सौदा किया था उससे। कहानी के बदले एक कहानी। यह सौदा भी तो अजित का सच था। उतना ही घिनौना, जितना शायद

मिन्नी की कहानी में उसका बेवस होना था !

इस सौदे के लिए वह जी० बी० रोड जाने लगा था। कितनी बार नही गया था ? याद नही। पर जितनी बार गया, लगा था कि कुछ पाया है। जया मौसी बोली थी—'अच्छा, सच बता। मुझसे मिलकर तुझे कैसा लगता है ?'

'चिढ़ आती है···'

'तब किसलिए आता है यहां ?'

'अजित सिटपिटा गया है। क्या कहे ?···क्या कह सकेगा कि वह सिर्फ कहानी के लिए आता है ? इतना साहस नही है। नही कहा।

वह लापरवाह हंसी मे हस पड़ी थी, 'मैं बतलाऊं ?'

'हू ?'

'तू आता है कि तेरा वक्त कटे। इस तरह कि उसका भी एक दाम वसूल हो।'

'क्याऽ ?···' वह बौखला गया था, 'तुम सिर्फ इसी तरह सोचने लगी हो क्या मौसी ?'

वह हस पड़ी थी, 'मैं नही रे। सब इसी तरह सोचने लगे हैं।'

'मैं चलता हू···' वह उखड़ गया था।

वह जैसे कुरेदने के साथ सवाल करने लगी थी—'सच ?···जायेगा ?···जा सकेगा ?'

वह चुप हो रहा। सच ही तो। क्या जा सकेगा ?···जाना चाहता है। पर यह जिद की बात है। इस समय तो जाना ही ठीक होगा। कहा था, 'हा !···'

'अरे, नही रे ! बैठ!' वह हसी थी, 'अच्छा छोड़, अब नहीं टोकूंगी। बैठ।'

कुछ सकुचा गया था वह।

वह दबाव से बोली थी, 'अब बैठ भी जा !···' फिर करीब आ पहुंची,

'बैठ !' उन्होंने हौले से अजित का कन्धा दबाकर उसे कुरसी मे बिठाल दिया था। वह बैठ रहा। उसकी ओर देखने का साहस नही हुआ था।

कस्तूरी पैग रख गयी थी···बोतल साथ।

'आज मैं नही लूगा !'

'क्यो ?'

'यो ही, मन नही है।'

'यह तो शर्त है मेरी !···' वह हंसी, 'उठा !'

अजित ने उठा लिया। अपने भीतर व्यग्रता-सी महसूस की थी। जी हुआ था पूछ डाले—'हां, फिर क्या हुआ था मौसी ?···दिवाकरजी को दिल का दौरा पड़ा या दूसरा ··फिर ?'

पर नही। यह पूछने से जाहिर हो जाएगा कि अजित का आना उसी तरह है, जिस तरह वह कह रही थी। अपनी ओर से कुछ नही कहेगा।

उन्होने बात शुरू की थी—'हा, अब अपनी शर्त निबाह !···'

'कैसी शर्त ?' पैग खाली कर दिया था अजित ने।

'मिन्नी का क्या हुआ था रे ?···मैंने जो कुछ सुना वह 'यूं ही-सा' था···पर वह हादसा···गड़बड़ क्या हुई थी—ऐं ? बता तो ? जरा विस्तार से बता।'

'तुम तो मिन्नी से मिली थी ना। एक बार बतलाया भी था तुमने—ग्वालियर गयी थी ? कैसे ?···कब ?'

'वह सब तो बतलाऊंगी···पर शर्त वही है। पहले मिन्नी के बारे में तो बतला···'

'उतना तो मैं भी नही जानता, बस···'

'झूठ !' सहसा जया मौसी गंभीर हो गयी थी—'तुझसे ज्यादा कौन जानेगा उसे ?···वह तो खुद बोली थी रे···रो-रोकर कहा था उसने—'अजित से पूछना मौसी, मैं क्या करती ?'···आगरा गए थे ना तुम दोनों ?'

अजित सहम गया था। इसका मतलब है कि जया मौसी को मिन्नी ने उसके बारे में सब कुछ बतला दिया था···उसने अपने भीतर कितना डर महसूस किया—? परेशान होकर देखने लगा था उन्हें।

वह शान्त थी। धीमे-धीमे घूंट लेते हुए बोले गयी थी—'मैं तुझे भी जानती हूं, मिन्नी को भी। जान नही सकी तो सिर्फ जीजाजी को। और जितना जान सकी हूं, उसके बाद भला कोई भी कैसे विश्वास कर सकता है कि उस मुंहबन्द फोड़े मे उतनी पीव थी ?···'

अजित धीमे-धीमे प्याले के किनारे पर अगुली फिरा रहा है ··सचमुच ही किस क़दर घिनौनी पीव थी मास्साब के भीतर। अगर मिन्नी को ठीक तरह समझा-जाना न होता, वह कहानी न सुनी होती तो पता चल सकता कि कितने चेहरे होते हैं फोड़ों के ? कितनी बदबू होती है पीव में ?···और कैसे उस बदबू के साथ भी गटर जिन्दा रह लेते है। मास्साब का चेहरा फिर तिर आया है···ऐसा चेहरा—जिसे अजित बचपन से देखकर भी कभी देख नहीं सका था···समझा था कि मायादेवी, मिन्नी, जया मौसी, भांडे बुआ···सबके चेहरे देख लिए हैं···गन्दे-विद्रूप चेहरे !

पर मास्साब जैसे आदमी के भीतर भी विद्रूप होता है ?···कितनी मखमली पर्तों में गन्दगी छिपी होती है—कहा मालूम था ?

जब मालूम हुआ था तो लगा था कि सारे हिसाब, सारे गणित गड़बड़ा गये हैं···वैसा कुछ है ही नही, जैसा आदमी अपने और दूसरों के बारे में जोड़ता, सहेजता रहता है। जो है, बहुत अलग···

और वह बहुत अलग कभी न मालूम होता अगर मिन्नी के साथ आगरे न जाता। अगर न जान सका होता तो उस दिन क्या बतलाता जया मौसी को ? वे टकटकी बांधे हुए अजित को देखे जा रही थी···जैसे बार-बार कह रही हों—'बोल ?···बोल, क्या हुआ था मिन्नी के साथ···'

अचानक ही वह अपने हाथ से एक पेग बनाकर नीट ही गले में उंडेल गया था—उसकी आवाज भारी हो गयी थी—'मुझे भी पता न चलता मौसी, पर···पर मिन्नी उस दिन ऐसे उबल पडी थी कि मैं तो देखता ही रह गया था···शुरू-शुरू में विश्वास नही कर सका था कि सच वैसा भी होता है, पर···' वह जैसे बुरी तरह थककर सोफा-कुरसी से टिक गया था।

'हूं ?···' जया मौसी अपना पेग बना रही थी···

चार

वह देर तक नहीं सो सका था।

शायद वह भी नहीं सोयी होगी।

लाइट बुझाये हुए कितनी देर हो चुकी थी? अजित ने सोचा। शायद तीन···हो सकता है चार बज चुके हों?

बहुत रात हो गयी। उसने करवट बदली है। लवेंडर की हल्की महक अजित के नथुनों में समा जाती है···अनजाने ही करवट बदल लेता है। वह बेहद करीब है···बेहद! सहसा अजित अजीब-सा खिचाव महसूस करता हुआ उसकी बांह पर हाथ रख देता है। हौले से। लगा है कि वह सिहर गयी···

क्या अजित भी नहीं सिहर गया है?···उसे अपनी ही सांसें सुनायी पड़ती हैं। फिर मिन्नी की भी।

लगता है, अन्धेरा एक झटके से आलस फेंककर जाग पड़ा है।

'मिन्नी?' वह फुसफुसाता है।

'हूं।'

'सोयी नहीं?'

'नहीं।'

वह हथेली सहलाने लगता है उसकी बांह पर···धीमे-धीमे···एक तेज विद्युत-स्पर्श···!

चुप।

सांसें।

'तुझे भी नींद नहीं आ रही है ना?'

'कहां।'

चुप।

सन्नाटा।

'क्या सोच रहा है तू?'

'सोच रहा हूं—अगर तू नाहीं कर देती तो क्या कर सकते थे वे?'

'कुछ नहीं।...पर वैसा हुआ नहीं।'

'तूने गलती की।'

'शायद...'

'मैं उन्हें ऐसा नहीं समझता था।'

'किन्हें?'

'मास्साब को।

चुप।

'...विश्वास नहीं होता।' वह सहसा बड़बड़ा उठा है, बदन में अनायास ही अजब-सा गीलापन समा जाता है। बाह के ऊपर से बाह उठाकर वह करवट बदलता है। फिर से बड़बड़ाने लगा है—'...बिलकुल विश्वास नहीं होता...!'

'मैंने कहा था ना...पहली-पहली बार मुझे भी विश्वास नहीं हुआ था।' वह बुदबुदायी है। अजित चुप हो जाता है।

मिन्नी कहती है—'तू तो सुनकर विश्वास नहीं कर पा रहा है?...पर मैंने वह सब झेला है।'

अजित का चुप ज्यादा ही गहरा हो गया है। सोचता है—सच ही तो, उसने झेला है। एक अविश्वसनीय। अभी, घंटे भर पहले जब सब कुछ कहा था उसने, तब कई-कई बार अजित का मन हुआ था कि उसे टोक दे—'नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता!...'

पर हुआ होगा...जरूर हुआ होगा। मिन्नी की आवाज, आंखें, चेहरा सभी कुछ तो गवाही दे रहे थे? हुआ होगा!

'मैं तो कुछ भी नहीं समझती थी अजित।' वह फिर से बुदबुदा

उठी है।

चौंक गया है वह। वह भी नहीं भूल पा रही। कितनी नम आवाज थी ? शायद रोती हुई। मिन्नी किसी दिन मर जायेगी। अजित ने डरकर सोचा था। उठ पडा।

'क्या है ?' उसने पूछा।

अजित ने स्विच ऑन कर दिया था। आंखें मिचमिचाती हुई वह उठ बैठी, 'क्या हुआ ?'

'कुछ नही।' अजित पलंग पर आ बैठा। बीडी सुलगायी। कश खींचने-छोड़ने लगा।

वह चुपचाप लेट गयी। छत के पंखे पर टकटकी बांधे नज़रें लटकाये हुए।

छि !···अजित महसूस करता-करता आंखों की जलन भूल गया है। 'बिल्कुल अजीब और अविश्वसनीय।

अक्सर अविश्वसनीय ही सच होता है !···कलम बनर्जी और वह 'रेल डिब्बे' में चाय पी रहे थे उस दिन। सामने था अखबार। एक बेहद गन्दी पर चौंकनेवाली ख़बर थी। किसी मा ने अपने चारों बच्चों को जहर देने के बाद आत्महत्या का प्रयत्न किया पर बच गयी, तो पुलिस केस चलने पर कहा कि उसे सन्तोष है—बच्चे मर गये !···सारी अदालत स्तब्ध हो गयी थी। हत्यारी मा बोली थी—'मुझे सन्तोष है कि वे भिखारी नहीं बने ! मैंने वैसा होने ही नही दिया।' न वह रोयी, न खुश हुई।

अजित ने पढा था···फिर पढा। बड़बडाया था—'बकवास !···कोई मा भला ऐसा स्टेटमेंट दे सकती है ?···'

'पर उसने दिया है।' कलम बनर्जी ने बड़े आराम से कहा था।

'किस कदर सिहरा देने वाली बात है ?···बिल्कुल अविश्वसनीय !'

'मैंने कहीं पढ़ा था, अजित। सच हमेशा ही अविश्वसनीय होता है !'

बेशक होता है !···न होता तो मिन्नी के साथ वैसा होता ?···वह जल्दी-जल्दी बीड़ी धौंकने लगा था।

'तुझे अब भी भरोसा नहीं हो रहा ना ?'

वह चौंक गया। मिन्नी की ओर देखा। तकिये पर एक बांह रखे हुए आराम से लेटी वह इस तरह मुसकरा रही थी जैसे अजित बेवकूफ हो!

वह मुसकरा रही है? अजित ने कई बार पलकें झपकी-खोली थी। बीड़ी बुझादी।

कई बार आदमी ऐसे ही मुस्कराता है। शायद अपनी बेबसी पर। बल्कि बेबसी की इन्तिहा होती हैं ऐसी मुसकानें।

'तुझे याद है भरोसे और बिलिया वाली बात?···'

'कौन भरोसे?···वह बुदबुदाया है। सहसा याद हो आता है। मास्साब के मकान के ठीक सामनेवाले बाप-बेटी। सब जानते हैं कि भरोसे अपनी बेटी को विदा नहीं करता। पिछले दसियों साल से महल्ले में बिलिया के ससुरालवाले आकर झगड़ा करते हैं, गालिया बकते हैं, लौट जाते हैं···पर भरोसे विदा नहीं करता। सब जान चुके हैं। करेगा भी नहीं। झगडा क्या है—पहले-पहले न शायद अजित को समझ आता था, न मिन्नी को। फिर एक दिन समझ गये थे। एक बार जब किसीसे सुनने को मिला था कि बाप-बेटी के बीच अवैध सम्बन्ध है—तब अजित एकदम बौखला गया था। कहा था—'झूठ!···'फिर इस झूठ को एक रात सैकिंड शो देखकर लौटते समय अजित ने सच में भी देखा था। थप्पड खाया-सा देखता ही रह गया था। बहुत छटपटाया, बहुत झुंझलाया···पर सच तो सच ही होता है। वही अविश्वसनीय का चक्कर!

'···जब वह सब सच हो सकता है तो मैंने जो बतलाया, वह तो बहुत—बहुत ही छोटा सच है अजित!···'

'हूं?···' अजित की जैसे झपकी टूटती है।

मिन्नी एक गहरी, मीलों गहरी सांस खींचकर करवट बदलती है··· बुदबुदाती है—'दुनिया में सब कुछ सच है!···सब!···अब तो कुछ सुन-जानकर किसी बात पर झूठ कहने का भी मन नहीं होता!'

अजित चुप है। इस बार उसकी नजरें लटक गयी हैं पंखे से।

'लाइट बन्द करदे!···' वह बोली है।

'अच्छा।' अजित उठता है, लाइट बन्द कर देता है। अन्धेरे में फिर

से एक बीड़ी सुलगाकर कश लेने-छोड़ने लगा है···

बीड़ी की रोशनी अन्धेरे को किसी घाव के लाल मांस की तरह चीरती है। कुछ इस तरह लगता है कि बिस्तर पर लेटी मिन्नी की पीठ पर अचानक ही एक घाव-सा उग-उग आता है। कितनी खूबसूरत, गोरी, मासल पीठ···

और कितना गन्दा घाव !···मास का बड़ा फोड़ा।

कारबकल नाम का एक फोडा होता है—पीठ पर। गलता हुआ, पीव रिसाता फोड़ा। लम्बा, महंगा लगातार इलाज न मिले तो फोड़ा ठीक नही होता। बढता ही जाता है। बढते-बढते पूरी पीठ फोडकर सीने के पार पहुंच जाता है। कहते है, छाती, पसलियों और पेट से छोटे-छोटे सूराखों की शक्ल में भी मवाद रिसने लगता है···

काप उठा है अजित···

कश के साथ खिचा रोशनी का हल्का छोटा गोला···गोले के पार मिन्नी का बदन···बिलकुल कारबंकल फोडा !

सीने की तरफ से अनगिनत सूराखों से मिन्नी रिस रही होगी···थर्रा उठा है अजित।

इस मिन्नी के करीब सोना होगा। अजित डर रहा है। पर सोना होगा। सो सकेगा ?···

और वही सो पा रही होगी ? वह तो कब से नही सोयी होगी ! जब से आत्मा पर ये कारबकल उगा होगा तभी से।

बाहर गैलरी में होटल की दीवार घड़ी लगी है। जोर-जोर से घन्टे बजने लगे है—पाच !···

रुक-रुककर लोगों के बोलने, चलने की हल्की आहटें भी आ रही है। किस कदर जलने लगी है आंखें ? सारी रात नही सो सका।

अब क्या सोया जायेगा ? वह उठ पड़ा है। मिन्नी के करीब पहुचकर फुसफुसाता है, 'मिन्नी ?···ऐय् मिन्नी ?···सो गयी क्या ?'

उसके नथुने जोर-जोर से चल रहे हैं। शायद सो गयी।

अजित हौले से बिस्तर पर जगह टटोलकर लेट रहता है। आंखें मूंदता है। अब भी एक घंटा सो सके तो ठीक।

नहीं सो सकता !

सोया भी नही। उसकी जगह कोई भी होता, शायद नही सो पाता। थप्पड मार देनेवाला ऐसा सच जानकर भी कोई सो सकता है ?

कितनी अजीब बात !···जिस मिन्नी को कल्पना में लेकर कितनी ही वार वह उत्तेजना की बेबस हालत तक पहुचा है—वही मिन्नी उसके पास है। उसके कब्जे में। पर अजित ठंडा ! बर्फ !···

अजित को क्या हो रहा है ?

काश, मिन्नी वह सब न कहती···और अगर कह भी बैठी थी तो अजित उतना भावुक न होता।

मोठे बुआ ने उसे लेकर मालूम नही, क्या कुछ कहा होगा ? क्या सोचा होगा, पर मोठे नही जनता कि अजित और मिन्नी का यह साथ एक कड़वाहट भर रहा है···अजित ग्वालियर पहुंचेगा और जरूर वे कुछ बकेंगे। बहुत बकवास भी सुननी होगी, पर अजित चुप रहेगा···भला क्या कह सकेगा ?···

वह सब कहकर मिन्नी से विश्वासघात नही करेगा।

मिन्नी ने कहा था—'···तू हमेशा ही धिक्कारता रहा है ना मुझे ? गन्दी, घटिया और जलील समझता रहा है···मैं हूं भी, पर आज बतलाती हूं तुझे, क्यों हूं ?'

अजित ने नफरत से कहा था—'तू क्या समझती है मिन्नी, कि तू संवेदन के दो-चार थप्पड़ लगाकर मुझे पिघला लेगी ?···जो कुछ तू करती रही है, और जिसलिए यहा आयी है—उस सबसे मुझे सहमत कर लेगी ? ···अगर तू ऐसा सोचती है, तब पागल है ! मैं कभी तेरी इज्जत नही कर सकूगा !'

'मैने तुझसे इज्जत चाही भी कब है ?' मिन्नी ने पूछ लिया था।

'चाहती तो है···सब लड़कियां चाहती है, पर इज्जत देना आदमी के वश मे है क्या ?···वह श्रद्धा से पैदा होती है। और तेरे लिए मेरे मन में

श्रद्धा नहीं !'

'घृणा तो है ?' मिन्नी ने पूछा था।

'हा-अ्...शायद।' वह बुदबुदाया।

'तब तुझसे कुछ नहीं कहूंगी।' उसने कहा था।

'मत कह !' वह लापरवाही से लेट रहा था।

थोड़ी देर वह चुपचाप बैठी रही थी। और अजित सोचने लगा था—कैसी गड़बड़ की। जिस कहानी को खोजने के लिए वह कितनी ही बार परेशान हुआ है, मिन्नी खुद सुनाने वाली थी। वही कहानी अपनी ज़िद से बिसराये दे रहा है। उसने करवट बदली थी। कुछ बेचैनी महसूस की।

सुनने की जिस व्याकुलता से अजित गुजर रहा था, उससे कम अकुलाहट शायद मिन्नी के भीतर भी नहीं थी ? बोली थी—'तुझे मालूम है, पापा, मुझे क्यों सहते रहे हैं !'

अजित चुप रहा।

मिन्नी कहे गयी थी, 'इसलिए पापा यह सब होने से पहले ही सह चुके थे। उन्हें कुछ भी नहीं लगा होगा उस दिन, जिस दिन मुझे खुद ही इस रास्ते पर छोड़ आये थे।'

'थोड़ी देर पहले तूने कहा था कि उन्हें टी० बी० है...थर्ड स्टेज !...और उन्हीं की खातिर शायद तू यह सब...'

'वह तो है...पर क्या किसी बाप को टी० बी० हो तो वह बेटी की ये टी० बी० सह लेगा !'

अजित भौचक्का हो गया था...

'पर उन्होंने सह ली थी...असल में उन्हें खास नहीं सहना पड़ा होगा। पहली-पहली बार जब मम्मी को लेकर सहा होगा, तभी सहना सीख गये होंगे...'

अजित चुप हो गया है। चुप हुआ है या हो जाना पड़ा है—नहीं जानता। बस, इतना जानता है कि ठीक तरह मिन्नी को समझ नहीं पा रहा ..पूरी तरह देर तक समझ सका था। जब समझा तब नींद उड़ गयी...यह संभव है ? ..ऐसा हो सकता है ?...पर हुआ है—साक्षात् मिन्नी जो मौजूद है उसके सामने। उसके करीब !

अजित अजीब-सी छटपटाहट में गिरफ्तार करवटें बदलता रहा था। 'कितनी बार आंखें नहीं मूंदी थी ? पर आंखें मूंद लेने से अगर आदमी सो सकता तो बेसुधी की दवाइयां क्यों बिकतीं ?···ये नशे-पत्ते क्यों चलते ?···

एक बार सुकुल जमनाप्रसाद ने कहा था, 'तुम अक्सर पूछते हो ना अजित भइया, मैं भांग क्यों पीता हू ? और पीता भी हूं तो ऐसी अति क्यों कर देता हूं ?···उस कुतिया से पूछो ! भला कौन-सा मरद होगा अजित भइया, जो सोने-सी जोरू के बगल में अपने ऊपर भांग का भगौना उलट ले ?···पर मैं उलट लेता हूं ! ऐसे कि सुध ही नहीं रहती ! हरामजादी क्या कर रही है ? आसमान की तरफ उठी हुई है कि धरती में घुस गयी है···मेरी बला से !···'

अजित कुछ समझा था, कुछ नहीं ! उस दिन जमनाप्रसाद कुछ ज्यादा ही भावुक हो गया था। उसी तरह बड़बड़ाये गया था—'पहली-पहली बार रंडी बननेवाली औरत को जैसा लगता है ना, उससे कम पहली-पहली बार दल्लई करने वाले मरद को तकलीफ नहीं होती !···ऐसी ही तकलीफ जैसे पहली बार बाम्हन मास खाए !···बड़ी उबकाई आती है। घन्टों जी मिचलाता है···फिर आदत पड़ जाती है···इस को जब पहली बार टके सेर बिकते देखा था तो मेरे को भी बड़ा दरद हुआ, बड़ी उबकाई आयी ·· फिर लगा था कि बेकार ही अकुलाता हूं। ये बाजारू गोश्त तो बिकेगा ही···ताजे में महगा, बासे में सस्ता···मैं किसलिए दरद झेलूं, उबकाई लूं ?···मैं भी *भांग घोंट के बैठ गया ! जा स्साली भाड़ में। और अब कुछ* नहीं होता !'

अजित बिलकुल आज की ही तरह भौचक्क, स्तब्ध सुनता चला गया था·· बस, बीच में भूल से बुदबुदा पड़ा था एक बार, 'पर सुकुल भइया सुनहरी जीजी ऐसा करती क्यों हैं ?'

हिनहिनाकर हंसा था जमुना सुकुल, 'तुम भी खूब हो कि करती क्यों हैं ?' और उसने 'करती क्यों हैं ?' जिस तरह समझाया था, ठीक से समझ नहीं आया था अजित को। या यों कि समझने से पहले ही समझने की कोशिश जो करने लगा था इसीलिए समझकर भी समझ नहीं सका था···

मगर उस दिन मिन्नी से पूछने की जरूरत नहीं पड़ी थी। जितना कह

रही थी, उससे काफी कुछ आगे तक समझ पा रहा था, अजित। समझ पाया था, यही तकलीफ थी। उससे भी ज्यादा तकलीफ यह कि मास्साब को लेकर जहन में बसा रखा वह मासूम चेहरा अचानक ही विकृत होकर इतना गन्दला गया था, जिसे सह पाना कठिन ···छिः !···ऐसे है, मास्साब !

अजित इतना करीब रहा था मिन्नी के घर से—पर किसी बार इस पते तक नही पहुंचा ? वह अपने पर ही अविश्वास और हैरत से सोचता रह गया था !

और जया मौसी की तरफ से भी तो कुछ पता नही चला था कि मास्साब का यह चेहरा भी है···

लगा था कि काफी आगे तक पहुंच गया है···जया मौसी तो इस क़दर रहस्यमय थी कि उनका अपना चेहरा भी नही पचचान सका था अजित ··पहचानने लायक समझ-सोच ही नहीं था अजित के पास···

'···उन्हें ख़ास फरक नही पड़ा होगा, पहली-पहली बार जब मम्मी को लेकर सहा होगा तभी सहना सीख गए होगे···!'

यही तो कहा था मिन्नी ने।

और जो आगे कहा था, वह बेहद साफ···

'तुझे याद है ना, एक बार पापा मेरे लिए नीले फूलों वाली साड़ी लाये थे···बहुत महगी ? उस दिन तू भी तो था। कहा था कि मैं साड़ी पहनूं ?···'

'हां-हां···' अजित यांत्रिक भाव से बुदबुदाया था, 'याद है···'

'और जब मैंने कहा था कि मुझे साडी पहनने में शरम आती है तो कैसे गुस्सा हो गए थे वह ?···' मिन्नी बोली थी, 'एकदम बिगड़ पडे थे। इतनी बडी हो गयी है, कब तक ये फ्राकें पहनती रहेगी ?···'

'हा-अ्···'

अजित को याद आया था···उस दिन उसकी उपस्थिति में ही मास्साब ने एक झटके से मायादेवी की ओर साड़ी उछालते हुए कहा था, 'जरा भीतर

वाले कमरे में ले जाकर इसे पहनना सिखाओ…'

'आ !' मायादेवी ने साड़ी उठाली थी और मिन्नी की तरफ इस तरह देखा था, जैसे रस्से से बांधकर खीचे ले जा रही हों। अजित देखता रह गया था। मिन्नी उनके पीछे-पीछे कुनमुनाती, ऊं-आ करती खिंची चली गयी थी…

अजित सोचता रहा था—आज मिन्नी को पहली बार औरत की तरह देखेगा ! कैसी लगेगी ?…उसके भीतर एक खौलता हुआ कौतूहल था। मास्साब बड़बड़ा रहे थे, 'कभी न कभी तो हर लड़की को फ्राक छोड़नी ही पड़ती है…बस; एक उमर तक ही ठीक लगते हैं ये कपड़े…' सहसा अजित से बोल पड़े वह—'तू भी ये कभी-कभी जो निकर पहनता है, बन्द कर दे !…अच्छा नही लगता !'

अजित उनसे पहले ही सोच चुका था। तभी, जब उसने साड़ी पहनी हुई मिन्नी की कल्पना की थी। उसे निकर छोड़नी होगी। यह धींगामस्ती करता बदन कुछ अच्छा नही लगता।

और बाह थामे हुए मिन्नी को लगभग घसीटती हुई मायादेवी बरामदे में आ गयी थी। अजित का मन हुआ था 'वाह-वाह ! · ' कर उठे। फूलों वाली साड़ी में मिन्नी एकदम औरत लग रही थी। भरी-पूरी, खूबसूरत औरत। यही मिन्नी फ्राक में कैसी लगती थी ? लगता था कि कोई और है।

और मिन्नी नही जानती थी क्या कि वह कोई और हो गयी है ?… लाज के मारे बदन को इस तरह सिकोड़-लपेट रही थी कि बार-बार साड़ी ही छुटकती लगती…आंखें ऐसी बोझिल थी कि न अजित को देखते बनता था, न मास्साब को…यहा तक कि अपने को भी नही। गरदन यहा-वहा हिलाती-झुलाती ··

'ठीक !…' मास्साब ने कहा था—'अब साड़ी ही पहनाकर !…कल सक्सेना साहब के यहा चलेंगे—यही पहनना।'

'नही-ई…!' मिन्नी एक बेबस नाराजी के साथ बुदबुदायी थी।

'नही-नही, कुछ नहीं !…' मास्साब ने घुड़क दिया था उसे, 'यह फ्राक पहनकर क्या बात करूंगा ?…चुहिया-जैसी लगती है। किस बूते पर उनसे

तेरे इन्टर इम्तिहान की बात करूं ?···कहेंगे कि यह बच्ची सातवें दरजे की लगती है, इन्टर क्या करेगी ?'

मिन्नी को चुप हो जाना पड़ा था। क्या करती ? लगा था कि पिता का तर्क गलत नहीं है। मैट्रिक प्रायवेट करवाया था इस साल, फिर फौरन ही प्रायवेट इन्टर दिलवाये दे रहे थे। यानी बी० ए० में कुल चार साल की बचत हो जाएगी। कितनी लड़कियां होती हैं जो सोलह की उम्र में बी० ए० कर जायें ? पर मिन्नी कर जाएगी।

सक्सेना साहब के यहा जाना था तीसरे दिन। इन तीन दिनों में मिन्नी मां की पुरानी साड़ी पहनकर जैसे अभ्यास करती रही घर में···साड़ी सजोना, सवारना, सहेजे रखना···सक्सेना साहब के यहां यह नहीं लगना चाहिए कि पहले कभी पहनी नहीं। इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स थे वह। ऐसे-ऐसे नुस्खे जानते थे कि आदमी को पाच साल की उमर में इन्टर का सार्टीफिकेट दिलवा दें। मास्साब को बहुत मानते थे। उम्र भी कम नहीं। रिटायरमेंट के करीब। अगले तीन-चार साल के भीतर रिटायर हो लेंगे। पर पापा कहते थे—'सक्सेना पैंठवाला आदमी है। रिटायर होकर भी पूरे दो साल का ऐक्सटेंशन लेगा···देख लेना !'

मायादेवी खुश होती, 'इसका मतलब है कि जाते-जाते अपनी मिन्नी को न सिर्फ काम से लगवा जायेंगे, बल्कि प्रमोशन भी दिलवा सकेंगे ··'

'हां !·· '

मिन्नी सुनती। खुश हो लेती। सब कुछ इसी तरह जल्दी-जल्दी होता गया तो सब कुछ बदल देगी। उसकी निगाहें घर के दरोदीवार देखने लगती। पापा की इतने-इतने लोगों से जान-पहचान है। थानेदार, इंस्पेक्टर, तहसीलदार, नेता लोग···कभी-कभी कोई घर आ जाता है तो कैसी हड़बड़ी महसूस होने लगती है ? पड़ोस से कप-लसी मांगने पड़ते हैं। काच के गिलास भी एक-जैसे नहीं है। कई सालों से घर की पुताई नहीं हुई। चादरें फट चुकी हैं। तसवीरों की फ्रेमों में घुन लग गया है···खुद मिन्नी के पास ही गिनती की चार-छह फ्राकें हैं, जोड़ी भर शलवार-कमीज। सब कुछ पुराना, भद्दा और बदरंग हो गया है···चार तनखाहों में ही सब कुछ लोट-पलट हो जाएगा। फिर ये गुड़ की चाय, देशी काढे का इलाज, और

देशी मन्डासघर···सभी कुछ बदल जायेगा ! मिन्नी सोचती और फूलों वाली साड़ी की ही तरह बदन के हर हिस्से में फूल खिलते महसूस करती।···

और सचमुच सभी कुछ जल्दी-जल्दी हो रहा था···इतनी जल्दी कि मिन्नी को ही विश्वास न हो पाता !

तीसरे दिन शाम को हल्के धुधलके से पहले ही मास्साब बड़बड़ाने लगे थे—'बड़े आदमी है···भगवान का दिया सब कुछ है। अफसरी है, रोब-दाब है और किसी का भलाबुरा करने की कलमिया ताकत भी है। जरा सोच-समझ के, झुककर व्यवहार करना होगा। ऐसी कोई बात न हो कि बाद में शिकायत सुनने को मिले···'

मिन्नी हर हिदायत मन्ने उतारती गयी थी। वह क्या इतना भी नही जानती ? सक्सेना साहब की खुशी में ही उसकी खुशी है। वह इन्टर करवा देंगे और फिर सीधे विक्टोरिया कालिज ··एक झूम भर गयी थी बदन मे। कहा सोचा था कि इतनी जल्दी कालिज आ जाएगा जीवन मे ?···या कि कालिज के जीवन में मिन्नी पहुंच सकेगी ? पर सच ही कहती थी मम्मी। 'आदमी चाहे तो जिन्दगी बहुत आसान हो सकती है, पर जरा सोच-समझकर चले—बस !···'

मिन्नी को जया मौसी पर झुंझलाहट आती। कैसा बचपना किया ? चाहती तो सब कुछ हो सकता था !

मायादेवी बुदबुदाती—'उसका तो भाग ही खराब था !···फिर जिसके भाग मे ही नरक लिक्खा हो, उसे कोई कैसे सुरग मे रख सकता है ?···'

'उसका जिक्र मत किया करो, माया ! ··दुख होता है मुझे !' मास्साब का चेहरा तकलीफ की इतनी गहरी घाटियों मे उतर जाता कि धुधलाया हुआ दीखने लगता। मिन्नी जया मौसी को लेकर चिढती, चिढती जाती ·· यहां तक कि नफरत करने लगती !

'चलो छोड़ो ! ··जो बीत गयी, सो बात गयी !' मास्साब बुदबुदाते, 'अब इसकी तरफ देखो। समझ से काम लेगी तो न सिर्फ इस घर का भला करेगी, बल्कि दूसरा घर भी सुधार देगी। कोई हरामजादा दहेज

की बात करने आयेगा तो कह दूंगा ढाई-तीन सौ माहवार कमानेवाली बेटी दे रहा हूं···लगालो पचपन साल का पैसा ! यह सब मिन्नी का दहेज !··· पूरे—पचास हजार होते हैं !···है कोई स्साला जो अपनी बेटी को इतना दहेज दे ··बाईस-चौबीस की होते-न होते हैडमिस्ट्रेस तो हो ही जायेगी ·· बस, स्पीड यही रहनी चाहिए !'

हैडमिस्ट्रेस ! ··मिन्नी—हैडमिस्ट्रेस ! मिन्नी के भीतर दुगने फूल खिल आते। क्या हिसाब है, क्या स्पीड है···इस सबसे मिन्नी को कोई सरोकार नहीं था। सरोकार था सिर्फ तरक्की से। उसकी तरक्की पूरे घर की तरक्की।

और एक मिन्नी, घर, मास्साब, मायादेवी···यही कुछ तो नहीं टिका था मिन्नी पर। बड़े भाई की नौकरी भी उसके हाथ थी। सक्सेना साहब से ऐसे ही सम्बन्ध बने रहे तो जादू-मंतर की तरह एक के बाद एक काम करते जायेंगे···

और जैसे सम्बन्ध हैं, उनमें कठिन नहीं। मिन्नी ने सोचा था।

मायादेवी ने खुद अपने हाथों से सजाया-सवारा था उसे। चोटी गूंथती हुई समझाये गयी थीं—'देख !···उनके घर कोई औरत-बच्चा तो है नहीं। नौकर के हाथ का खाते है। तेरे पापा कह रहे थे कि बोले है—शाम को मिन्नी के हाथ का खायेंगे !···ऐसे बनाना कि अंगुलियां चाटने लगें। ··'

मिन्नी चुप थी ··बस जैसे मानसिक रूप से अपने आपको तैयार किये जा रही थी। कितने घन्टे दिन तो हो चुके थे ? ··सक्सेना साहब के स्वभाव, बोलचाल, उम्र, आदतें सभी कुछ सुनने-जानने को मिल चुके थे। इन सब को मद्देनजर रखते हुए ही व्यवहार करना होगा। इस तरह कि सब ओर से मिन्नी की वाह-वाह कर उठें !

और मिन्नी यह 'वाह-वाह' करवा देगी। यही निश्चय किया था उसने।

जो आदमी गैरकानूनी ढंग से इन्टर का फार्म मंजूर करवा सकता है, वह इन्टर भी यूं करवा सकता है !···'मायादेवी ने चुटकी बजायी ···मिन्नी को लगा था कि उस आवाज के साथ ही इन्टर पास कर गयी

मायादेवी कहे गयी थी—'फिर क्या है ? बी० ए० कोई बड़ी बात थोड़े है ? एक झटके में कर लेगी। उसके बाद सक्सेना साहब हैं ही…'

और मिन्नी उठ पड़ी थी…शीशे में अपने को ही निहारती, मुसकराती हुई। इस तरह मुड़ी थी कि जलते बल्ब की रोशनी से शीशे को बचाकर ठीक तरह अपने को देख सके। सचमुच कितनी अच्छी तो लग रही है…उसे खुद पर ही प्यार हो आया था। पल्लू सवारकर बरामदे में आयी थी—'पापा ?…'

'हाअ् ''चल् !'

मास्साब उठ खड़े हुए। खुद भी नया कुरता-पाजामा पहन रखा था उन्होंने। कभी-कभी ही पहनते थे। धोवी के यहां धुला हुआ। वह भी ठीक लग रहे हैं। मिन्नी ने सोचा था। सीढ़ियों की तरफ बढ़ गयी। साड़ी दोनों पैरों के बीच से मुट्ठी में कसकर सीढ़ियां पार करते हुए कैसे इठलाहट महसूस हो रही थी उसे अपने भीतर ?…अनचाहे ही रह-रहकर मुसकरा पड़ती।

महाराजबाड़े से तांगा कर लिया था। मुरार में रहते थे सक्सेना साहब। इतना ही सुना था।

फिर जगह देखी। कैसी एकांत जगह है ?…मास्साब बोले थे—'साहित्यिक रुचि के आदमी है। गोविन्द सक्सेना के नाम से कविताएं छपती है, कभी पढ़ी नही तू ने ?'

मिन्नी को याद नही, पर बुदबुदाकर कहा था—'हां-हां…'

'कवियों का रहन-सहन, सोच-समझ ही अलग होते है।' मास्साब तांगे का भुगतान करके मकान की ओर बढ़ गये थे।

मिन्नी संकोच से सहमी-सिकुड़ी पीछे-पीछे…

सड़क से उतरकर ढलान में पगडन्डी के पार वह दो मंजिला मकान दीख रहा था…इर्द-गिर्द खेत। मास्साब आगे-आगे चलते हुए बड़बड़ा रहे थे—'…ऐसी जगह चुनी है रहने के लिए कि चारों तरफ प्रकृति के रंग

बिखरे हुए हैं।···क्या टेस्ट होता है इन कवि लोगों का भी ? वाह वाह !—'

सचमुच बढ़िया जगह। मिन्नी ने भी सोचा था। बस एक ही बात है। शाम के साथ ही सन्नाटा हो जाता होगा। अभी आठ नहीं बजे हैं, पर ऐसे लग रहा है जैसे आधी रात हो गयी हो।

दो मंजिले मकान के बरामदे और ऊपरवाले कमरे में रोशनी।

'अपुन थोड़े लेट हो गये !···' मास्साब ने दरवाजे के पास पहुंचकर काल बेल दबायी थी। मिन्नी चुप। भीतर से पुकार आयी, 'कौन ?' फिर सिटकनी खुली। धारियोंदार कमीज-पाजामा पहने हुए करीब पचास-बावन साल का आदमी सामने। मास्साब को देखते ही एकदम बुदबुदाया था—'अरे, भटनागर ?···' फिर मिन्नी पर एक नजर उछाली थी उसने। मिन्नी ने हाथ जोड़ दिये थे—'नमस्ते !'

'नमस्ते-नमस्ते !···आओ। आओ !' वह पीछे हटा था। वे भीतर पहुंचे। दरवाजा बन्द कर दिया था उसने। फिर सोफा-कुरसी की ओर संकेत करता हुआ बोला था, 'मैं तो समझा था तुम भूल गये···'

'अरे नहीं-नहीं। ऐसा कैसे हो सकता था साहब ?' मास्साब ने कहा था।

'वही तो ··वही तो···' वह अकारण हंसे जा रहा था। बार-बार मिन्नी को देखता ··वह सहम जाती। व्यर्थ ही मुसकरा उठती। याद रखना होगा कि सक्सेना खुश रहे। इस सक्सेना पर कितना कुछ टिका हुआ है ? ··इन्टर, इन्टर में डिवीजन, मिस्ट्रेस, सेकिन्ड हैड मिस्ट्रेस, हैड-मिस्ट्रेस · नब्बे, डेढ़ सौ फिर ढाई सौ···सब कुछ बहुत कीमती !

'मुझे तो लग रहा था कि आज तुमने मेरा अनशन करवा दिया !··· है-है-है ··' वह हंसा था, मिन्नी को देखा। कहा—'मीनाक्षी से खाना खाने के चक्कर में—दोऊ दीन से गये पाड़े, हलुआ मिले न मांड़े ·· हे-हे-हे···!'

कितने पीले दांत थे उसके ?···मिन्नी ने घिन से सोचा था। कविता लिखता है। अखबारों में छपती भी है। फिर लगा कि कवि लोग हैं। ऐसे ही रहते हैं। इतना क्या कम है कि उसने शेव बना रखी है ? वरना कवियों

के बारे में तो सुना है, नहाना-धोना भी भूल जाते हैं। अपने में ही इतने खोये रहते हैं कि घर-बाहर का कुछ ध्यान रहता ही नहीं। सक्सेना के तो सिर्फ दांत ही पीले हैं···

मगर सिर्फ दांत ही पीले नहीं थे उसके। कीचड़ भी आता था एक आंख मे। बहुत,बाद में पता चला था मिन्नी को। जब पता चला था तब वह खुद इतनी कीचड में नहा चुकी थी कि सक्सेना की आख का कीचड़ तो क्या कीचड तक बुरा लगना बन्द हो गया था।

सक्सेना ने कहा था—'तुम्हे किचिन बतला दूं ?···' वह मिन्नी को देख रहा था।

'हा-हां।' मास्साब बड़बड़ाये।

'आओ।'

मिनी साडी सभालती उठ खड़ी हुई।

वह आगे हो लिया। कमरे सब सजे-संवरे थे। कीमती सामान भी। चपरासी रहता होगा यहा। पर इस समय नहीं।

सक्सेना ने किचिन में लाकर कहा था—'आटा गुंधा रखा है। मैंने चपरासी से कह दिया था। मीट फ्रिज में है। साफ-सुथरा···और···और तुम्हे ऐतराज न हो तो जरा ट्रे मे दो खाली गिलास और एक भरा जग रखकर बैठक मे पहुंचा देना। तुम्हारे पापा से बहुत अर्से बाद मिलना हुआ है···हे-हें-हे···'

समझ गयी थी मिन्नी। खाली गिलास और जग···का मतलब है—दारू! यह दारू नयी नहीं। अक्सर पापा पीते थे। घर पर कभी-कभार, तब जब कुन्दन दर्जी ले आता था। पर वह देशी लाता था—ठर्रा!··· आज शायद···

और तभी मिन्नी ने देखा था, वह किचिन की ही एक अलमारी से अंग्रेजी शराब की बोतल निकालकर बैठक की ओर बढ गया था—'यह मैं लिये जा रहा हूं ··ठीक ?' मिन्नी पर न बोलते बना था, न मुस्कराते ·· साडी बार-बार ध्यान बटा लेती थी उसका। लगा था कि इस साडी मे खाना बनाते हुए बहुत असुविधा होगी···

पर इसके यहां तो कोई औरत भी नहीं। होती तो कोई साड़ी,

गाउन···

पर बहुत समझदार सक्सेना है साहब। बैठक से चिल्लाये थे—'अरे, संकोच नही करना मीनाक्षी! ··पास वाले कमरे में कपडे है। चाहो तो बदल लो।'

कहा से आये कपड़े? वह सोचने लगी थी। मायादेवी ने तो बतलाया था— रडुआ है! ब्याह होते ही औरत मर गयी थी, फिर शादी ही नही की उसने। ऐसे ही जिन्दगी बितादी। आगे नाथ न पीछे पगहा···पता नही कैसे जिन्दगी काट लेते है लोग! ··पर एक बात है—ऐसे लोगो के मन में दया-ममता बहुत पैदा हो जाती है।'

और मिन्नी ने सोचा था—ठीक ही तो है। जिन अभावो मे रहते होंगे, उन अभावों को दूसरो में खोजकर सन्तोष करते होगे।—इसी तरह बहिन, बेटी की जगह भर लिया करते होगे। मिन्नी को सोचकर अच्छा लगा था।

पर अजीब है आदमी। जनाना कपडे रख रखे है इसने।

जवाब भी मिला था—'कभी-कभी मिसेज वाकणकर आ जाती है।' वह मास्साब को बतला रहा था—'उनके तो कोई है नही। अकेली है। लिखने-पढने का टैस्ट है। यही ठहरती है। अपने लिए उन्होंने एकाध जोडा रख छोड़ा है। फिर आजकल तो आयी हुई है···'

'आयी है ··?' मास्साब कुछ सकपकाये से पूछ रहे थे।

'हा, कल शाम ही आ गयी थी।' वह बोला था—'फिल्म देखने गयी हैं। मैं भी जाता, पर सोचा कि तुम्हे टाइम दे रखा है।' सहमा वह चिल्लाया था—'अरे, भई मीनाक्षी···वह पानी, गिलास···'

और मिन्नी को याद आ गया था। जल्दी से जग भरा, गिलास ट्रे में रखे और ड्राइंगरूम की ओर बढ गयी ··

वह बेचैनी से बोतल टटोल रहा था···

ये पीनेवाले भी खूब होते है। मिन्नी ने सोचा था। शराब हाथ आयी नही कि बस, ऐसे पागल हो जायेंगे।

ट्रे रखकर लौट गयी थी। उसने कहा था—'मिसेज वाकणकर के कुछ न कुछ कपडे जरूर पडे होंगे, साथवाले कमरे मे। चाहो तो···'

'हां-हां···सहूलियत रहेगी बेटी !' पीछे से जैसे मास्साब ने हांका लगाया था।

'कपड़े बदल लो तो सलाद दे जाना···' वह बोला। ऐसे जैसे मिन्नी को बरसों से जानता हो। उसके बोलने, देखने में ऐसा कुछ भी नहीं था जिससे लगे कि पहली-पहली बार भेंट हुई है। असल में कारण है मिन्नी के पापा। बरसों से परिचय है उनका। बिलकुल घर जैसा मामला···मिन्नी का संकोच इस खयाल से काफी कुछ टूट गया था। उसने बगल के कमरे में जाकर कपड़े देखे थे···

टेबल पर काफी जनाना साजोसामान बिखरा पड़ा था। गाउन, ब्रेसरी, ब्लाउज ··साड़ी···क्रीम, पाउडर। एक ओर तेल की शीशी खुली पड़ी थी। सब कुछ महंगा। मिन्नी को बड़ी हैरत हुई, उससे कहीं ज्यादा संकोच। ये मिसेज वाकणकर कौन है ? बड़ी अजीब-सी है। एक तो सुनसान घर में पराये मर्द के साथ आ ठहरती है, फिर इस तरह अपने अन्डर-क्लोथ्स छोड़ देती है ?···एकदम अजीब और बदतहजीब ! मिन्नी के अपने बदन में एक सुरसुरी हुई थी। कैसी होगी मिसेज वाकणकर ?

कुछ चिढ़ और घिन से उसने नाक सिकोड ली थी—होगी !···गाउन उठाकर पहन लिया था। किचिन में आ गयी। जल्दी-जल्दी सब निबटाना होगा। मायादेवी ने कहा था—'मर्द कुछ बातों से ही खुश होता है। औरत का बनावसिंगार, बोलचाल और सलीका ?···अगर उसके खाने में रस हो तब तो कहना ही क्या !···'

सक्सेना बूढ़ा है, पर है तो मर्द। उसकी खुशी-नाखुशी इन्हीं बातों पर निर्भर है। मिन्नी को सब कुछ बहुत संभलकर करना होगा।

ये मिसेज वाकणकर और सक्सेना के बीच कुछ गड़बड़ लगती है। अचानक ही वह सोचने लगी थी। फिर अपने ही बोल गयी थी—हो !··· उसे क्या !···आखिर अकेला आदमी है···कवि है, अफसर है, पर है तो आदमी ··दस-बीस साल से चल रहा होगा। निभ रहा है।

मिन्नी को इस सबसे माथा खराब करने की कोई जरूरत नहीं।

वह किचिन में आ गयी। मीट चढ़ा दिया था उसने। सलाद काटकर ड्राइंग-रूम में पहुंचाया।

गिलास भरे हुए वे ठहाके लगा रहे थे···मास्साब कभी नहीं हंसते। पर चार घूट गले उतर जायें तो जैसे बदन के हर रंध्र से हंसी झरने लगती है···ऐसे-ऐसे जोक करेंगे कि बस्स् !···भूल ही जाते है कि बूढे है।

मिन्नी को सन्तोष होता है। आखिर थोड़ी देर के लिए ही सही, पर मास्साब हंस लेते है। वरना हसने लायक है ही क्या उनकी जिन्दगी मे। देशी दवाइयां है, हमेशा चलता रहने वाला परहेजी खाना है और मम्मी की झिक्-झिक् है···

वह किचिन मे आकर जुट गयी थी···अनायास फिर से याद हो आया था उसे। बगल के कमरे मे कुर्सी की पीठ पर ब्रेसरी को झंडे की तरह फहराते छोड गयी है मिसेज वाकणकर···

कैसी औरत होगी वह ?···तवा चढाते हुए मिन्नी ने सोचा था।

बडी अजीब औरत थी मिसेज वाकणकर !···

मिन्नी तो उसे देखकर हक्की-बक्की देखती ही रह गयी थी। बैल बजी तभी चौक गयी थी वह। वही आ गयी होगी···रोटी तवे पर ही छोडकर किचिन के दरवाजे से जा सटी थी मिन्नी। अजब-सा कौतूहल था देखने का·· कैसी है ? उम्र ? रग, नाक-नक्शा···? जो सामान बगल के कमरे में था—उससे तो बडी शौकीन मिजाज़ लगती थी। बुढापे में जवानी का धोखा देती या खाती औरत लगती है···उसने सोचा था।

पर स्तब्ध रह गयी मिसेज वाकणकर को देखकर। बाप रे !···एकदम जवान ! जवान नही, अधेड़ होगी, पर अपने को बना-सहेज रखा है कम्बख्त ने !···शर्म नही आती इसे—एक बुढऊ के साथ एकांत घर में ठहरती है ?···मिन्नी ने चिढके साथ सोचा था।

वह गुलाबी जार्जट की साडी पहने हुए थी। गोरा रग, लिपस्टिक इतना गहरा कि लगता था दो लाल रंग के कागजी होंठ चिपका दिये गये है चेहरे पर। आंखों मे काजल, भौंह कुछ इस तरह बनायी गयी कि लम्बाई देकर कमान की तरह तनी हुई···बड़ी छिछोरी लगती है।

सक्सेना ने कहा था—'बड़ी देर की तुमने ?···'

'स्टेशन से टहलती आयी हूं···' वह चहकती हुई इस तरह मास्साब के पास सोफे में फैल गयी थी जैसे मास्साब होकर भी नहीं है। अस्तित्वहीन।' मिन्नी ने देखा था कि भौचक्के से खड़े हुए थे वह।

और मिन्नी क्या कम भौचक हो गयी थी ? खयाल ही नही रहा था कि तवे पर रोटी जलने लगी होगी ? स्टेशन से टहलती चली आयी ? क्या हिम्मती औरत ? अकेली, रात, इस अन्धेरे में ?···मिन्नी का मुंह ही खुला रह गया।

सक्सेना परिचय करा रहा था, 'ये है मेरे दोस्त राजनाथ भटनागर··· मैंने आज कहा था ना तुमसे आनेवाले हैं···'

'हा-हा···' वह बडबड़ायी थी, 'इनकी बेटी भी तो आनेवाली थी ?'

'वह किचिन मे है।'

'अरे, बड़े अजीब आदमी हो तुम !' मिसेज वाकणकर एकदम उठ पडी थी, वडी आधिकारिक नाराजी व्यक्त करते हुए बोली थी—'लड़की पहली वार तुम्हारे घर आयी है और तुमने उसे किचिन में घुसा दिया ?···' फिर वह किचिन की ओर बढ गयी थी। घबरायी मिन्नी एकदम लौटी।' रोटी तवे से उतारी···तब तक पीछे से जैसे गिद्ध की तरह झपट आयी वह। 'अरे-रे ··! रोटी जल गयी !···खैर, कोई बात नही। यह सक्सेना तो एकदम ही भौड़म है ··औरतो की इज्जत करना जानता ही नही।' वह मिन्नी के पास आ गयी थी, 'चलो, हटो ! ··मैं बनाती हूं। तुम आराम करो ··अरे, आयी हो घर मे तो क्या काम में जोती जाओगी ? ··च्चु-च्चु, चलो ! · '

'नही-नही, कोई बात नही ··आप ··आप परेशान मत होइए···' मिन्नी एकदम से सिटपिटा गयी थी। मिसेज वाकणकर को तो संकोच ही नही है। इस तरह प्यार से बोल रही है, जैसे मिन्नी उसकी अपनी बहिन-बेटी है। अधिकार भी उतना ही।

वह बोली थी—'उहूं !···मेरे रहते नही। जाओ, तुम कमरे मे बैठो।' उन सबके साथ ··बस, मैं अभी आती हूं।' कहकर उसने गैस बन्द कर दी थी। मिन्नी हतप्रभ देखती ही रह गयी।

वह मिन्नी को लेकर अपने कमरे मे चली आयी थी···मिन्नी सहमी-सी खड़ी रही। कुछ घबरायी हुई, कुछ परेशान।

मिसेज वाकणकर ने एक झटके मे वदन से साड़ी नोचकर दूर फेंक दी थी। मिन्नी ज्यादा ही सहम गयी। आखें झुकाली थी उसने। वदन सुरसुरी से भर उठा। कितनी अजीब औरत है। उसे मिन्नी के सामने इस तरह कपड़ा बदलते लाज नही आयी ?···वह हंसी थी, 'शरम आ रही है ? पगली !···क्या नाम है तेरा ?'

'मी···मीनाक्षी।'

'मिन्नी कहूं तो चलेगा ?' वह दूसरी साड़ी पहन रही थी।

'सब मिन्नी ही तो कहते हैं मुझे।'

'गुड !···इसको कहते है, दिल से दिल को राहत होना···जरूर तेरा-मेरा कोई पूरवजनम का संस्कार है। न होता तो भला मिन्नी ही कहने का मन क्यों होता मेरा ? वही नाम, जो सब कहते है। है ना ?'

उसने मिन्नी को दोनों वाहों मे थाम लिया था आकर। आवाज मीठी थी उसकी। बिलकुल अधिकार और अपनापे से भरी हुई। मिन्नी ने उसे देखा—अच्छी लगी। वह उसे इस तरह देख रही थी जैसे कोई मर्द औरत को निहारता है। होले से ठोढी ऊपर उठाकर उसने मुग्ध भाव से देखा था मिन्नी को ··मिन्नी लाल हो उठी। उसने दन् से चूम लिया था उसे. 'च् !···क्या चेहरा है तेरा। सुन्दर !···'

डरकर कांपी वह। ये···ये कैसी औरत है ? थरथराकर सोचना पडा था उसे।

'बहुत खूबसूरत !' फिर वह मिन्नी को अपने साथ किचिन मे खींच लायी थी। इस तरह जुट गयी, जैसे यह किचिन उसका बहुत जाना-पहचाना हो। सब कुछ देखकर कहा था, 'अरे ?···तेरे तो हाथो में भी फुर्ती है मिन्नी ! मटन-शटन, सब बना डाला तूने ? वाह !···आई-ग् ?'

इस 'आई-ग्' को जानती है मिन्नी। जब-जब महाराष्ट्रीयन औरतें विस्मय या चौंकने का भाव प्रकट करती है ये 'आई-ग्' उनके मुह से हुप-हुप की तरह निकलता है। मुसकरा दी। पर गाल पर जडे मिसेज वाकणकर के चुम्बन का अहसास कुछ ऐसा सहराने वाला था कि ठीक से-

पर रख गयी। बड़बड़ाती हुई, 'सक्सेना ! तुमको बिलकुल मैनर्स ही नहीं हैं !···एकदम मैनरलेस !'

सक्सेना ने चौंककर उन्हें देखा।

मिसेज़ वाकणकर ने मुसकराते हुए कहा था—'अरे देखते क्या हो, लड़की बैठी है। गिलास बनाओ। तब तक मैं भी आती हूँ···'

'आ-ह् !·· हो। सारी ! रेयली आय एम सारी !' सक्सेना ने दोनों गिलासों में व्हिस्की उड़ेल दी। खासे पैग। मिन्नी बुरी तरह घबरा गयी। किसके लिए ?···माथा ठनका। डरकर पिता को देखा। वह गंभीर थे। सक्सेना ने पानी डाला···कहा, 'टेक इट मिन्नी !' फिर गिलास हवा में उठा दिया, 'चियर्स ?···इन योअर रिसेप्शन···! चियर्स !'

मिन्नी रुआंसी हो गयी। शब्द होते हुए भी नहीं। डरी हुई मास्साब को देखने लगी।

मास्साब ने कहा था, 'ले लो···फार सोसायटी सेक—लो !···'

कानों पर विश्वास नहीं हुआ था मिन्नी को।

'लो भी !···' सक्सेना कह रहा था। सहसा वह मास्साब की ओर मुड़ा, 'कमाल है यार राजनाथ !···तुमने छोकरी को एकदम बिराम्हिन बना दिया !···नहीं ?'

'नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।···पर बात है। मिन्नी है ही बेचारी भोली-भाली···'

'अरे भाई, भोली-भाली होना ठीक···पर लाइफ रन करनी है इसे। सोसायटी में मूव करना है। राइज करना है···तुम क्या अपने ही क्लास में घोंट घोंट कर मार डालना चाहते हो बच्चों को ?···' फिर वह मिन्नी की ओर मुड़ा था, 'लो मीनाक्षी !··· टेक इट ईजी।···पापा कुछ नहीं कहेंगे। अब तुम छोटी नहीं हो।···यू आर क्वाइट मेच्योर गर्ल ?···वैरी रिस्पान्सिबुल ! है ना भटनागर ?'

'हां-हां···यस-यस !' मास्साब ने नजरें चुरायी थीं। जल्दी से अपना पैग खाली कर दिया। आंखें मुंद गयीं उनकी। मिन्नी ने देखा—चेहरा भी कुछ खिंच गया है। एक पल के लिए जबड़ों पर कसाव आया था, पर घूंट उतरते ही राहत···

'भई कहो इससे !...'

'ले लो बेटी !...सकोच नहीं।' मास्साब हिलने लगे थे, 'ले लो !... कभी-कभी सोसायटी में साथ देना चाहिए। लो !' वह सलाद चबाने लगे।

मिन्नी की आंखें छलक आयीं। डर लगा कि कहीं वह रो न पड़े... पर रोना थामना होगा। औरत और शराब ?...छिः !...इसका मतलब है कि मिसेज वाकणकर पीती है ? उसे मास्साब पर गुस्सा आया। विश्वास नहीं हो रहा है। शायद नशे में कह रहे हैं। वरना भला कोई बाप बेटी से इस तरह कहेगा कि शराब पी ?...न-न !...सब नशे में हो रहा है। बहुत हिम्मत सहेजकर कहा था उसने, 'माफ कीजिए...मैं-मैं नहीं पीती !'

'नहीं पीती ?...फाइन !...यह तो बहुत ही अच्छी बात है कि तुम नहीं पीती। पीने की आदत होना भी नहीं चाहिए !...क्यों भटनागर ? दिस इज फाइन !' सक्सेना बड़बड़ाए जाता है, 'पर सोसायटी में मूव करना जरूर आना चाहिए !...ऐसे मौके हमेशा थोड़े ही आते हैं।'

'हां-हां, हमेशा नहीं आते।'

'बिलकुल !'

'पर मैं...मैंने तो कभी पी ही नहीं।' वह बस, रो ही पड़ी थी।

'ओ-ओ...शी इज इनोसेंट !' सक्सेना एकदम से भावुक हो गया था। 'एकदम इनोसेन्ट। पर मीनाक्षी...डान्ट बी सो इमोशनल !...अभी तुमको बहुत बड़े-बड़े काम करने हैं जिन्दगी में। मिनिट-मिनिट जिन्दगी तल्ख होती जाएगी। और जहर को जहर काटता है...इसमें ऐसी कोई बात नहीं है। ले लो।'

'हां, ले लो। मैं कह रहा हूं बेटी, ले लो !...'मास्साब ने हिलते हाथ से गिलास उठाया, बेटी की ओर बढ़ा दिया।

किसी सांप की तरह वह हिलता हाथ देखा था मिन्नी ने। भय से आंखें फैल गयी थीं। पीला, कुछ कत्थईपन लिए हुए वह पानी हिल रहा था... मिन्नी भी हिल रही थी। उसके पूरे शरीर में थरथराहट हो रही थी... थामने की कोशिश के बावजूद नहीं थम रही थी।

मिसेज वाकणकर सलाद की एक प्लेट लिए आ धमकी...

'देखो, मैं नाराज हो जाऊंगी। मैं बहुत सेन्टीमेंटल आदमी हूं—यू

नो ?' सक्सेना ने आजिजी से गर्दन हिलाते हुए, एक तरह से पूरे हिलते हुए कहा।

'क्या बात है ?' मिसेज वाकणकर ने पूछा।

'देखो तो अरू, यह ले ही नही रही है ?···पगली ! डरती है ? ऐं ?' सक्सेना बड़बड़ाया।

और मिसेज वाकणकर ने मिन्नी की ओर देखा। कुछ हैरत, कुछ गुस्से से। मिन्नी ने इस आशा से उन्हें देखा जैसे कह रही हो —'मुझे बचा लीजिए ना दीदी ?·· प्लीज़ ! तुम तो जानती ही हो, जिस लड़की ने कभी · '

मिसेज वाकणकर ने कहा, 'दिस इज नाट द वे सक्सेना ! · लड़की इनोसेन्ट है। और फिर ट्रेडीशनल सिटी मे रहती है। और इस बैकवर्ड सिटी मे तुम्हें उम्मीद ही क्यो करनी चाहिए कि इस तरह तुम किसी को प्रेशराइज करके मैनर्स सिखा सकते हो ! ···' सहसा वह मिन्नी की ओर मुड़ी थी, 'मिन्नी ! अपना पैग उठाओ ··एण्ड कम विद मी ! अपने लोग अलग बैठेंगे। फिर अपनी अलग तरह की बाते होती है। ओ० के० ?' वह अपना गिलास और सलाद की प्लेट उठाकर खड़ी हो गयी।

मिन्नी सहमी, पर ज्यादा भयभीत उन्हे देखती रही। उसने आसू भी पोंछ लिए। बहुत कोशिश के बाद छलक आये थे।

मिसेज वाकणकर गिलास और प्लेट थामे खड़ी थी, 'उठो !·· कम आन !'

मिन्नी ने चोर नज़रों से सक्सेना, फिर मास्साब को देखा। गिलास एक झटके मे पकड़कर उठाया, एकदम उठ पडी। उसकी सास फूल गयी थी।

'गुड !' मिसेज़ वाकणकर ने कहा।

मास्साब लड़खड़ाती आवाज मे बुदबुदाए, 'ठीक है। लेडीज़ [illegible] ही ठीक है···'

मिन्नी और वह दूसरे कमरे की ओर चली।

मिन्नी ने सुना था। सक्सेना कह रहा था—'[illegible] लेडी ! · पुर्णे की है—पुर्णे। एक तरह से बाबे [illegible] !···'

ब्रिटिशर्स का शहर रहा है पुणें। छावनी। यू नो भटनागर, पुणें में दुनिया में सबसे ज्यादा सायकलें चलती हैं ? फाइन सिटी !...'

'हूअ्...यस-यस !' मास्साब टिक गये थे सोफे से। आंखें मुंदी हुई।

मिसेज वाकणकर ने बड़बड़ाते हुए टेबल पर प्लेट और गिलास रखा था, 'एकदम बोड़म है ये सक्सेना। समझता ही नही है कि आखिर जिस लड़की ने शराब छुई न हो—वह पी कैसे सकती है एकदम ?...'

'वह तो दीदी...मैंने कभी पी ही नही है।' वह एकदम रोते हुए बोली थी।

'वह नही जानता स्वीटी।...कुछ भी नहीं जानता। इसके बाप-दादे पटवारी हुआ करते थे।...बाई चान्स ये थोड़ा एडवांस निकल आया। कुछ समझता ही नही है...और कोई लड़की अपने पिता के सामने...ना-ना ! इम्पासिबुल !...भले ही तुम्हारे डैड बहुत समझदार हैं। ही नोज बच्चों को कब इन्डिपैंडेंट बना देना चाहिए !...फिर भी आखिर संस्कार टूटना कठिन होता है...'

मिन्नी को बड़ी राहत मिल रही थी।

'और ये मेड मैन !...सक्सेना ?...'मिसेज वाकणकर ने कहा, 'ये इतनी-सी बात पर सेंटीमेंटल हो जाता कि तुमने नही पी...?'

मिन्नी डर गयी। नाराज हो जाता सक्सेना। मिन्नी को फिर से रोना आ गया था—कैसी बेबसी है उसकी ? वह नाराज नहीं करना चाहती। पर...इस तरह खुश कर पाना भी तो मिन्नी के लिए मुमकिन नही था ?

'अब गिलास उठाओ !' मिसेज वाकणकर ने अपना पैग उठा लिया। नजरें मिन्नी के चेहरे पर टिका दी। घूरती हुई नजरें।

'पर दीदी...?'

'उठाओ ! अब यहा न तुम्हारे फादर हैं, न सक्सेना ..अपन लेडीज हैं। यहा कोई बुरा नही।...उठालो !'

'पर...?' मिन्नी कांपी।

'इसमें बात रह भी गयी और बन भी गयी—ओ०के० उठालो ! नाक मूंदकर पी जाओ !...आखिर धीरे-धीरे यह सब सीखना तो पड़ेगा ही।

तुम्हें इस बेहूदा शहर के नर्क मे तो अपने को स्वायल नहीं करना है ? टेक इट !'

मिन्नी ने उठा लिया था गिलास। यहा बुरा नही। पर अंगुलियां कांप रही थीं। बहुत कसकर जकड़ना पडा था उसे।

'पी जाओ !···एक ही सास मे !···' मिसेज वाकणकर ने अपना गिलास टेबल पर रख दिया और उसके हाथ मे हाथ का सहारा लगाकर ओठों से गिलास टिकवाया। मिन्नी के भीतर कुछ उबलने लगा ··लगा कि आतें उबलकर बाहर निकली आ रही है। कितनी तेज़ गन्ध ? ·· गिलास छूटक पडता, पर मिसेज वाकणकर बहुत समझदार है। थामे हुए है। मिन्नी ने कठिनाई से मुह खोला। मिसेज वाकणकर ने गिलास उडेल दिया—'अ-हु ··हु' मिन्नी के मुह से निकला फिर गिलास का सारा द्रव नीचे उतर गया !···

'आह ! ··' मिन्नी नीचे से ऊपर तक जल गयी थी।

मिसेज़ वाकणकर ने फौरन सलाद से ककड़ी का एक पीस उठाकर बढा दिया था, 'जल्दी से चबा जाओ इसे ! ··देन यू विल फील नार्मल !'

मशीनी ढग से वह ककड़ी चबा गयी। तल्खी सहज होने लगी···फिर हो गयी !

'गुड गर्ल !···' मिसेज वाकणकर ने अपने पैग से कुछ घूट लिये। ककडी चबाने लगी।

'जाने कैसा-कैसा लग रहा है दीदी ?' मुंह बिगाडते हुए मिन्नी ने कहा।

'पहली-पहली बार ऐसा ही लगता है ··पर अब डर नही। नाव यू कैन मिक्स इन ऐनी सोसायटी !···अब जिन्दगी खुल गयी है !···पहली-पहली बार जब मैंने ली थी ना तो मुझे भी बड़ा डर लगा था मिन्नी।··· लगा था कि छत पर उड़ रही हूं पर···कुछ नही, बस, लगता ही है। फिर कुछ नही।' मिसेज वाकणकर ने पैग खाली कर दिया था।

मिन्नी जल्दी-जल्दी ककड़ी चबाने लगी थी। 'माथा भी कुछ घूम रहा था ··पता नहीं कितना नशा हो गया होगा।

मिसेज वाकणकर उठी कुछ हिलती हुई [illegible]

मिन्नी ने देखा, सोचा, भूल गयी। थोड़ी देर बाद जब मिसेज वाकणकर लौटी तो मिन्नी उन्हें देखकर हंस पड़ी थी, 'अरे, कमाल है दीदी···तुम तो पूरी बाटल ही उठा लायी ?'

'वह लोग बहुत पी गये हैं ··अब उनको ज्यादा नहीं होना चाहिए ना ?' मिसेज वाकणकर ने बोतल टेबल पर रखदी थी, गिलास में पैंग बनाने लगी। मिन्नी चौंकी, 'अब···अब मैं नही दीदी···'

'अरे !··· अब क्या है ? रास्ता साफ !' उन्होंने पैग बना दिये।

'उहुं !···नही !' मिन्नी बेमतलब मुसकराती हुई आराम से सीट पर टिक गयी। गाउन के सामनेवाले बटन खोल लिये। गर्म सीने पर ठंडी हवा लगी तो बड़ी राहत मिली। आखें मूद लीं।

'अरे, ले ना !' मिसेज वाकणकर ने उसका गिलास उसे थमा दिया।

गिलास थामकर भी मिन्नी मिनमिनायी, 'नही दीदी···'

'यह क्या नखरेबाजी है ! लो !' वह घुड़कने लगी।

'अच्छा बाबा ··पर इसके बाद नही। मुझे—मुझे नशा हो जायेगा दीदी ?' मिन्नी हिलती हुई घूट ले गयी। मुह कसका, पर पहले जैसा नहीं। फौरन गिलास रखा। ककड़ी खा गयी।

मिसेज वाकणकर कह रही थी—'तू पैग खत्म करना, मैं खाना लगाती हूं···ओ०के० ?'

'ओ०के० !···' हाथ लगभग फेंकते हुए मिन्नी ने कहा था। पलकें खोलते-मूंदते घूट लेने लगी···ककड़ी खाने लगी···फिर घूट···फिर ककड़ी···

पता नही कैसा हो रहा है ? पर लग अच्छा रहा है। मिन्नी ने एक हिचकी ली, मुसकरायी। सामने ड्रेसिंग टेबल रखी थी। नजर उस पर जा ठहरी। मिसेज वाकणकर का रेशमी गाउन अच्छा लगता है। शौकीन औरत है। कमरा भी खूबसूरत है। वह उठी। झूमती हुई शीशे के सामने आ खडी हुई। लग रहा है जैसे जिस्म में उम्र दोहरी हो गयी है···भीतर ही भीतर उसे हिलाती हुई···

याद आया—मिसेज वाकणकर ने उसका गाल चूम लिया था। होठ काटकर अपने से ही लजा गयी मिन्नी। उसने हौले से सिर आगे बढ़ाया···

और बढ़ाया···होंठ अपने प्रतिबिम्ब के होठों पर चिपका दिये।

प्च् !···

लगा कि चाशनी उतर गयी सारे जिस्म में। पीछे से तालियां बजीं। चौंककर उसने देखा।

मिसेज अरू वाकणकर झूमती हुई तालियां पीट रही थीं, 'हियर !··· हियर···क्या बात है स्वीटी !···' फिर वह आगे बढ़ीं।

मिन्नी लजायी हुई-सी खड़ी रही। जब मिसेज वाकणकर उसके पास आयीं तो वह 'दीदी' कहकर एक हाय सी खींची हुई उसके सीने से लग गयी। मिसेज वाकणकर ने दोनों गर्म हथेलियों में उसका चेहरा उठाया··· फिर उसे चूम लिया···

मिसेज वाकणकर ने उसे अपने से हटाकर कहा, 'आओ, एक-एक पैग और···'

'बस, दीदी ··इतने मे ही मजा आगया ! अब शायद ज्यादा हो जायेगी, हू !' मिसेज वाकणकर और वह एक-दूसरे से झूलती हुई-सी अपनी-अपनी कुर्सियों में आ धसीं। मिसेज वाकणकर ने पैग बनाया। वह उन्हें रोकना चाहती थी, पर नहीं रोका। एक और सही···किस कदर झकझोर देती है ये चीज ?···अच्छी लगी।

'मैं बिन लोकों को खाना दे आयी हूं···फिर हम दोनों खायेंगे ? ओ० के० ?'

'ठीक है।'

वे फिर से घूंट लेने लगीं···ज्यादा और ज्यादा खिलती, खुलती हुई।

खाना खाते हुए मिसेज वाकणकर की ओर बेमतलब ही हंसती रही थी वह। गिलास से पानी फैल गया था।···मिसेज वाकणकर ने साफ किया। सब्जी भी गाउन पर गिर गयी। मिसेज वाकणकर ने कहा था— 'कोई बात नहीं !'

मिन्नी ने लटपटाती जबान में कैसे कहा, मालूम नहीं—'मुझे ज्यादा

हो गयी…है ?…हो गयी ना ? क्यों-दी—दी-ई…?'

खा सकी या नहीं—यह भी याद नहीं। याद है केवल यह कि बेड-रूम में लाकर मिसेज वाकणकर ने सूचना दी थी, कि उसे वहीं आराम करना है। हल्के-से चौंकी थी वह। एक पल के लिए याद आया था कि वह मुरार में सक्सेना के बंगले के भीतर है, शाम के खाने पर आयी थी। मास्साब साथ थे। मिसेज वाकणकर ने बतलाया था—'भटनागर साहब चले गये है…कह रहे थे कि रात बहुत हो गयी। इस वक्त तुम्हें साथ ले जाना ठीक नहीं होगा।'

'अच्छा ? …' मिन्नी ने सिर्फ अचरज प्रकट किया था। लेट रही। फोम के गद्दे हैं। मिसेज वाकणकर बोली थी, 'आज मैं और तू सोयेंगे। ठीक है ना ?'

'हां, ठीक है ··पर दीदी', उसे जैसे याद हो आया था, 'सक्सेना साहब ··वह—वह किदर हैं—ऐं ?…'

'वह अपने कमरे में। जब मैं आती हूं तो दीवान पर ही लेट रहते हैं।'

मिन्नी हौले से हंस दी थी।

दरवाजा बन्द किया था मिसेज वाकणकर ने। मिन्नी कभी आंखें मूंदती, कभी खोलती। बदन तेज आलस में भरा हुआ था। लगा कि बहुत खाना खा गयी है। सिटकनी चढ़ायी थी या नहीं, मिन्नी को याद नहीं। जरूरत भी क्या थी इस कदर नुक्ताचीनी से देखने-समझने की ? मिसेज-अरू ··वाकणकर जो साथ थी उसके। बहुत समझदार औरत !…यही तो राय बनी थी मिन्नी की।

मिसेज वाकणकर कपड़े बदलने चली गयी थी। लौटी तो झिलमिली नाइटी पहने हुए थी। बदन आर-पार दीख रहा था…बहुत महंगा कपड़ा होगा। मिन्नी ने होंठ धीमे से काट लिया था। मुसकरा कर देखा। वह भी मुसकरा रही थी। कहा था—'मैं तो यही पहनकर सोती हूं ··बदन कसा-गसा रहे तो ठीक ना नींद नहीं आती मुझे !'

मिन्नी ने कुछ कहा नहीं। झूलता-सा हाथ उठाकर हौले से मिसेज-वाकणकर की नाइटी को घुटनों से सहलाने लगी थी…'कौन-सा कपड़ा है दीदी ?'

'इसे क्या कहते हैं, यह तो मालूम नहीं, पर कोई इम्पोर्टेड नेट है ··बहुत बारीक वाला···'

कितना झीना कपड़ा ? मिसेज वाकणकर लग ही नहीं रही है कि कपड़ा पहने है। ग्वालियर जैसे पिद्दी शहर में भी लोग इस कदर फिल्मी ढग से जीते होंगे ? कहा जानती थी मिन्नी ! जानना अलग, सोच तक में नहीं था। पर वह···जाने क्यों मिन्नी का भी मन हुआ था कि इस तरह का कुछ पहने। कैसा लगता होगा बदन में ?··· कपड़ा हौले-हौले सरकता रहता होगा जिस्म पर।

'तू ऐसी कोई हल्की चीज़ पहनना चाहेगी ?' मिसेज वाकणकर ने पूछा था।

'और है ?'

'हा।' कहकर वह गयी, ठीक वैसी ही कोई नाइटी लेकर लौटीं। कहा, 'पहन ले !···मैं हमेशा दो रखती हूं साथ !···'

मिन्नी जैसे-तैसे उठी थी। कुछ पलों के लिए मिसेज वाकणकर और उस माहौल में भूल ही गयी थी कि वह जिन पलों को जी रही है ··वे हैसियत से परे, बहुत परे के पल हैं। एक सपने की तरह···

पर कई-कई बार सपनों की गिरफ्त में भी फंस जाता है आदमी। सच से सैकड़ों मील परे होकर···

मिन्नी ने कपड़ा लिया तो मिसेज वाकणकर ने कहा था—'अब उधर कहा जायेगी, बदल ले यहीं !'

सुधि आयी। सूरज भी काफी कुछ ऊपर आ गया था···हर जोड़ टूटता-रिसता हुआ। बारिश की नम धूप बदन में भी एक नमी भरती है···मिन्नी ने जोर से इठलाकर करवट ली। कुछ पलक खोली, कुछ मूंदी।

एक तमाचा सा महसूस किया था। एकदम जाग गयी !···और लगा था पूरे बदन से पसीना निकल पड़ा है। जोर से जबड़े कसे। आखें मूंद

ली।

एक ओर थी मिसेज़ वाकणकर और दूसरी ओर !

ओह !···एकसाथ कितने ही कोड़े बरसते महसूस किये थे मिन्नी ने। जोर से उछलकर बिस्तर से परे हो गयी ! अपने जिस्म को इस तरह सिकोड़ा जैसे कछुए की तरह अपने ही भीतर समाकर गुम हो जाना चाहती हो। पर मुमकिन नही।

वह रोने को हो आई। फिर रो भी पड़ी। पागलों की तरह बदहवास थोड़ी देर ठिठकी खड़ी रह गयी थी फिर कपड़े लेकर भाग आयी थी दूसरे कमरे में। थोड़ी देर के लिए पागलों की तरह बदहवास, कांपते हाथों जैसे-तैसे कपड़े बदलकर कमरे में ही टहली। बैठ गयी। फिर टहली !···

हे भगवान !···ऐसी कमीनी औरत !···और ये जलील बूढ़ा !···सब कमीन ! कितने भरोसे से मिन्नी को छोड़ गये होंगे पापा ?···वह हिचकियां भर-भरकर रोने लगी थी। जी हुआ था कि रोती ही जाये ··इतनी रोये कि पिघलकर कमरे में बिखर जाये !

मिसेज वाकणकर के कपड़े सारे कमरे में यहां-वहां बिखरे हुए हैं··· एक ओर मिन्नी और मिसेज वाकणकर के जूठे गिलास, फैला-बिखरा खाना···उसे रात के स्मरण के साथ घिन का अहसास तीव्र और तीव्रतर होते महसूस हो रहा है। आंसू है कि थमते ही नहीं। बहे जाते हैं···सोचों पर रह-रहकर अंकुश। ऐसे कि बंधकर कुछ भी सिलसिले में न बोल सकेगी, न कह सकेगी···

सहसा वह उठ खड़ी हुई थी। शीशा सामने। चेहरे पर यहां-वहां कुछ धब्बे लगे हैं। धब्बे—कोढ़ के दाग़ जैसे। ये धब्बे चमड़ी के पार, गहरे और गहरे होते हुए एकदम सीने पर जख्म बन गये हैं।

वह फिर रो पड़ी। जोर से।

जैसे-तैसे सहज होकर निकल पड़ी थी वहां से। सिटकनी खोलकर जब पगडंडी पर कदम रखे तब याद आया था कि उसे सक्सेना के बारे में एक बार फिर सोच लेना चाहिए ! उसकी नाराजी, मिन्नी के समूचे भविष्य, इरादों और मासूम की कल्पनाओं की नाराजी होगी। कुछ भी नहीं होगा ! इतना होकर भी कुछ नही !

मगर एक गाली उबल पड़ी थी उसके अन्तर से ! मिन्नी भूखे मर जाना पसन्द करेगी उस कमीने की शक्ल देखना नहीं । बल्कि शायद अपनी शक्ल देख पाना भी संभव नहीं रह गया है···

मेन रोड पर तांगा किया था । घर आ पहुंची ।

दूध के कारण दरवाजा जल्दी खुल जाता है । फिर बन्द नहीं किया जाता । मास्साब जागकर फिर सो जाते है ।

सब सोये हुए । मिन्नी बदहवास सीढ़िया चढकर अपने कमरे में बिस्तरे पर जा गिरी थी । सुबकती रही···सुबकती रही ··

पर ज़ख्मों का ये दर्द अजीब है । बढ़ता ही जा रहा है···हर सिसकी के साथ ज्यादा तेज होता है ।

वे जागेंगे—देखेंगे कि मिन्नी गायब है ! क्या सोचेंगे ?···सोचें कुछ भी !

कमीने !

मिन्नी के जबडे कस जाते है । उस हरामजादे का मुंह किसी वजनी चीज से कुचल डालना था । इस तरह कि मास का लोथडा बन जाता । वैसा ही जैसा मिन्नी के अन्तर को बना डला गया है । महज लोथडा !···

मिन्नी के भीतर ही ज़ख्म रिसने लगे है ··

और औरत थी वह ? कुटनी ! मिसेज वाकणकर । मिन्नी थमती है । फिर रो पडती है । फिर थमती है, फिर ··

मास्साब को सब कुछ बतलाना होगा । जांघें दुख रही है । उफ् ! ·· वेदना ? नहीं-नहीं, मास्साब से कुछ नहीं कह सकेगी । कैसे कह सकती है ? वह कहेगी—मां से । मायादेवी उस कमीने का मुह नोंच सकती है । वह खूब जानती है उन्हें !

पर क्या वे लोग जानते नहीं थे कि सक्सेना कैसा आदमी है ? नहीं जानते होंगे । जानते तो भला ऐसा करते ? कभी नहीं !···

उन्हें मालूम पड़ेगा और आग हो जायेंगे एकदम !···सक्सेना के आफिस में ही पहुंचकर गालियां देंगे ! ऐसी बात···आदमी मरने-मारने की परवाह नहीं करता ! मिन्नी ने डरकर सोचा था और तुरंत ही लगा था कि वेहूदा सोचे जा रही है । ऐसा कुछ भी नहीं होगा । अगर उन्होंने ऐसा

कुछ किया भी तो सक्सेना ज्यादा समर्थ है। वह सब कुछ उन्हीं पर मढ़ सकता है। यही नहीं, मास्साब और मायादेवी की तो कोई सुनेगा भी नहीं।

जया मौसी भागी थी। कुछ भी नहीं हुआ था। बस, एक-दो बार पुलिसवाले घर आये थे। उन्हें चायपानी करना पड़ा था। फिर कुछ नहीं। सारा महल्ला हंसा था। आखिर में बात आयी-गयी हो गयी थी।

व्यर्थ ही तूल दिया था मामले को। न उठाते तो ज्यादा बेहतर था। अब मिन्नी सोचती है।

लगता है कि इस मामले को भी तूल देने से कोई लाभ नहीं होगा। मिन्नी महसूस कर रही है, मास्साब और मायादेवी को बताना भी व्यर्थ···

जो हुआ है, उसे भूल जाना होगा···

वह अपने आप पर थूक लेना चाहती है। इतना सहज है भूलना?··· अपने कोढ़ का अहसास आदमी कैसे भूल सकता है?

तब है भी क्या मिन्नी के वश में?

सिर्फ रोना। वह फिर रो पड़ी थी···एक दिन वह रोते-रोते थक चुकेगी। तब चुप हो जायेगी। इतनी चुप कि उसे लगा कि उसका अपना आप भी चुप हो गया है। उसी से चुप।

और सचमुच मिन्नी का अपना आप भी चुप हो गया है। इतना गहरा और बुनियादी चुप कि चेहरे, शरीर, आत्मा सभी कुछ में फैल गया है। मायादेवी कहती है—'न जाने कौन-सी बीमारी भीतर खाने लगी है तुझे?···यह हसने-खेलने की उम्र और ऐसा चुप?'

मिन्नी जवाब नहीं देती। हसने की कोशिश करती है। कहती है, 'मुझे क्या हुआ है? कुछ भी तो नहीं।'

हस नहीं पाती। खुद को ही मालूम हो जाता है कि नहीं हंस सकी है। हंसने की जगह एक खिसियाहट भर ही उभरी चेहरे पर।

'कुछ हंसा-खेला कर !···दिन भर घर मे घुमी रहती है । या तो कोर्स की किताब मुंह पर, या फिर कोई उपन्यास-कहानी···! भला ऐसे करती हैं इस उम्र की लड़किया ? तेरी सखी-हमजोली नही ? सिनेमा ही देख आया कर !'

मिन्नी जवाब नही देती । अक्सर उनके सामने से हट आती है । रोना चाहती है, पर अब ठीक तरह रोना भी नही आता ।

मब हस रहे हैं । ज्यादा और ज्यादा हसते है । मास्साब कहते हैं—'अब देशी इलाज बन्द कर दूगा !···यह इलाज तो शरीर को लगा ही नही । असल में शरीर आदी हो गया है अगरेजी दवाइयों का । इस पर देशी दवाए बेअसर !···'

'जरा सब्र करो ।' मायादेवी समझाती हैं, 'साल-दो साल की बात है । सब ठीक हो जायेगा । मिन्नी इन्टर हुई जा रही है···फिर बी० ए०, फिर···मक्सेना साहब है ही ! बड़े भले आदमी !'

मिन्नी सुनती है । सक्सेना का जिक्र आने पर रोना चाहती है, पर नही रोयेगी । अब क्या रोना ? पुरानी चोरी को लेकर आदमी कब तक रोता रहेगा ? रोना ही भूल जाता है । मिन्नी भी भूल चुकी ।

बस, इतना नही भूला जाता कि चोरी हुई थी । कीमती चीजें कैसे भूली जाती हैं ? चोरी गयी चीजें !···और मिन्नी तो अपने से ही चुरा ली गयी है । कैसे भूले ?

इन्टर का रिजल्ट आया तो मायादेवी का अधेड़ वदन इस तरह झूमने लगा था जैसे मिन्नी से भी कमउम्र हो और मिन्नी ? उसने सिर्फ अखबार मे रोल नम्बर देखा था—फर्स्ट क्लास की लिस्ट मे था । एक गहरी सास ली थी । रोल नम्बर अनदेखा कर दिया ।

बी० ए० में एडमिशन हो गया था मिन्नी का ।

अजित को याद आता है—मिन्नी पास हुई तब अजित हमउम्रों में पहला था, जो बधाई देने गया था । मिन्नी से मिठाई मागी थी । हसा था, फिर अपने आप पर हसकर मिन्नी को हंसाना चाहा था—'मुझे तो देख···ऐसे बैठा हू नौवे दरजे मे जैसे इसी में पैदा हुआ था, अधेड़ हुआ··· शायद बूढ़ा भी हो जाऊगा !···बिलकुल आश्रम का सत हो गया हू···'

क्या मिन्नी हंसी थी ?···शायद नही। मुसकरायी थी वह। लगा था कि मिन्नी को अजित और उसकी बधाई पसन्द नही आ रही है। एक धिक्कार और चिढ लेकर लौट आया था। समझा था कि मिन्नी दंभी हो गयी। उसे छोटा समझती है। पढाई, समझ, हैसियत···सभी मे तो अजित को अपना बौनापन लगा था ? काश ! तब समझ सकता कि मिन्नी के भीतर अजित का बौनापन नही, उसका अपना बौनापन था···फिर इस बौनेपन का ज्यादा और ज्यादा अहसास करता था अजित···मिन्नी बी० ए० कर गयी थी। डाक्टर गोविल भी आने लगा था उसके यहा···सक्सेना भी···घाटपाण्डे डाक्टर की नियमित मरीज बन गयी थी वह। इसके साथ-साथ मिन्नी की बहुत-सी बातें बहुतो तक जा पहुंची थी। अजित की नजरों में वह गिरती चली गयी थी···

मिन्नी ने कहा था—'···सक्सेना साहब के यहां पार्टी से पहले मैं गोविल से मिली थी···' मायादेवी की चर्चा करते हुए बोली थी मिन्नी—'उन्होने कही से पता लगाया था कि गोविल की खुशामद करो, खुश रखो तो लडकियां बी० ए० मे इस तरह निकलती हैं, जैसे सरकफुन्दी की गाठ होती है। गाठ के एक किनारे पर हल्का-सा झटका लगा नही कि बस···! खुल गयी !'

पर तब तक मिन्नी नही जानती थी कि मायादेवी या मास्साब के लिए उससे भी कही ज्यादा जाना-समझा हुआ है सब। जवाब नही दिया था उसने। अजित से कहने लगी थी वह—'···शायद कभी न जान पाती, पर अचानक ही बातें करते सुना था मम्मी-पापा को···पर वह तो बहुत बाद की बात है···उससे पहले मैंने ही सब कुछ जान-समझ लिया था। कम से कम अपने बारे मे सब जान गयी थी···अभी तो पहली-पहली बार पता चला था कि जिस इलाज को लेकर पापा इस कदर परेशान रहते हैं, लगातार खांसते रहते हैं, थूकते हैं, हाफते हैं···वह किस बीमारी का है ?··· मुझे ही रामेश्वर शास्त्री के यहा जाना पड़ा था···पापा यही बोले थे। दो दिन से बहुत तबीयत बिगड रही थी उनकी।···उन दिनों बी०ए० फाइनल करनेवाली थी। चार-पांच महीने बाद इम्तिहान होने थे···लगता था कि आसान नहीं होगा !···'

और अजित स्तब्ध सुनता गया था···इस मिन्नी को लेकर जितने धिक्कार बसे रहे थे मन में सब बह चुके थे···आगरा का वह होटल किसी मन्दिर के कमरे जैसा लगा था अजित को। आदमी भीतर-बाहर से एकदम धुल-पुछ जाता है···

'···और रामेश्वर शास्त्री बोले थे—'बेटी, तुम कौन लगती हो राजनाथ बाबू की?'

'मैं उनकी लड़की हूं।' मिन्नी ने उदास स्वर में जवाब दिया था।

'लड़की हो···?' रामेश्वर शास्त्री बुदबुदाये थे—'उन्हें कुछ ठीक से खिलाओ, पिलाओ। किसी प्राकृतिक स्थान पर ले जाओ!···सिर्फ दवा कुछ नहीं कर सकेगी बच्ची। यक्ष्मा राजरोग होता है। इसमें मरीज के लिए दवा से अधिक उसकी सुखशान्ति जरूरी है।'

यक्ष्मा?·· टी०बी०? ··मिन्नी ने एक तमाचे की तरह सुना था। कांप गयी थी आवाज, 'तो ·· तो पापा को टी०बी० है?'

'हां!·· वह भी बहुत पुरानी। मैं दवा दे सकता हूं, प्राकृतिक हवा, पानी देना तो मेरे वश में नहीं।···इसके बिना कुछ नहीं होगा!' उन्होंने मरीजों की भीड़ में आगे देखना शुरू कर दिया था। मतलब था कि मिन्नी जाये। दवा ले और विदा हो। मिन्नी चुपचाप दवा लेकर चली आयी थी।

झल्लायी, चिन्तित और लगभग रुआंसी। टी० बी०!···खतरनाक दन की। कह रहे थे—'पुरानी है' और मिन्नी को बताया तक नहीं? न पापा ने, न मां ने? घर लौटते ही वह जैसे बौखला पड़ी थी उन पर, लोग हंसी-खेल समझते हैं इस रोग को? इस तरह ठीक होगी टी०बी०? शास्त्री जी से दवा लीजिए चाहे दुनिया के बड़े से बड़े डाक्टर से कुछ नहीं कर सकेगा। ये मूंग की दाल और कच्ची रोटियां राजरोग को ठीक करेंगे आप?···पापा, आपको हो क्या गया है? सी बात समझ में नहीं आयी?···इसमें परहेज चाहिए

चाहिए, दवाएं चाहिए...और...और हो सके तो हिल स्टेशन भी रहना चाहिए !...ऐसा नही कि रोग ठीक न होते हों, पर होंगे तो तरीके से ?...आप मुझे, मम्मी को, अपने आपको धोखा दे रहे है !' वह रो पड़ी थी।

स्तब्ध सुनते रहे थे मास्साब।

मिन्नी बौखलाकर चली गयी थी अपने कमरे मे। चुपचाप बैठ रही। गुस्से और उससे कही ज्यादा तकलीफ में डूबी-भरी।

थोड़ी देर बाद खांसी के ठमकों में उछालें लेते मास्साब आ पहुचे थे। गरदन के नीचे की हड्डिया ' कालर बोन, हां, कालर बोन ही कहते हैं उसे, इस तरह उभरकर निकल आयी हैं जैसे हैंगर खड़ा हुआ हो। नंगा हैंगर ! ..जाने क्यों मिन्नी को उनका चेहरा देखकर पहली बार लगा था कि वह मुरदे को देख रही है। धंसी आखें, आंखों के गिर्द गहरी होती जाती कालिमा, जबड़ों की हड्डियां उभरी हुई—रेत मे दो पत्थरों की तरह निकली। कलाइया इस कदर सूखी जैसे ढांचे का हिस्सा हो। टी०बी० !... मौत !...जिन्दा मौत !

मास्साब ने हौले से मिन्नी के सिर को सहलाया था। बोले थे—'तुझे बतला भी देते तो क्या फायदा था बेटी ?...मैं क्या चाहता नही कि वह सब हो...मैं ठीक हो जाऊं ? पल-पल करीब आती मौत से निकल भागूं ..पर मुमकिन है क्या ?...'

'मुमकिन क्यो नही ? आपने कोशिश ही क्या की ?' वह चीखी थी, पर ठीक तरह चीख भी नही सकी। सिर्फ बेबस रुलायी में बुदबुदाहट बनकर रह गये थे शब्द।

'सिर्फ उधार एक कोशिश हो सकती थी।...पर उधार भी चीजो पर मिलता है ? क्या है अपने पास ?'

मिन्नी एकदम चुप हो गयी थी। निरत्तर !...यह तो छिपा नही है मिन्नी से। कुन्दन दरजी जैसे आदमी से अठारह सौ रुपये उधार ले चुके हैं...जेवर सब गिरवी है। मकान किराये का।

'पर अब चिन्ता नही है ..' सहसा वह अपने आपको सहेज-बटोरकर कहने लगे थे—'तू बी०ए० हुई जाती है, सक्सेना साहब ने कहा था कि

दो महीने के भीतर-भीतर तुझे सर्विस मे ले लेंगे···बहुत सहारा मिल जायेगा !'

मिन्नी सक्सेना के नाम पर गाली देना चाहती थी, पर नहीं ! ··उसने जबड़ो मे ही कसकर गाली चकनाचूर कर ली थी। यह नही हो सकता ! मिन्नी की गाली से कही ज्यादा जरूरी है उसके बाप की जिन्दगी। और यह जिन्दगी मार्फत ही सही, मगर मिन्नी के काम के हाथ है···

पर उससे भी पहले बी० ए० पास करना !···गोविल याद हो आया था उसे। हैड आफ दि डिपार्टमेंट। उसकी आखें, चेहरा, व्यवहार, शब्द ·· सभी कुछ तो याद हो आए थे। उससे राह निकाले बिना बी० ए० कठिन !··· कठिन नही तो अनिश्चित जरूर ! मिन्नी ने फिर से जबड़े कसे थे। गोविल के लिए भी एक गाली है उसके भीतर। पर यह गाली भी चबानी पड़ेगी।

मास्साब लौटने लगे थे, 'अब सब कुछ तुझ पर मयस्सर है !···छह महीने मे ही सब ठीक हो लेगा। इतना कटा है तो यह साल भी सही···तू निश्चिन्त रह बेटी, इतनी जल्दी नही मरने वाला हू मै !'

वह चले गए थे। पर मिन्नी के हर एकात को खौलाकर। इतना कि यह खद्-खद् आवाज सुन पा रही थी। बी० ए० !···फिर सक्सेना·· फिर सर्विस · फिर इलाज ··पिता की राजरोग से मुक्ति ! ··और इन सबसे पहले डा० गोविल ! ··हैड आफ द डिपार्टमेंट !

लगा था कि रास्ता साल भर मे पार होगा ··जरा-सा लड़खड़ायी और रास्ता लम्बा हो जाएगा। इतना लम्बा कि उसे पार करते हुए पिता की सासें नही खीच सकेगी !

अचानक ही बहुत थक गयी थी वह। लेट रही। आखें मूंद ली थी। माथे मे हल्की सी कौंधें ··मास्साब के शब्द—'···सिर्फ उधार ही एक कोशिश हो सकती थी, पर उधार भी चीजो पर मिलता है। क्या है अपने पास ? · '

लगा था कि ये आवाज, दूर, बहुत दूर से आ रही है···उतनी ही दूर खड़े पिता चीख-चीख कर कह रहे है ··उनके करीब ही एक काला लबादा ओढ़े हुए प्रेत है। शायद राजरोग···यक्ष्मा !···उसने चमगादड़ की तरह

अपने काले-काले चौड़े पंख पिता के ऊपर, दांए-बाएं फैला रखे हैं···ये पंख धीमे-धीमे करीब हो रहे हैं उनके। साल होते न होते शायद ये पंख उन्हें समेटकर अपने भीतर बन्द कर लेंगे···

फिर ये आवाज एकदम गुम हो जाएगी···गायब !

मिन्नी का मन होता है कि चीखकर कहे—'नहीं, नहीं !···मैं आ आ रही हू पापा ! आ रही हू···!' एक लम्बा—खूब लम्बा रास्ता पार करती हुई मिन्नी दौड़ने लगती है। साल भर दौड़ का रास्ता !···वह दौड़ रही है ··तेज और तेज।

बीच में सहसा एक और चमगादड़ उभरता है—उसके डैने मिन्नी को छू जाते हैं। ये मिन्नी को कस लेगा। डाक्टर गोविल !···मिन्नी को कस लिया है उसने। वह चीख रही है ··छटपटा रही है···

वेबस मास्साब खूब दूर खड़े हैं ··डैनों में चेहरा छिप गया है उनका।

अनायास ही मिन्नी चीख पडी थी—'नही-ई !···मैं आ रही हूं !···' और उसने महसूस किया था कि गोविल नाम के उस चमगादड़ के सामने वह हाथ जोड़कर रो पडी है—'मुझे छोड़ दीजिए !···मैं अपने पापा को बचाना चाहती हूं !···हिलस्टेशन भेजना चाहती हू उन्हें। टी० बी० है उन्हे ! इसके बिना वह ठीक नही होंगे···! प्लीज़ !'

सहसा मुसकरा पड़ा है चमगादड़ ! एक घिनौनी चिचियाहट से कहता है—'छोड़ दूं ? अच्छा—छोड़ देता हूं, पर···'

'हां-अ् !···' मिन्नी मुंह ढापकर रो पड़ी है—'हां, मुझे मंजूर है !··· सब कुछ मंजूर है !···'

···और मिन्नी दौडती चली गयी थी। हाफती, कांपती, सिसकती पर दौड गयी थी !

रास्ते में कितनी वार, कितनी-कितनी जगहों पर कितने-कितने चमगादड़ों ने उसे नही रोका था ?

मिन्नी ने हर चमगादड़ से भीख मांगी थी···चमगादड़ भीख नही

देते। सौदा करते हैं। ठीक है—दिन छोड़ता हूं तुम्हारे लिए, पर रात मेरी होगी !

हर रात चमगादड़ों के कांपते, बदबूदार डैनों का सामना करना होता था मिन्नी को ! पर सन्तोष था उसे। वह यक्ष्मा से पिता को बचा रही है। बहुत करीब आ पहुंची मृत्युदूत की बाहें धीमे-धीमे खुलने लगी हैं···

एक दिन वे पूरी खुल जायेंगी !···

पर मिन्नी ने सोचा ही कहा था कि उस दिन वह उन बांहों मे हमेशा-हमेशा के लिए जकड़ जाएगी !

और एक दिन मिन्नी जकड़ गयी थी। लगातार अलस रहने लगी थी वह। कुछ ऐसी हरकतें करते कि मायादेवी गमीर होती जातीं···हर दसवें दिन स्कूल से छुट्टी ले लिया करती। सारे-सारे दिन पर पड़ी रहती। सक्सेना साहब से दो बार मिली थी। सब कुछ बतलाया था। बोले थे—'घबराओ मत, मिसेज वाकणकर को आने दो। पूना गयी है वह।'

मिन्नी ने फर्श को यूं ही कुरेदते हुए पूछा था, 'कब तक आयेंगी वह ?'

'बस, यही कोई एकाध महीने में।' सक्सेना ने सिगरेट सुलगायी थी, 'डान्ट वरी ! मिसेज वाकणकर बहुत होशियार हैं। ··आखिर जिन्दगी देखी है उन्होंने। बहुत स्ट्रगल किया है। यह तो बड़ी छोटी बात है उनके लिए !···'

पर मिन्नी के लिए छोटी बात कैसे हो सकती थी ?

'छोटी बात' मायादेवी और मास्साब के लिए भी नहीं थी। गर्मियों के दिनों मे छत पर सोया करते थे सब। मिन्नी रात को पेशाब करने उठी तो अनायास ही ध्यान छत के दूसरे हिस्से में बतियाते हुए माता-पिता पर चला गया था ··बहुत फुसफुस करके बोल रहे थे दोनों। पर मिन्नी ने बातचीत में अपना नाम सुना था। किसलिए उसका जिक्र कर रहे थे ?··· बाथरूम मे लौटकर बिस्तरे में समाते हुए अनजाने ही फिर फुसफुसाहट की ओर ध्यान खिंच गया था···

'तुम ··मिले थे सक्सेना से ?' मायादेवी पूछ रही थीं।

'हां।'

'क्या कहा उसने ?'

'कहता है, घाटापांडे ऐसे काम करता है, पर उसका सीधा सम्बन्ध नही है उससे। मास्साब बतला रहे है—मिसेज वाकणकर की दोस्ती है। उनके आते ही काम हो जाएगा !'

'···पर यह तो पिछली बार भी बोला था सक्सेना। कब आएगी वह ?'

'कह रहा था कि छुट्टी बढ़ा दी, वरना आ जाना था···'

खामोशी !

मिन्नी पसीने से नहा गयी थी। शर्म रोम-रोम से वह निकली। छिः ! पिता सब कुछ जान गए है। जानकर कितनी तकलीफ हुई होगी उन्हें ?··· अब मिन्नी उनकी ओर देख भी नही सकेगी। कैसे देख सकती है ?··· लगेगा कि उनकी आखें मिन्नी का थूक से लिसड़ा मुंह देख रही हैं·· ग्लानि से भर उठी थी मिन्नी।

'···असल मे गलती तुम्हारी है माया !···' सहसा वह फिर बोलने लगे है।

'मेरी क्या गलती है ?' मायादेवी की खीझ।

'तुम चाहती तो उसे सब कुछ बतला-सिखला सकती थी। वह एहतियात बरतती।'

'क्या यह अच्छा लगता ?'

'सवाल अच्छे या बुरे का नही है···गलती का है।'

'ऐसे बच्ची नही थी वह !' मायादेवी का गुस्सा। आवाज फट गयी है उनकी।

'उस दिन तो बच्ची ही थी, जिस दिन मैं खुद उसे सक्सेना के यहा लेकर गया था।' मास्साब कहते हैं—'कभी-कभी मन होता है कि कुएं में डूब मरूं। मैं भी कोई बाप हूं ?···' वह जैसे कराहे हैं।

'ऐसे कुएं मे डूब मरनेवाले होते तो कब के डूब मरते !···' मायादेवी एक तमाचा-सा मारती हैं, 'उस दिन ही मर जाते, जिस दिन ब्रह्मचारी जेठजी को मुझे बेचा था !'

'···'

'कुएं मे डूब मरते···! हुंह !··· तुममे है इतना साहस ? साहस मरदों

में होता है ? हत्यारों में नहीं !'

मिन्नी के बदन का पसीना थमकर रह गया है···नहीं-नहीं ! विश्वास नहीं होता। पापा जानते थे सब ?···बल्कि उस सबसे पहले सब जानते थे। मां भी ?···और मां की बात का जवाब क्यों नहीं दे पा रहे हैं वह ? ब्रह्मचारी ताऊ का जिक्र कर रही हैं वह। कहते हैं कि उन्होंने विवाह नहीं किया था। मरे तो सब कुछ पापा को ही सौंप गए थे, पर जुए में सब उड़ा बैठे !···इसलिए सौंप गए थे कि मिन्नी की मां को उसके बाप ने उनका 'ब्रह्मचर्य' सेंकने के लिए···?

ओह ! पापा ऐसे ?···मिन्नी का मन होता है उसे और पापा नाम के उस नरककाल पर थप्पड़ें बरसाए, घूंसे दे···थूक दे चेहरे पर ! तुम ऐसे ?···बीवी-बेटी बेचने वाले ? रोज पूजा करने वाले चेहरे के पीछे इस कदर सड़ांध ?···

'···जो कुछ करना है, जल्दी करो !···मुझे लगता है, कम से कम चार महीने चढ़ चुके हैं उसे।'

'क्या करूं···!' वह मिमियाते हैं—'जब तक वह मिसेज वाकणकर नहीं आती तब तक···'

'उसके इन्तजार में क्या यह पाप घर पर लिए बैठे रहोगे ?···लड़की की जिन्दगी दूभर हो जाएगी !···जिस काम-काज के लिए बेचारी ने यह सब सहा है, वह सब बेकार ! नौकरी कैसे कर सकेगी भला ?'

'तुम जरा कुन्दन से बात कर देखो। हो सकता है कि ऐसे मामले में रफा-दफा करने वाले किसी आदमी से उसकी जान-पहचान हो ?'

'मैं उससे पहले ही पूछ चुकी हूं। वह किसी को नहीं जानता !'

'फिर तो मिसेज वाकणकर का ही एक सहारा है···' मास्साब लम्बी सांस लेते हैं—चुप हो जाते हैं !

मिन्नी भी चुप है।···

वे सो जाते हैं।

पर मिन्नी नहीं सो पाती !···काश ! वह गला घोंट सकती उनका !··· कितना अच्छा हुआ जया मौसी यहां से चली गयी ? वह सोचती है। लगता है शायद इसीलिए गयी होंगी। इन लोगों को खूब-बूझ देख-समझ

चुकी होगी।

काश ! मिन्नी भी यहां से जा सकती ?

पर अब इस हाल में जाना व्यर्थ !···

अब वह पिता-मां सबसे नजरें मिलाकर बात कर सकेगी !···उसीकी नजरें थूकेंगी उनके चेहरों पर !···

अब उसे किसी की परवाह नहीं !···दूसरों की दर किनार, अपनी भी नहीं ! वह सोने की कोशिश करती रही थी, पर कोशिश ही कर रही थी···यही नहीं, मिन्नी उन्हें अपमानित करने की कोशिश करती। इस कोशिश में उसे सुख मिलता। कभी-कभी खीझ भी होती। उसकी हर कोशिश से उन्हें जरा भी अन्तर नहीं पड़ता है। खामोश हो जाते हैं। वह अवज्ञा करती है, कभी-कभी दुत्कार भी देती है···यही नहीं, मनमाने निर्णय लेती है···पर ये घिघियाकर हंस देते हैं !

मिन्नी अपने घर पर ही चिढ़ती है, नाराज होती है, दुखी होती है···रो लेती है···सक्सेना के पीले दांतों, बूढ़े जिस्म और घिनौनी कामचेष्टाओं पर मिन्नी को गुस्सा नहीं आता। गोविल भी बुरा नहीं लगता।

अगर कुछ बुरा लगता है मिन्नी का मिन्नी होना !···मिसेज अरुंधती वाकणकर ने एक बार उससे कहा था—'बेकार बात है सब !···इन कुत्तों को चिढ़ाने से कोई फायदा नहीं होगा मिन्नी !···इन्हें दुलारा दो। पूंछ हिलाते रहेंगे। इनकी हिलती पूछ तुम्हें हर हालत, हर दुश्मन, हर मौके से बचाएगी !···चलने दो !'

और चलने दिया है मिन्नी ने···मिन्नी ने क्या, सबने चलने दिया है···उसे मोटे बुआ की फब्तियों की परवाह नहीं, महल्ले, बाजार, स्कूल, विभाग किसी की परवाह नहीं। कुत्ते !···टुकड़ा फिंकने पर दुम हिलाने वाले और थूक देने पर गुरगुराने वाले ! अब मिन्नी को इस सबमें रस आता है।

बस, कभी-कभी आहत होती है तो अजित से। इसलिए ज्यादा कि वह कभी नहीं समझ सकेगा मिन्नी को। जिस दिन समझ लेगा, उस दिन चोट पहुंचाना बन्द कर देगा ! हो सकता है कि वह रोती हुई मिन्नी को माथा दुलराये···कहे—'लग गयी तुझे ?···किसीसे मत कहना ! कसम खाता

हूं मिन्नी, आगे कभी नहीं मारूंगा !…'

बचपन में कितनी-कितनी बार वे झगड़े नहीं होंगे ? उसने मिन्नी को पीट दिया होगा। मिन्नी जोर से रोयी होगी और डरकर उसने या तो उसका मुंह भींच लिया होगा—'मत रो !…मत रो ना !…कसम खाता हू, अब कभी नही मारूंगा !—'

मिन्नी सिसकी होगी और वह रुआसा हो गया होगा…

हौले-हौले जिस्म पर हाथ फेरता रहा था वह…उसके पास लेटा। सुनसान, सनसनी भरती रात में। पर उसका हाथ फेरना…बिलकुल चुप के साथ बोलता हुआ था—'…लग गयी तुझे ?…पर किसीसे कहना मत मिन्नी ! कसम खाता हूं, अब नही मारूंगा !…'

यह कब जाग गयी थी—अजित को मालूम ही नही हुआ था ! वह उसी तरह टकटकी बांधे हुए व्यर्थ ही कभी पखा देखता, कभी बन्द दरवाजे के निचले हिस्से की सांस से कमरे में घुस आयी चौड़ी-चमकती दरी जैसी धूप को।

उसने करवट ली थी। अजित का ध्यान फिर भी नही टूटा। सहसा पूछ लिया था उसने—'अरे, तू सोया नही ?'

चौंककर वह मुड़ा। एक गहरी सांस ली। यही जवाब। मुसकराने की कोशिश। आखें सुर्ख थी अजित की। नही सोया। कहती हुई।

वह उठ पड़ी। बाथरूम मे समा गयी। लेटा-लेटा देखता रहा था वह। कितनी अजीब बात है ?…वह सुनकर नही सो सका और सब कुछ सुनाकर मिन्नी सोयी भी, सहज भाव से दिन के साथ शुरू भी हो गयी ?

असल में वह इतनी जाग चुकी है कि जागने-सोने का फर्क ख़त्म हो गया है। रात और दिन भी उसके लिए बराबर ! मास्साब ! और गोविल या सक्सेना के बीच भी कोई बहुत फर्क नही देखती होगी वह ?

फर्क भी कहां है ?…अजित उठ बैठा। बीड़ी सुलगा ली। बिलकुल फर्क नही है। एक ने मिन्नी को खरीदा है, दूसरे ने मिन्नी को बेचा है !

खरीददार, बेचनेवाले और बिकनेवाले के बीच न तो कहीं बाप है, न दोस्त न गुरु, न शिष्य···जो है सिर्फ व्यापार है। दलाली, कीमत, सौदा !···

बाथरूम से शावर चलने की तेज-तेज आवाजें आ रही हैं···वह फिर मिन्नी के रातवाले मादक जिस्म को अपने साथ देखने लगा है। बिलकुल सामने ··बाथरूम से निकलती मिन्नी, गीले बालों को सुखाती मिन्नी, गोरे जिस्म पर कपड़ा चिपकाये हुए मिन्नी, जिन्दा पर मरी हुई मिन्नी !

सहसा दरवाजे पर ठकठकाहट होती है ··

अजित उठकर करीब पहुंच गया है। कान दरवाजे से सटाकर पूछता है—'क्या-अ ?'

'तब तक चाय ही बुलवा ले !···'

'पहले तू निकल तो सही।'

'जब तक वह लेकर आयेगा, तब तक मैं तैयार हो लूंगी !'

'अच्छा !' अजित दरवाजा खोलकर गैलरी में इधर-उधर देखता है। कोई बेटर नहीं। याद आता है। बैड के पास सर्विस के नाम पर एक बटन लगा है। लौटकर उसे दबा देता है अजित। चुपचाप बैठ रहता है। मिन्नी बाहर आ गयी है। वही गीले बालों का सुखाना, पखा फुल स्पीड पर छोड़कर कुर्सी डाले हुए बाल आगे-पीछे फेंकना···

अजित टकटकी बांधे हुए देखता रहता है उसे।

'क्या देख रहा है?' वह मुसकराकर पूछती है। शायद लजा भी रही है।

नहीं! धोखा हुआ है अजित को। अब मिन्नी क्या लजायेगी ? उसकी आत्मा मर चुकी। सब मर चुका।

कहता है—'कुछ नहीं। यों ही।'

वह जानती है कि यों ही नहीं है अजित का देखना। इस 'देखने' को इतना देख चुकी है मिन्नी, कि अब समझते देर नहीं लगती।

अजित ने नजरें चुरा ली है। बड़बड़ाता हुआ उठ बैठा है—'कमाल का होटल है ! इतनी देर हुई और स्साला बेटर···' वह दोबारा बैल दबा देता है।

'तब तक तू तैयार हो ले।'

'बस, मुझे क्या है? नाश्ते के बाद कपड़े बदलूंगा'''अजित का उत्तर।

'तू मुंह-हाथ'''

'वह तो मैं कभी का निबट चुका।'

हंस पड़ी है मिन्नी, 'मैं तो भूल ही गयी थी। तू सोया नही है। सारी रात कहानी सोचता रहा होगा? क्यों?'

अजित का कोई जवाब नही।

'पर कहानी यहा खत्म नही होगी अजित।' मिन्नी बालों को एक झटका देकर चेहरे के आगे गिरा लेती है। हवा मे उड रहे हैं'''फर्र''' फर्र'''

'अभी तो जाने क्या कुछ है जिन्दगी में?' वह मुह नीचे डाले हुए बुदबुदाये जाती है—'उम्र ही क्या है मेरी?'''यह तो इब्तिदा हुई। पर लगता है बहुत जी ली मैं!'

अजित चुप।

वेटर आ गया है।

अजित पूछता है—'क्या मंगाना है?'

बाल उलटकर चेहरा उभारती है मिन्नी, वेटर से कहती है—'बटर स्लाइस आठ पीस। चाय?''' फिर अजित की ओर मुड़ती है, 'ठीक है ना?'

'हा, ठीक है।'

वेटर चला जाता है।

सचमुच मिन्नी की उम्र ही क्या है? पर बहुत जी ली? इतनी जल्दी कितना कुछ तो जी लिया है उसने? एक तरह से सुहागिन हो ली, मा बनली, कुंवारी हो गयी'''फिर मा बन रही है। याद आ जाता है—

'मैं सोचता हूं कि इधर से निकलते में ही दवाएं ले लें?'

'हा।' मिन्नी की भारी आवाज़।

वह उठ पडा है''टहलने लगा है'''

चुप फैला हुआ है। क्या सचमुच चुप?'''

वेटर चाय ले आया है'''वे एक-दूसरे के सामने बैठ रहते हैं। चुपचाप

स्लाइस पीस खाते हुए। चाय के सिपों की आवाजें।

बेचारी !···अजित उदास निगाहों से उसे देखता है। अब इससे कौन करेगा शादी ? कर भी लेगा तो बाद में मालूम होने पर छोड़ देगा इसे। कितनी छोड़ी हुई औरतें तो देखी हैं अजित ने ? बेचारी दाने-दाने के लिए मोहताज हो जाती हैं। पर मिन्नी के साथ कम से कम वैसा नहीं है। छोड़ भी दी तो अच्छी-खासी नौकरी कर रही है। चला लेगी। सोचकर संतोष मिलता है।

चाय सिप करते हुए बार-बार नजरें मिन्नी पर जा ठहरती हैं। लगता है, उसका कुछ भी नहीं बिगड़ा। ऐसी लड़की को क्यों छोड़ना चाहिए ? उजले चेहरे की तरह ही मन भी उजला है। आदमी तो मन से अच्छा या बुरा होता है। मिन्नी मन से बुरी नहीं। मिन्नी जैसी औरत पाकर खुश ही होना चाहिए। सहसा पूछ लेता है—'बुरा तो नहीं मानेगी तू—एक बात कहूं ?'

'क्या ?'

'आगे के लिए तूने क्या सोचा है ?'

'अगले महीने हैडमिस्ट्रेस हो जाऊंगी मैं।' मिन्नी का जवाब है।

'क्या मतलब ?'

'अभी एक महीने पहले सक्सेना से मिली थी। वह रिटायर होने वाला है। कह रहा था कि रिटायर होने से पहले-पहले प्रमोशन कर जायेगा !'

'मैं यह सब नहीं पूछ रहा था।' अजित का चिढ भरा जवाब।

'तब ?' वह प्याला खाली कर देती है।

'मैं पूछ रहा था कि जिन्दगी में आगे क्या सोचा है तूने ?'

हंस देती है वह, 'हैडमिस्ट्रेस होना !···और क्या ? आदमी को और सोचना ही क्या चाहिए ? तूने भी तो लेखक बनना सोच रखा है। उसी तरह काम भी कर रहा है।'

'नहीं-नहीं, मेरा मतलब यह नहीं था।'

'तब ?'

'मैं पूछ रहा हूं, शादी-वादी···घर-गृहस्थी···' अजित हकलाने

लगता है। वह हंस पड़ती है। बड़बड़ाता है—'खूब है तू !···' फिर हंसती है।

'इसमें हसने की क्या बात है ?'

'और क्या है इसमें ?'

'क्या, क्या, जिन्दगी भर यही करती रहेगी ?'

'यह करना है. क्या सोचा था मैंने ?···पर हुआ। कुछ और सोच लूगी, तो वह हो जायेगा क्या ?···होगा तो वही जो लिखा है।'

'यह बेकार बातें है !' झुझला पड़ा है अजित।

'नही, बेकार नहीं है। बल्कि यही सही है। सुना नही है तूने—'इन्सां लाख चाहे तो क्या होता है, वही होता है जो मंजूरे खुदा होता है···!' समझा !' वह अटैची से कपड़े निकालने लगती है।

'ये अन्धविश्वास है !···आदमी जो कुछ करना चाहे कर सकता है। गीता नही सुनी तूने ?' अनायास ही अजित को रामकिंकरजी के प्रवचन मे सुने शब्द याद हो आये हैं—'कर्म से सब कुछ होता है। देर मे हो, पर होता है···'

'और न हो तो ?' वह गंभीर हो गयी है।

'न हो तो कहा—कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'

'अरे वाह !' वह हैरत से कहती है, फिर जैसे मजा लेती हुई मुसकरा पडती है—'तू तो सचमुच ही ब्राह्मण है !' वह कपडे उठाकर फिर से बाथरूम में घुस जाती है।

बौखला गया है अजित। इतनी गंभीर बात मजाक में उड़ादी उसने ? क्या जिन्दगी को एकदम मखौल समझती है ?···या फिर निराश हो चुकी है ? ··या कि उसने समझ लिया है इस तरह वेश्यापन करते रहने से ही कट जायेगा जीवन ?···अजित को पूछना होगा। जरूरत हुई तो समझाएगा भी। कहेगा—इस तरह अपने आपको टालकर क्या समझदारी करेगी मिन्नी ?

वह लौटी। सिंगार टेबल के सामने जा बैठी। अजित ने बीड़ी सुलगाकर बात फिर उसी सिरे से जोड़ दी थी, जहां से टूटी, 'मैं मजाक नही कर रहा था मिन्नी।'

वह मुड़ी। हौले-हौले गाल सहलाती हुई···

'आखिर कुछ न कुछ तो सोचना ही होगा तुझे ?···जो बीत चुका, वह तो बीत गया···पर आगे ?'

वह नकली हंसी हंसी—'हंह् !' फिर पूछा, 'इस बीतने को तू छोटी-मोटी बात समझ रहा है क्या ?···ऐसा तो है नही कि बदन पर एक घाव लगा था—भर गया। कुछ दिनों में निशान भी गायब !···जो कुछ कर चुकी हूं या हो चुका है, उसका न तो निशान जायेगा···और घाव भी भर पाना कठिन !'

एक पल के लिए अजित निरुत्तर हो रहा। शायद ठीक ही कह रही है। आखिर कैसे भूल सकेगी ?···और कोई उसे स्वीकारेगा भी क्यों ? किन्तु जो है, उससे समझौता किए हुए चलाये जाना भी कहा तक ठीक ?··· कितनी जिन्दगी तो पड़ी है। कहा, 'तो इस घाव और निशान को लिए हुए ही सारी जिन्दगी बैठी रहेगी तू—क्यों ?'

'हां !' उसने जवाब दिया था।

'आसान है ?' अजित ने पूछा।

'नही है।'

'जब जानती है तब भी···'

'हा···' वह फिर बोली, 'जानती हूं, इसीलिए बैठी रहूंगी।'

'क्या मतलब ?'

'मतलब यह कि दूसरी कोई जिन्दगी शुरू करना भी तो आसान नही होगा ?'

'क्यों नही होगा ?'

'कौन करेगा मुझसे शादी ? सब तो जानते है कि मैं घाटपाडे के यहा जा चुकी हू।'

दुनिया में सब कुछ बुरा ही नही है मिन्नी, कुछ अच्छा भी है।'

'किस किताब में पढ़ आया तू ये बात ?' वह सहसा तल्ख हो उठी।

'मुझे मालूम है···सब बुरा नही है।'

'क्या जो मुझसे शादी करेगा, उसे मालूम न होगा ? मैं बुरी तरह बदनाम हू। मुझे मालूम है।'

'फिर भी कुछ भले लोग हैं···और यह भी कहां जरूरी है कि जो मिले, उसे मालूम हो हो ?'

'और बाद में उसे मालूम हुआ—तब ?'

'तब क्या, ऐसी बातो का कोई सुबूत होता है क्या ? उसे चुप रहना होगा।'

'मगर मैं चुप नहीं रहूंगी !'

'तू खुद उससे कह देगी ?' अजित हैरान हो गया। कैसी मूर्ख है ?

'हा।' वह बोली, 'न कहूंगी तो जिन्दगी शुरू करके भी कर नहीं पाऊंगी। मुझे यह भी मालूम है।' वह जोर-जोर से बाल खीचने लगी थी।

'तू कुछ अजीब ही बातें करती है।' अजित बुझ गया।

वह फिर से लापरवाह हंसी मे हसी थी, 'बातें तो तू अजीब-सी कर रहा है।'

'इसमे अजीब क्या है ?'

'क्यो अजीब क्यो नही है ?' उसने सवाल पर सवाल दागा, 'कही रंडियां भी शादी करती हैं ?'

'क्या बकती है !'

'ठीक ही तो कह रही हू।'

अजित चुप हो गया। धक्का खाया हुआ।

वह बोली थी, 'इस बारे मे सोचना ही बेकार है !···'

'तू निराश हो गयी है। दुनिया मे ऐसे लोगभी हैं; जिन्होंने सचाई को परखा है। उसका साथ दिया है।'

'तूने देखे है वो लोग ? ···' उसने तीखी आवाज में पूछा।

'···'

'बोल ?' वह हसी थी—'ये सब किताबिया बातें है। आदमी कविता नही हैं अजित।'

पर अजित अपने तर्क पर कायम। उसका विश्वास नही टूटा है जीवन से। अपने आप से भी नही। कहा, 'तू मानती नही है, पर यह सच है। दिखने को तो भगवान भी किसने देखा है, पर सब जानते-मानते हैं कि वह है। जरूर है।' अजित मिन्नी की अटैची से अपने कपड़े निकालने लगा

था। वह तैयार हो चुकी है। अब निकलना होगा…

'चल, तेरी ही बात मान ली।…अब तू एक बात का जवाब दे दे।'

'क्या?'

'तू कर सकता है मुझसे शादी?…यह जानने के बाद…कर सकता है?' उसने लगभग चीखकर सवाल कर दिया था।

अजित स्तब्ध हो गया। हाथ थम गये। बिलकुल पत्थर। लगा था कि सारे कमरे में आवाज गूंजने लगी है। जैसे मन्दिर के किसी गोल गुम्बद में शब्द अपने आप दोहराने लगते हैं। 'तू कर सकता है?…'

वह हंस पड़ी थी, 'अब क्या हुआ? बोल!'

'अगर तू बहस में कुतर्क करके अपनी बात मनवाना चाहती है तो माने लेता हूं।' कहकर अजित बाथरूम मे समा गया था…ऐसे जैसे भागा हो। वह पत्थर मार रही हो और अजित अपने को बचाने के लिए भागा हो…

बाथरूम का दरवाजा बन्द करके देर तक कपड़े थामे हुए चुपचाप खड़ा रहा था अजित। गुम्बद में शब्द अब भी गूज रहे है! अजित को लगा था कि वह कई-कई थप्पड़ खा गया है। वह हंस रही है…हंसे जा रही है…

शायद सच ही कह रही थी वह। इतनी लम्बी-चौड़ी बातें करने वाला अजित क्यो चुप रह गया? उसके अपने ही आदर्शों को कैसे उसने फूंक मारकर हवा में उड़ा दिया। बातें करना बहुत आसान होता है…

अजित ने जबड़े कस लिये। अपने से ही बुदबुदा उठा था—'कर सकता हूं, क्यों नही कर सकता? समझती क्या है मुझे?…'

'सच?'

और वह अपने से ही चुप हो गया। चुपचाप कपड़े टांगकर शावर खोल लिया था उसने। नहाने लगा…पर महसूस ही नहीं हो रहा था कि नहा रहा है। इसके विपरीत लग रहा था कि मिन्नी उस पर थूक रही है। इतना थूक रही है कि वह उसमें लिसड रहा है…लिसड़ता ही जा रहा है…

बुरी तरह झकझोर डाला था उसने। सिर्फ झकझोरा ही या अपमानित

कर दिया ?

अजित कर सकता है शादी ?···मिन्नी के जिस्म पर जाने कितने-कितने अजनबी हाथ चिपके हुए हैं···होंठों पर गोविल के गलीज होंठ···सारा जिस्म जैसे छाप की तरह दूसरे-दूसरे आदमियों के स्पर्शों से भरा है। उस मिन्नी को अजित या कोई और पत्नी बना सकता है ? है साहस ?···भूल सकता है उन स्पर्शों को ?···अनदेखा कर सकता है उन हाथों को ? ठीक ही तो कहा था उसने—'···आसान नहीं है !'

बेशक आसान नहीं है ! अजित को भी लगा था।

पर अजित का बहुत अपमान किया है उसने। अजित के ही धारदार चाकू को अजित की आंतों में समो दिया है। आदर्श का धारदार चाकू !···क्या मिन्नी नहीं समझ गयी थी कि अजित उसकी बात से घरा उठा है ? अजित के लिए ही उसका मन घिन से भर उठा होगा ! ढोंगी ! उसमें और सारस्वात में फर्क ही क्या है ? मानसिकता से नंगा होना, कपड़ों से नग्न होने की तुलना में कहीं ज्यादा घिनौना है। और अजित वही साबित हुआ। अपने चुप, या कतरा जाने से यही साबित कर दिया अजित ने।

जैसे-तैसे नहाकर वापस लौट आया था वह। मिन्नी से नजरें मिलाने का साहस नहीं हो रहा था। बात करना दरकिनार।

लगता है कि हर बार उसकी तरफ देखती है और चिकोटी भर लेती है अजित के मुलायम आदर्शों पर···

बाल पोंछकर जब वह तैयार हो चुका था, तब जी हुआ था कह दे—'हां ! ··मैं तुमसे शादी करने को तैयार हूं। अब बोल, तू क्या कहती है ?···'

अजित को सोचकर सन्तोष मिला, पर कहा नहीं। छोटी-मोटी बात नहीं है। कहीं पढ़ा है कि भावुकता बहुत बड़ा दोष है। अजित भावुकता नहीं करेगा।

वे घूमने चल पड़े थे। अजित ने वह विशेष दुकान खोज निकाली थी। जाकर दवाइयां ली थीं। याद है अजित को···सक्सेना की चिट्ठी लेकर वह दुकानदार बड़ी चोर नजरों से मिन्नी की ओर देखता रहा था···होंठों पर अजब-सी मुसकान थी···व्यंग !···लगता था कह रहा है—

'क्या दाम है तेरा ?'

अजित का मन खराब हो गया था। फिल्म देखी, खाना खाया, ताज-महल घूमे···फिर रात करीब बारह बजे लौटे थे दोनों। मिन्नी एकदम से बिस्तरे पर लेट रही थी। बुदबुदायी—'बहुत थक गये !···'

अजित ने मुंह-हाथ धोये। बीड़ी सुलगाकर चुपचाप बैठ गया।

उसने पूछा, 'मैं तो सोऊंगी।' करवट बदल ली। बड़बड़ायी, 'लाइट में मुझे नींद नहीं आती। यह बुरी आदत पड़ी है।'

अजित ने बीड़ी फेंकी। मसल दी। फिर लाइट बुझाकर उसके करीब लेट रहा। गुम्बद की तरह शब्द अब भी दिमाग़ में घूम रहे थे—'···तू कर सकता है ?'

'हां-हां, कर सकता हूं !···मैं जो सोचता हूं, वह कर भी सकता हूं !'

लगा था कि वह अपने पर ही हंस रहा है। जोर-जोर से।

वह अन्धेरे में बुदबुदायी—'मेरा तो जी हुआ था कि वहीं ताजमहल में ही लेट जाऊं··कैसा लगता होगा जब उसके बनने के बाद सुनसान रातों में शाहजहां वहां बैठा रहता होगा। सब तरफ सफेद···आसमान से बरसती सफेदी···धरती पर बिखरती सफेदी···प्यार में हारे-थके सपनों की सफेदी···सब कुछ शान्त, पर किस कदर उबलता हुआ ?' वह जैसे कविता गुनगुना रही थी···

'मिन्नी ?' अजित ने बहुत गंभीर, भारी आवाज में कहा था।

'हूं ?···'

'तूने पूछा था ना सुबह कि मैं तुझसे शादी कर सकता हूं क्या ?'

'क्या हुआ तुझे ?' वह करवट बदलकर अजित से लगभग सट गयी। फिर कुछ परे हुई।

'कुछ नहीं।' वह बोला था, 'तुझे जवाब चाहिए ना ?'

'अरे, वह बात अब भी दिमाग में रखे हुए है तू ?' मिन्नी ने लापरवाही से कहा था, 'मैं तो यूं ही बोली थी।'

'पर मैंने जो कुछ कहा था, यूं ही नहीं कहा था।' अजित ने उसी गंभीरता और भारीपन में कहा, 'मैं तुझसे शादी करने को तैयार हूं। बोल,

अब क्या कहती है तू ?'

वह जोर से हंस पड़ी थी, हसी में ही बड़बड़ाती गयी—'अरे तू तो सचमुच ही पागल है। ऐसा कही होता है ?'

गुस्से मे भरकर अजित एकदम मुड़ा था—'मैं पागल नही हूं। ठीक कह रहा हूं। मैं तुझसे शादी कर सकता हूं।···जिस सबको लेकर तू इस क़दर काम्प्लेक्स फील करती है, मुझे अपने विचारों में कोई काम्प्लेक्स नही है !···मैं करूंगा शादी।' सहसा उसने मिन्नी को क्यों, किस आवेश में, किस कारण अपने करीब, एकदम सीने से समेट लिया था···उसे खुद ही समझ नहीं आया।

वह सटी रह गयी थी उससे। चुप।

अजित की बाहें एक पल के लिए ढीली हुई थी, सहसा फिर कस गयी थी। 'ओह अजीत ! प्लीज़ !···' वह सिर्फ इतना ही बुदबुदायी···

तेज बारिश के बावजूद उस सुबह दोनों ने ही महसूस किया था—तेज़, थका देने वाली गरमी है !

वे चुप रहे थे। अपने में ही उबलते-भुनते हुए। एक दूसरे से बोर ! अजित को लग रहा था कि वह सक्सेना या गोविल से अलग कहा रहा ? ···मिन्नी की लिस्ट में तीसरा नाम ! छि. !···

और अजित को वह अच्छी नही लगी थी। जाने क्यों, सुबह के साथ ही वह अच्छी नही लगी। उसका साथ, उसकी उपस्थिति, उसके साथ आना, हॉटल मे थमना और···सब ! कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। किस भावुकता में कह गया था अजित ? अपने पर ही विश्वास नहीं हो रहा। अपनी ही बात बुरी लग रही है।

वह इस कदर ऊब महसूस करने लगा था कि यदा-कदा मिन्नी के उठनेवाले सवाल-जवाब पर सिर्फ 'हू-हां' ही करता। उसमे भी इतनी विरक्ति, इतनी नीरसता और इस कदर उपेक्षा कि बात शुरू होकर भी शुरू नही हो पाती।

वे लौट आये थे। वरामदे में मिन्नी ने अटैची से कपड़े निकालकर उसके थैले में डाल दिये थे। वह एक औपचारिक-सी मुसकान फेंककर इस तरह चल पड़ा था, जैसे मिन्नी से परिचय ही नही है।

क्या वह भी मतलवी हो गया है !···क्या हुआ उसके वायदे का !··· अव उसका अपना संवाद है, जो गुम्बद की तरह गूंज-गूंज कर उसे ही आहत कर जाता है। सीढ़िया उतरते समय सहसा ही मिन्नी ने कहा था—'अजित, सुन ?'

'हू ?'

वह उसे टकटकी बांधे देखती रही थी और जब अजित उसकी ओर नही देख सका था तो वह एकदम से हंसकर बोली थी—'एक बात बतलाऊ तुझे ?'

'हा ?'

वह दो सीढ़ियां उतरकर उसके करीब आ खड़ी हुई। फुसफुसाकर कहा था—'मैं तुझसे शादी नही करना चाहती !'

अजित ने महसूस किया था कि वह लुढकता हुआ सीढ़ियो से नीचे जा गिरा है—चित !

वह बोली थी—'मैं जानती हू कि तू डर गया है···पर बेकार !··· भला नशे में कही गयी वात को भी कोई सीरियसली लेता है ?···' अजित बोल सके, इसके पूर्व ही तेजी से मुड़कर वह सीढ़िया चढ़ गयी थी।

अजित चल पड़ा था। क्या सचमुच चल पा रहा था ?

बुरी तरह उखड़ चुका था।

घर पहुचकर इस तरह लेट गया था, जैसे हजार, दो हजार मील पैदल चल आया हो। जी होता है कि शीशे में अपना चेहरा देखे और उस पर थूके !···जब जानता था कि वह सब नही कर सकता, तब कहने की क्या जरूरत थी ? वह सोचने लगा था। इस तरह चुपचाप आया था कि केशर मां या वटनिया—किसी को भी कुछ मालूम नही।

सोचा था वैसी बात कहकर उसे छोटी कर देगा···पर अपना ही थूका चाटना पड़ गया ! वह अजित की असलियत भी समझ गयी थी, उसका झूट भी। अजित के लोटते-लौटते बड़ी शालीनता से उसने थप्पड़ भी मार दिया।

अपमान और ग्लानि से अजित छटपटा उठा था। लगा था कि मिन्नी से आख नही मिला सकेगा। कैसी अजीब स्थिति ? जिस लड़की को दो टके की कहता-समझता था, अब उसी के सामने उसे अपना टकापन महसूस होगा !···अपना घटियापन !

कैसे हस रही होगी मन मे ? ··उसी तरह, जिस तरह नगे, बेशर्म सक्सेना और झूठे बुद्धिमान गोविल पर हंसती होगी !···ठीक तो है। हंसना ही चाहिए !···असल में नग्नता मिन्नी की नही उभरी, उभर गयी है उन सबके पौरुष की, जो सामाजिक रूप से पर्दगी का बुर्का ओढ़े रहते हैं !

सफर की तेज़ थकान के बावजूद पलकें मूदने का मन नहीं। कितनं आराम से आती थी नीद ? केशर मां से झगड़ पड़ने पर भी अजित नीद ले लिया करता था। कड़की का अहसास भी उसकी नीद पर हावी नही हो पाता था। बेकारी की उलझन भी उसे इस क़दर व्यग्र और पीड़ित नही करती···पर यह पीड़ा ही अजीब ! अहसास इतना ताकतवर कि लगता है सारा जिस्म उघड़ गया है। कही किसी ठौर टिकने की जगह नही। जिस जगह से बदन आराम करना चाहेगा, वही जगह मांस का उघड़ा हुआ लोथड़ा बनी होगी !

यहीं कुछ सोच रहा था कि बटनिया की आवाज़ ने चौंकाया, 'अरे, आ गया तू ?'

चिढ़कर उसने देखा था बटनिया को। कुछ गुरगुराकर कहा था—'क्यों, दिखता नही है क्या तुझे ?'

वह बुझ गयी। जिस उत्साह से पूछा था, लगा कि एकदम मर गया है। ऐसे जैसे तनी हुई पतंग पानी में जा गिरी हो !···एकदम बेदम ! वह सहमी-सहमी, अपरिचित नजरो से देखने लगी थी अजित को।

अजित ने अपने को थामा। यह क्या कर रहा है ? क्या अपनी कुंठा

के कारण वह हर सामनेवाले को अकारण ही 'टीज़' करने लगेगा ?··· ऐसा क्या कह दिया था बटनिया ने, जिस पर वह इस कदर गुर्राया ?··· एकदम जानवर ! ज़रा विवेक नही !

वह लौटने लगी थी···

अजित ने क्षमा मागते स्वर में पुकारा था उसे, 'बटनिया ?'

वह मुड़ी। रुआंसी होकर।

'गुस्सा हो गयी ?'

'नही।' उसने जाहिर कर दिया था कि सचमुच वहुत, वहुत गुस्सा है।

'मैं वहुत थक गया हूं ना, इसीलिए चिढ गया।' अजित लगभग क्षमा मागने लगा था।

वह जैसे पल भर में सहज हो ली। भला गुस्सा इस तरह धुल सकता है ? अजित ने हैरत से उसका चेहरा देखा था। रुई के फाहे की तरह हल्की होकर पूछने लगी थी—'चाय बनाऊ तेरे लिए ?'

'बना दे।'

वह एकदम चली गयी।

अजीब है यह लड़की। अजित उसे लेकर उलझ गया था। पल-पल समर्पिता। कभी अजित के लिए, कभी केशर मां के लिए और कभी अपने धूर्त भाई-भाभी के लिए···न कभी घर से बाहर जाती है, न ले जायी जाती है। मशीन की तरह सारे दिन खट्-खट् चलती रहने के बाद भी खुश है। अजित को कभी-कभी विस्मय होता है। हर छल, कपट को प्यार के दो बोलों से भुला देने की ऐसी असीम शक्ति पा जाना सहज है क्या ?··· और अजित को बटनिया के साथ किया गया छल भी याद हो आया है। जिसे अपनी बुद्धिमानी समझकर मन ही मन अजित खुश हो लेता है—वह बुद्धिमानी पाप के तीव्र अहसास की तरह बार-बार क्यों कुरेदती है ? जबकि बटनिया उस सबको भूल चुकी होगी !···नो दिन बीतेंगे और इस तरह भूल जायेगी जैसे तेल का निशान पड़ गया था कपडे पर !···धुलते-धुलते गुम गया।

पर अजित कभी नही भूल सकेगा !···एक ही कर्म ! कहते हैं कि

साधारण नदियों में वह सामर्थ्य नही, जो गंगा में है? इसीलिए तो वह गगा है!···बटनिया एकदम गंगा है! अजित—उसके सामने एक गन्दले पोखर से अधिक कुछ भी नहीं!

मिन्नी, बटनिया···और आगे पता नही कौन-कौन। स्त्री या पुरुष। अजित का जीवन ढेर-ढेर गन्दगियां बटोरे हुए चलता जायेगा—चलता जायेगा वह अपने लिए ही ग्लानि का तीव्र और तीव्रतर अहसास करता जा रहा है···

वह चाय ले आयी थी। अजित चुपचाप चाय पीने लगा।

वह सन्दूक पर बैठ गई थी। अजित को देखती हुई···सहसा बोली—'तुझे मालूम है, यहा क्या गड़बड़ हुई?'

'क्या?'

'अम्मा ने मोठे को बुलवाया था···'

चौक पडा अजित, 'क्यों?'

अजित को देखा, फिर नजरें झुकाली। बोली, 'मुहल्ले में वह तुझे बदनाम करता घूम रहा था ना, इसलिए?···खूब डाटा!···'

'डांटा?···' अजित को खुशी हुई—कभी-कभी केशर मा भी बड़ी समझदारी से काम करती हैं। पूछा, 'क्या बोली?'

'बस, कहा कि जिसे लेकर तू बकता फिरता है उसी को तू अपना दोस्त भी कहता है—सरम नही आती तुझे?' बटनिया इस टोन में बतला रही थी जैसे वही डांट रही हो मोठे बुआ को।

'पर बका क्या था उसने?'

'बहुत बुरी बात!···मैं तो मान ही नही सकती कि तू ऐसा है?··· पर बाकी सब मान गये।'

'क्या मान गये?'

'सब कह रहे हैं कि अजित बिगड़ गया। मास्टर की मोंड़ी के साथ आगरा घूमने गया था!···' बटनिया ने कहा, फिर खुद ही जैसे जवाब दे लिया—'मैंने तो कह दिया कि चला गया होगा तो इसका मतलब ये ही थोड़ी हुआ?···क्या कोई लड़का-लड़की साथ जाएं तो सिर्फ पाप ही होता है?···'

अजित चुप हो रहा। डरा भी, पर डर प्रकट नहीं होने देगा। यह तो अनुमान कर चुका था, मोठे बुआ ने उसे देखा है तो जरूर बका-धमका होगा। अब बात मोठे से ही करेगा। उससे पहले छोटे से। दोनों मिलकर अच्छी तरह गत बनायेंगे उसे। इतनी कि आगे कभी बकना भूल जाये! कमीना कहीं का!

बटनिया बोली, 'वैसे तू गुस्सा न हो तो मैं एक सलाह दूं?···पढ़ी-लिखी नहीं हूं, पर समाज मे तो रहती ही हूं। बदनामी बुरी चीज होती है अजित। सराप की दुकान पर बैठ के कोई दूध पिये तो लोग सरापी कहने लगें···फिर सराप की दुकान पर बैठो ही क्यों?' बात खतम करके वह अजित को इस तरह देखने लगी जैसे खुश है कि अजित को उसने भी डपट दिया है।

'अब एक बात मैं कहूं तुझसे?' अजित ने चाय का प्याला एक ओर रखा।

'क्या?'

'तूने न तो जिन्दगी में 'सराप' की दुकान देखी होगी, न डेयरी—फालतू अपनी नाक क्यों घुसाती है?'

वह उदास हो गई।

अजित ने घुड़क दिया था उसे, 'ये कप-प्लेट उठा और भाग जा यहां से!'

वह चुपचाप प्याला उठाकर चली गयी।

अजित फिर से लेट रहा। दो पल भी न हुए होंगे कि केशर मां की आवाज आयी थी, 'बुला तो उस मरे को!···अब एक यही करम बचा था सो वह भी पूरा हुआ।···नास हो जाये इसका!'

बुरी तरह चिढ़ने लगा था अजित···जी हुआ था भाग पड़ा हो, तभी बटनिया ने आकर खबर दी थी—'बुला रही हैं···'

अजित ने जबड़े कसकर उसे देखा, फिर इस तरह उठा था जैसे तूफान से सामना करने जा रहा हो। धम्-धम् करता केशर मां के सामने जा खड़ा हुआ था।

पहुंचते ही तय कर लिया था कि बहस नहीं करेगा। खूब, जितना चाहें बोलने देगा उन्हें। जब वह थक जायेंगी तो अपने आप चुप हो रहेंगी··· अजित को सिर्फ खामोश खड़े रहना होगा !

वे बमकती रही थीं···नाम, बदनामी, मुहल्ला, समाज, जाति, कुल···सभी कुछ को अपनी तरह परिभाषित कर दिया था। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर भी खासा तेज-तेज बोली। अंत में रो पड़ी थीं। माथा पीट लिया। पिता का ज़िक्र कर-करके सम्मान की दुहाई दी थी। फिर भाग्य को कोसा। अजित को कुल-कपूत सिद्ध किया !···

मिन्नी को लेकर इससे ज्यादा कुछ नहीं कहा था कि 'ऐसी' तो 'ऐसी' होती ही है। अन्त में आ पहुंची थीं घर की आर्थिक हालत पर। पिछले वैभव का ज़िक्र कर-करके दुखी होती रहीं···अपना जीना-मरना एक बराबर बतला दिया !

अजित चुपचाप चला आया था। वे रोती रहीं···बटनिया धीरज बंधाने पहुंच गयी। अजित घर से बाहर निकल आया। बहुत कुछ सुना, चिढ़ा, दुखी हुआ ··किन्तु इस नतीजे से इनकार नहीं कर सका था कि असली बात बिगड़ी हुई आर्थिक हालत है। अजित को उसे लेकर सोचना होगा···जितनी जल्दी सोच सके—अच्छा होगा !

गली में सुबह जाग चुकी थी···और सुबह के साथ ही डेयरी से दूध के भरे लोटे, बाल्टी या गिलास ले जाते मर्द-औरतें और बच्चे···बारिश में जैसे इखरी-बिखरी चीटियां कतारबन्द होकर चलने की कोशिशें करती हैं, कुछ विपरीत भी चलती हैं···वैसी ही कोशिश हर सुबह इस डेयरी पर होती है···भागवती याद हो आयी। टोपनदास को देखने का मन हुआ। ब्याह किया है तो कुछ तो सम्हाल चुका होगा अपने को। बाड़े की तरफ मुड़ गया।

टोपनदास हमेशा की तरह चबूतरे पर एक गन्दी दरी डाले बैठा है। उतने ही गन्दे कपड़े। अजित का मन खराब हो गया। सामने बाल्टियों में

उफनता ताज़ा दूध···मक्खियों के भिनभिनाते छत्ते। टोपन पर भी उसी तरह झिमटी पड़ रही है, जिस तरह दूध भरी बाल्टियों पर। एकदम अनहायजनिक माहौल !···ये कार्पोरेशन वाले इस क़दर बोगस हैं कि कोई कार्रवाई ही नहीं करते ! ऐसी डेयरियां और ऐसे गन्दे लोग इन्सानी सेहत के सबसे बड़े दुश्मन हैं। डेयरियों पर ताले डाल देने चाहिएं और टोपन जैसे गन्दे लोगों को हवालात में डालना चाहिए !···कितनी बीमारियां फैलाते होंगे ये लोग ?

सुरगो, उसकी बच्चियां, कम्पाउन्डर शामलाल बाल्टियों और तसलों में गोबर ढो रहे हैं। यह भी कुछ नया नहीं। सबके चेहरों पर थकन और उदासियां···सुरगो की तमाम साड़ी गन्दगी से कहीं ज्यादा गोबर से बिगड़ी हुई है···भैंसों की लातों, भिनकती मक्खियों और फटकती पूछों के बीच से मौका पाकर गोबर निकालना होता है। इस सफ़ाई से कि छूट न जाये। एक दिन के पूरे बाड़े का गोबर टोपनदास चार रुपये के भाव से बेचता है। अब यह भाग पर है कि चार सौ कंडे का माल निकल आये या दो सौ का !···पर घाटा दोनों में ही नहीं है। बने कंडे रुपये के बीस बिकते हैं···

अजित मुड़ा। भागवती दिख जाती तो अच्छा होता। उसे किस हाल में रख रहा है टोपन ने ?···

सुरगो करीब से थका चेहरा लिए गुजरी। माथे पर पसीना, कपाल पर गोबर का बोझिल तसला। एक हाथ से तसला सम्हालती और दूसरे से आंचल से नाक सुड़कती-पोंछती हुई। अजित के सामने से गुजरते हुए बड़बड़ाती गयी थी—'क्यों लाला, सुना है खूब घूमे आगरा ?'

अजित गुस्सा चबाकर रह गया। स्साला मोठे !···इसकी तो वह खबर लूंगा कि बस। बुरी तरह बदनाम कर डाला।

मन हुआ था कि सुरगो से झगड़ पड़े। पर बेकार। कुछ कहेगा और बात ज्यादा ही खिंचेगी। चल पड़ा।

मोठे और छोटे बुआ रेशमा के मन्दिर की चबूतरी पर बैठे हैं··· अजित का मन हुआ था कि एकदम भनक पड़े। चीखे—'तुझे शर्म नहीं आती मोठे···क्या-क्या बका है तूने ?' पर मौका नहीं मिला। मौका

एकदम दूसरा है।

एक ओर बैठी है रेशमा। उदास, गंभीर चेहरा और उखड़ाव। यह विधवा सौन्दर्य भी अजब-सी कोशिश लिए हुए है अपने भीतर। अजित को अच्छा लगता है, पर किसी भी बार इस सौन्दर्य ने उसके भीतर अतिरिक्त भाव नहीं जागने दिया है!···याद रखना होता है कि रेशमा एक पवित्र औरत है!···उससे कहीं ज्यादा दुर्भाग्यग्रस्ता! या तो सहानुभूति जागती है, या फिर श्रद्धा!

शंकरराव बैंजापुरकर और अनसूयाबाई गर्दन झुकाये हुए बैठे हैं। रेशमा कहती है—'ज्यादा कुछ तो कहूंगी नहीं काकी, बस तुम इन्हीं भगवान की पिण्डी पर हाथ लगाकर कह दो कि यह सब तुमने या काकाजी ने नहीं किया!···'

'क्या?' अजित आगे बढ़ आया है।

उसे मोठे, छोटे, बैंजापुरकर और अनसूया सिर्फ घूरकर देखते हैं।

'देख रेशमा!···हमको भी अपना स्वर्ग-नर्क देखना है। क्या-अ्···? ब्राह्मण हैं। हमको भगवानजी की पिन्डी काए को छूने का? वइसेच बोल सकते है। देवता का छत्र-सिंगार लेके हमको कोई नरक में जाने का है क्या?'

'पन् ये स्मरण रखने का। नरक में ओईच् जायेंगा जो हम सेवा-पूजा करनेवाले ब्राह्मण लोक को ऐसा लांछन देगा?···' बंडू के बापू ने राय पेश की है।

इसका मतलब है कि हो गया कोई घोटाला!

'अब तुम बैठे हो मोठे भइया। न्याय कर दो!···' रेशमा बेबस होकर कहती है। 'नरक-सुरग यहीं भोगता है आदमी। मैं रांड़ होकर नरक भोग रही हूं···पर नरक तो वे भी भोग रहे हैं जो भगवान से भी चोरी करते नहीं चूकते!···ज्यादा तो नहीं कहती, मैं गरीब हूं, चुप रह जाऊंगी, पर इसका दंड तुम्हें भोगना पड़ेगा काकी!···राम-राम··· तुमसे तो शूद्र ही भले!'

मोठे बुआ चुप हैं। गंभीर भी, चिन्तित भी।

'बोलो?···' रेशमा उसे कुरेदती है, 'तुम जो कहोगे, सो मान लूंगी!

रही गलती की वात तो अभी बात चार जनों में ही है। वह जगह बतला दो जहां चांदी वाला छत्तर है। जैसे भी होगा दे-ले के उठा लाऊंगी। बात भीतर ही रहेगी !···मन्दिर में ही बैठे हो। वह सब देखता है! बोल दो सच-सच ?'

अजित ने अनुमान लगाया है, इसका मतलब है कि बैंजापुरकर और अनसूया ने भगवान के साथ ही घोटाला कर डाला है !···शायद छत्र बदल दिया है···सब कुछ भूलकर पूछ बैठा है—'क्या हुआ रेशमा भाभी ?'

रेशमा एकदम से रो पड़ती है—'अब क्या कहूं अजित भइया ? इत्ते भरोसे से इन काकी को अपने घर में रखा, भगवान सौंपे, पर कैसा ईमान है इन लोगों का ? सिवरातरी को दिया चांदी का छत्तर बदलवा लाए !··· असल चांदी का था। उसकी जगह नकल आ गया। ताम्बे पर पालिस हो रही है चांदी की। वही डिजाइन !···'

'झूठ बात है !' एकदम बिगड़ पड़ता है बैंजापुरकर। जोर-जोर से माथे पर रखे शिव का मस्सा खुजलाने लगा है।

'झूठ बात है तो खाओ ना सौगन्ध ?···खाओ !' एकदम बिफर पड़ी है रेशमा, 'ये देवता बैठे हैं सामने। अरे, मन्दिर में बैठके झूठ बोलोगे तो अगले जनम सूअर की जौनि मिलेगी—हां-अ् !···'

'सूअर ओई बनेगा रेशमा जो झूटी-मूटी बात करेगा !··· ब्राह्मण का वचन है—देखना तेरे बदन से कोढ़ फूटेगा ! हां !···' अनसूयाई बहकने लगी है।

'ठीक है, जो ही सही। मैं झूठी तो मेरे कोढ़ फूटेगा, तुम झूठे और चोर तो तुम्हारा सत्यानास होगा ! मेरे जैसी ही नाठ हो जाएगी !···'

'देख !···अपनी जीभी पे काबू रख रेशमा !···' बैंजापुरकर गुस्से में एकदम उठ पड़ता है, कांपने लगा है। आवाज इतनी तेज हो गयी है कि आसपास से एक-दो लोग इकट्ठा हो जाते हैं। मोठे बुआ एकदम बोल पड़ता है—'चीखने का नही !···ऐसे तमाशा भी नही करने का ! तुम्ही बसून जा काका साहेब !···' वह बैंजापुरकर से कहता है, फिर घबराकर एकत्र हो गए लोगों की ओर मुड़ता है—'क्या देखते हो तुम लोग ?···इदर कोई सिनेमा होता है क्या ? रंडी नाचती है—ऐं ? काम से लगो अपने-अपने !'

लोग मुंह बिसूरकर सरकने लगे है।

अजित को लगता है—बोलना चाहिए! बोलना पड़ेगा। दो सीढ़ी चढकर रेशमा और वैंजापुरकर के करीब जा बैठा है—लगभग बीच मे। धीमी आवाज मे कहता है—'चीखने-चिल्लाने से बेकार बदनामी ही होगी वैंजापुरकर काका!···लोग मजा लेंगे। बैठ के तसल्ली से मामला खत्म करो।'

'मामला तो खतम ही है अजित भइया!···' रेशमा की बड़बड़ाहट, 'ये वह जगह बतला दें, जहां ये सब काम हुआ है। मैं खुद तुम्हें और मोठे भइया को लेकर चली जाऊंगी। असल ले आऊंगी। लग जायें दस-बीस रुपये और क्या!···समझूंगी गंगा नहायी!'

'पर यह तो कह रहे हैं कि इन्होने ऐसा किया ही नही···'अजित बुद-बुदाता है। कैसे हल होगी समस्या?···वैंजापुरकर दम्पती साफ मुकर रहे है। सबूत भी कोई नही है।

'किया कैसे नही?···'वह' नही रहे, पर उनकी हर चीज मुझे मालूम है।' रेशमा बड़बड़ाती है, 'असल चांदी का था!···मैंने खुद इन्हे हाथ से दिया···पर क्या मालूम था कि ये भगवान को भी नही चूकेंगे!···राम-राम!···सरम भी नही आयी इन्हें!'

'चुपकर नाइन!' अनसूया चिल्लायी है।

'मैं तो हूं ही नाइन!'

वे फिर चीखने लगे है।

मोठे बुआ एकदम भनकता है, 'चुप हो जाओ।'

वे चुप हो जाते हैं। पर रुआसे।

अजित कहता है—'काका, हर्ज क्या है अगर रेशमा भाभी को भगवान की सौगन्ध उठाने से तसल्ली होती है तो उठालो!···लगाओ पिन्डी से हाथ! मिनट में बात साफ हो जाएगी!'

'पर जब हम लोक ने सच्ची बात बोल दिया है अजित, फिर काहे को ये ढोंग करने का!···' अनसूया बाई जैसे गिड़गिड़ाने लगी है। अजित देख रहा है। उसकी पुतलियों में भय समाया हुआ है।

जरूर इन लोगों ने घोटाला किया है!···न करें तो करें भी क्या?

भगवान है या नहीं—सच नहीं। पर रोटी है, भूख है, जरूरत है और हैं ये वैंजापुरकर, अनसूयाबाई···बेचारा वन्डू !···इनके सच को कैसे झुठला सकते थे वे ? मर वैठे होंगे। अजित को गुस्सा भी आता है, सहानुभूति भी होती है।

'मोठे आणि अजित !···' सहसा शंकरराव गंभीर, रोवदार आवाज बटोरकर कहता है—'इस बाई ने भोत बोल दिया अपुन को ! चालिस साल की उमर हुई हमारी, पन ऐसा किसीका हिम्मत नहीं हुआ···खैर, ये रांड-बेवा औरत है। इसको हम कुछ बोल नहीं सकते, पन ये साप-साप बोलते हैं तुम लोकों को। अब हम लोक बात नई करेंगे। इसके जो समझ में आए सो करे !···इसके घर में च् रैना पाप है ! किसको भी छोड़ देंगे !' इसके बाद वैंजापुरकर किसी के उत्तर की परवाह नहीं करता। एकदम उठ पड़ता है, 'उठने का अनसूया !···इदर वईठनाच् पाप !···'

सहसा दोनों उठकर चल पड़ते हैं। सब स्तब्ध। रेशमा कहती है—'जाओ !···चले जाओ, पर महल्लेवाले मर नहीं गये हैं। मैं भी कोई ऐसी-वैसी नहीं हूं। अगर तुम्हारे टेंटुए में हाथ डालकर भगवान का छत्तर नहीं निकाल लिया तो कहना !···पंचायत करवाऊंगी। देखती हूं कैसे बचोगे ?'

वे सुनते ही नहीं, चले जाते हैं। रेशमा गालियां बकती रहती है·· सहसा रो पड़ती है—'देख लिया, अजित लाला ?···मोठे भइया, देखा पाप ?···एक तो चोरी की, उस पर मुझे ही चार भली-बुरी सुना गए हैं !···पर मैं भी छोड़ूंगी नहीं ! घर जाकर माथा पीटूंगी, कहूंगी कि न्याय दिलाओ !···कांगरेस आ गयी, पर इसका मतलब यह नहीं है कि भगवान मर गया !' वह भी उठ पड़ी है···

उन्हें भी उठना चाहिए। उठते हैं। चुप।

वह चली जाती है। चीखती, बड़बड़ाती। वे एक एक-दूसरे को चुप, ठहरी निगाहों से देखते हैं। सहसा अजित कहता है, 'मुझको तुमसे ये उम्मीद नहीं थी मोठे ? बुरी बात है ! जात-पांत की भावना ने क्या इन्सानियत भी मार डाली ?···थू !'

'क्या बोला तू ?' मोठे बुआ एकदम बिगड़ता है।

'मैं बोला कि तू बड़ी ऊंची-ऊंची बातें करता है, पर है घटिया !··· वैजापुरकर के मामले में क्यों चुप साधा तूने ? इसलिए ना कि वह महाराष्ट्रीयन है ?···तेरी ही तरह इकडे-तिकडे है ?···उस बेचारी के साथ ज्यादती हुई है और तू आवाज नहीं निकाल पा रहा है ?'

'देख—देख पंडीत !···बोलता हूं तेरे को—चुप हो जा !···हो जा चुप !' मोठे एकदम से असन्तुलित हो उठता है। लगता है कि किसीने हंटर जड़ दिया है उसे। शायद अहसास भी होता है। अजित कम बोला हो, पर बोला सच है।

'अरे जा-अ् !···' अजित भी भन्नाकर जवाब देता है, 'ऐसे दादागीरी का रोब किसी और पर जमाना। मैं अजित हूं···समझा !···तेरी राई-रत्ती औकात जानता हूं। बेईमान कहीं का !' अजित उसे धिक्कारता चला जाता है।

'ऐय् ···!' कहकर मोठे आवेश में अजित के गिरहबान की ओर बढ़ता है। सहसा छोटे बुआ बीच में आ जाता है। बड़े भाई का हाथ थाम लेता है। कहता है—'किसको जोर काए को बतलाते हो ?···ओ ठीक बोलताय !'

'छोटे !···' मोठे बुआ एकदम से भाई पर भिनक पड़ा है—* 'फालतू चडबड़ कशाला करतो तू-एँ ?···तुला माहीत नाही काय ? हा टागड़ा पंडीत स्साला सगड्या महाराष्ट्रीयन लोकाना शिव्या दे तो ?···अय ?

'हा महाराष्ट्रीयन लोकाना शिव्या नाही देऊन राहिला ! ···' छोटे

---

* 'फालतू बक-बक क्यों करता है तू ? तुझे मालूम नहीं क्या ? ये स्साला गंवार पंडित, सारे महाराष्ट्रीयनों को गाली दे रहा है ?'

'ये महाराष्ट्रीयनों को गाली नहीं दे रहा है। तुम्हारी मनोवृत्ति पर कटाक्ष कर रहा है। तुमने न्याय का साथ नहीं दिया !'

'क्या कोई प्रमाण है ?'

'नहीं।'

'फिर मैं क्या कर सकता हूं—बोल ?'

'रेशमा कह रही थी कि उसे भगवान की सौगन्ध चाहिए !···वही उसका सन्तोष। तुम चुप क्यों रहे ? बोलो ?'

'मैं तुम जैसे पागलों से बहस नहीं करना चाहता !'

बुआ उतनी ही तेज आवाज में जवाब देता है—'हा तुमची मनोवृत्ति वर कटाक्ष करतो !···तुम्ही न्याय-पक्ष घेतलाच नाही ?'

'काही प्रमाण आहे का ?'

'नाही !···'

'तर मी काय कर शकतो ? सांग ?'

'रेशमा म्हणत होती कि तिला देव-ची शपथ पाहिजे···तो-च् त्याच्या समाधान !' छोटे बुआ ने तर्क किया था, 'तुम्ही कशाला चुप राहिले ?··· म्हाणा ?'

निरुत्तर हो गया है मोठे बुआ। कहता है—'मी तुमच्या सारखा वेला मानुषां बरोबर विवाद नाहीं करते !···' फिर वह चल पड़ता है।

दोनों खड़े रह गए हैं। चुप।

'स्साला फालतू में अकड़ता है।' अजित अचानक बड़बड़ाने लगा था··· 'दादा है तो सच बात क्यों नहीं कहता ?'

'मैं तुमसे बात नहीं करना चाहता !' छोटे बुआ भुनक पड़ा है— 'तू स्साले बिगड़ता जा रहा है !···आवारा लौंडियों के साथ आगरा घूमता है तू ?···सब लोक कहते है अजित बिगड़ गया !'

'तू भी समझता है मैं बिगड़ गया—क्यों ?'

'हां, मै भी !'

'तो जा भाड़ में।' अजित आगे बढ़ गया है।

आज का दिन ही खराब !···सुबह से ही कुछ ऐसा हुआ है कि हर मामले में गड़बड़ हो रही है। अजित बढ़ता जा रहा है। मालूम नहीं किस-का मुंह देखा था ?···ट्रेन में था अजित। भीड़ में किसे देखा—याद नहीं। अजित को लगता है कि ये मुंह देखना जरूर कुछ न कुछ होता है। केशर मां को कई-कई बार कहते सुना है—'सुबह-सवेरे किसी-किसी का चेहरा देखो तो फलता है। खुशी-खुशी की खबरें मिलती है दिन भर···और कई चेहरे ऐसे अभागे होते हैं कि बस ! दिख गये तो दिन हो गया खराब ! किसी के मरने की खबर मिलेगी, कोई कलेस होगा, कोई नुक्सान···'

अजित शुरू में हंसता था, पर लगता है कि कुछ न कुछ होता है। सुबह किसी का ठीक चहरा देखना होगा।

वैजापुरकर बहुत कमीना है !···बेचारी विधवा की श्रद्धा को ही बेच आया ?···अगले ही पल लगता है—गलत !···कारण वैजापुरकर नहीं है। न है अश्रद्धा या उसकी कमीनगी। जन्म से तो ऐसा आदमी रहा नहीं होगा। कम-से-कम शंकर राव वैसा नहीं करता था, पर जब से उसका काम छूटा है, तब से यह सब करने लगा। उम्र ऐसी है कि कोई काम करने लायक रहा नहीं। बचपन से महाराज के मन्दिर में काम करता था। उससे पहले उसका बाप करता था···पर रियासतें चली गयीं। महाराज ने पुजारियों में भी कटौती करदी। पीढ़ियों से लगे शंकरराव का आसरा टूट गया···घन्टी हिलाने के सिवाय और कुछ सीखा नहीं, अब बेकारी में और करेगा भी क्या ?···

इस चक्कर में बन्डू को भी नहीं पढ़ाया-लिखाया। सोचता रहा होगा कि वह भी पुश्तैनी काम पर जायेगा। पर पुश्तैनी नाम की चीज ही नहीं रही···और एक शंकरराव के साथ ही ऐसा हुआ हो—ऐसा तो नहीं है ? सबके साथ हुआ है। अजित की पुश्तैनी जमींदारी टूट गयी है···जमींदारी के साथ साथ पुश्तैनी काम करते आये लोग छूट गये हैं···छोटे बुआ-मोठे बुआ की पुश्तैनी जागीरदारी चली गयी। उनके साथ-साथ भी बहुत-से लोगों का पुश्तैनी काम गया। वैष्णवी सीतालाबाई का पति पाडेंजी सरदार मराठे के घोड़े की मालिश पर लगा हुआ था···उससे पहले उसका बाप लगा था···पर जगीरदारी गयी, घोड़ा गया, मालिश वाला उसके साथ ही पुश्तैनी काम से गया। अब चालीस साल की अधेड़ उम्र में काम के लिए यहा-वहा भटक रहा है। घोड़े की मालिश के अलावा ठीक से कुछ सीखा नहीं। बहुत कुछ टूट गया है···

और नया कुछ सामने नहीं। जो है, कहते हैं—कागजों में है। अजित ने उस दिन अखबार में पढा था—नेहरू जी ने कहा था—दुनिया के साथ-साथ कदम बढाने के लिए देश का औद्योगीकरण किया जायेगा। नयी मशीनें आयेंगी, फैक्टरियां लगेंगी। खेत आधुनिक तरीकों से होंगे। पम्प होंगे ट्रैक्टर होंगे···मशीनें ही मशीनें। जिस काम में दस हाथ लगते थे, एक मशीन कर दिया करेगी ! तरक्की हो जायेगी देश की। ऐसी ही बहुत सी बातें ··

इस भाषण को लेकर कलम. बनर्जी से अजित की अच्छी-खासी झड़प हो गयी थी। अजित बोला था—'ट्रैक्टर, पम्प, मशीनें आने के बाद उन किसानों का क्या होगा, जो हल जोतने, पानी देने या और-और कामों में काम आते थे? वे कैसे खायेंगे? उनका तो धन्धा खा जायेंगे ये ट्रैक्टर-पम्प?'

'धन्धा क्यों खायेंगे?' कलम बनर्जी ने जवाब दिया था, 'सीधा-सा हिसाब है। वे ट्रैक्टर चलायेंगे, पम्प चलायेंगे...'

'पर ट्रैक्टर तो एक-दो आदमी चलायेंगे, हलों के साथ कई जोड़ी बैल भी पलते थे, आदमी भी। एक पम्प मिनटों में खेत सींच डाला करेगा... कम-से-कम पचीस आदमी की रोजी खा जायेगा!...क्या तुक है इसकी? उन पच्चीस का क्या होगा?'

'क्यों, काम कम है क्या देश में?...वे सरकार से कर्ज ले लेंगे, खेत मिल जायेंगे। मजदूरी करते-करते पीढ़ियां बीत-रीत गयी थी उनकी। अब वे खुद मालिक बनेंगे। भले ही छोटी-छोटी धरतियों के क्यों न बनें?'

'पर पहले उन्हें मालिक बनाना चाहिए, न कि सीधे ट्रैक्टर लाकर उनके सामने बेकारी खड़ी कर देनी चाहिए?'

'तू क्या समझता है यार, नेहरू जी ने यह सब सोचा-समझा ही नहीं होगा?' कलम बनर्जी ने एक ऐसा अमोघ अस्त्र उपयोग किया था कि अजित बेकार हो गया। लाजवाब। कलम बोला था—'तुमसे-मुझसे तो ज्यादा ही अकल है उन लोगों के पास, जो मिनिस्टर हैं, या राज चला रहे हैं, राजनीति करते हैं...?'

अजित एक पल के लिए चुप हो रहा था, पर समाधान नहीं हो पाता था। किसी बार नहीं हुआ है। बुदबुदाकर चुप हो गया—'ठीक है। देखते हैं...'

इतने दिन तो हो गये, सब तरफ सिर्फ उखड़ाव ही उखड़ाव दीख रहा है...आजादी क्या आयी है, सब तरफ एक किस्म का अन्धड़ फैल गया है। तिनके की तरह आदमी, उसकी कल्पनाएं, इच्छाएं, भविष्य सब उड़े जा रहे हैं...किसी को पता नहीं, कौन किधर जायेगा?...बस, उड़े जा रहे हैं!

लगता है कि ऐसे तिनके बनकर रह गये हैं सब !···वे सब, जो एक व्यवस्था से उखड़कर किसी दूसरी व्यवस्था की खोज में चल पड़े हैं। अजित को लगता है—अच्छा होता कि पहली व्यवस्था के सफाये से पहले दूसरी व्यवस्था पैदा करदी गयी होती !···

मगर व्यवस्था है। प्रजातन्त्र, समाजवाद···और उससे भी आगे संविधान। इन सबने एक व्यवस्था ही तो दी है। पर वह है कागज में। और जब तक कागज में है, तब तक बैजापुरकर हो, चाहे सरदार मराठे। अजित हो या पांडेजी—इसी तरह अन्धड में उड़ते रहेंगे। निरुद्देश्य, निर्भविष्य !

अजित महाराजवाड़े आ गया था। जब-जब महाराजवाड़े आता है, इसी तरह दुनिया भर की बातों में उलझ जाता है। यह उलझाव ही तो दिखाता है महाराजवाड़ा ··वह महाराजा जयाजीराव के स्टैच्यू की सीढ़ियों पर मूंगफली खाता हुआ बैठ रहता है···कभी सिनेमा के बोर्ड देखता हुआ, कभी बिजली के पोल पर लगा किसी पार्टी का झंडा, घोषणा, सूचनापट्ट देखता हुआ या कभी उखड़े, बिखरे, बदहवास चेहरों की आपाधापी और चिंता की सलवटें देखता हुआ !

यदा-कदा उस जैसे कमउम्र लोगों के बीच भी वह खीझ बहस बनकर शुरू होती है। बहस या छटपटाहट।···कुछ कर पाने की इच्छा और न कर पाने की लाचारी के बीच छटपटाहट···!

'यह सब कब तक चलेगा ?' कोई पूछता है।

'तब तक, जब तक कि हम पूरी तरह नहीं बदलते।' किसी का जवाब होता है, 'यह जाति-पांति, ढोंग-धतूरे, सामन्ती मन और निष्क्रियता नहीं टूटती—तब तक कुछ नहीं होगा !'

'इस सबके लिए किया ही क्या जा रहा है जो हो ?' किसी का असन्तोष।

'मारे-मारे तो फिर रहे हैं कांग्रेसी नेता ?···आजादी से पहले जेल जाते रहे, अब दर-दर निवेदन करते घूमते हैं—'भगवान के लिए अपने आपको बदलो !' और हम लोग हैं कि मजाल है टस से मस हो जायें ?'

अजित हंसता है। एक चिढ़ी हुई, तकलीफदेह हंसी—कौन घूम रहा है दर? दर?···वे ही ना जो जेल गये थे?···जिनके परिवारों ने तबाही झेली, गोलियां खायी? सिर्फ वे! और राज कौन कर रहे हैं—वे, जो चोरी या ब्लेकमार्कट में जेल गये थे? वे, जो फिरंगी के ज़माने में क्रांतिकारियों की जासूसी किया करते थे?···वे नयी व्यवस्था देंगे? वे देंगे सिर्फ जहर! समाजी, राजनीतिक और धार्मिक!···और कुछ नही!

'बहुत जल्दी बहुत कुछ बदलना चाहते हो भाई?' करीब बैठे किसी अपरिचित चेहरे का तर्क। अजित देखता है, कांग्रेसी लगते हैं। नही होंगे तो है किसी पार्टी के ही आदमी। खद्दर लदा हुआ है सर से पैरों तक। कहते है—'दो सौ साल गुलाम रहे हो, सब कुछ बिखर चुका। उसे समेटने के लिए दस साल भी नही दोगे?···'

सबको इस तर्क के सामने चुप हो जाना पड़ता है। सीधा-सीधा गणित है। चुप होना ही पड़ेगा!··

मगर ये गणित सिर्फ देश के भूगोल और राजनीति पर ही लागू हो··ऐसा तो नही है? व्यक्ति, व्यक्ति, समूचे जीवन और, घर-घर पर लागू है। सब हिसाब से चलते हैं···सीधे-सीधे करोड़ों के आकड़ों पर जाने से पहले अजित को दो, तीन या चार अंकों का अपना गणित देखना होगा। वही जरूरी।

इसी जरूरी में खोयी हुई सारी गली। दो, तीन या चार अंकों का गणित! सुरजो की पाटौर का गणित, सहोद्रा के बच्चे का गणित, सिरीपालसिंह की विधवा रात का गणित, रेशमा के स्वर्ग का गणित, बैंजापुरकर के बन्डू का गणित, मोठे बुआ के रोब-दाब का गणित, श्यामलाल के पलाश (तीन पत्तों) का गणित, या सुनहरी के भविष्य का गणित! इन गणितो से जुड़े रहना ही ठीक होगा ··यही कहीं अजित का गणित भी जुड़ा है!

भला जिन्दगी शुरू कर रहे किस छात्र मे साहस है कि सीधा विश्वविद्यालयीन हिसाबों मे जीना शुरू कर दे?···उससे पहले जरूरी होता है प्रायमरी का हिसाब! जोड़-बाकी, गुणा-भाग, सच!

अजित सहसा ही संक्षिप्त हो जाया करता था। अपने फैलते डैनों को

समेट लेता। समेटकर छोटी सी गली के संसार में समा जाता। कच्चे-पक्के सकरे घरौंदों के बीच !

यही से सीखना है गणित···

जितना सीखा था, यही से सीखा···

पहले पाठशाला ! उसे पार किये विना, जीवन-कथा का अगला सोपान असंभव !

पांच

'···इतना मुझे तो मिन्नी ने ही बतला दिया था रे !···' जया मौसी ने कहा था—'बतला नही सकी थी तो सिर्फ वह, जो बाद में हुआ। कहती थी कि मैंने कभी सोचा ही नहीं था मौसी, घर-ससार बसा लूगी···या बसाना है ? पर जाने क्या हो गया था मुझे···इसके आगे बोल ही नही सकी कम्बख्त !···' जया मौसी का गला भर्रा आया था, आसू उनके पाउडर पुते चेहरे पर लकीरें खींचते बहने लगे है···

और क्या सिर्फ जया मौसी के गालों पर ही आये हैं ये आसू ?···ऐसे जाने कितने आंसू अजित के पास भी है। वही···मिन्नी की अगली कहानी को लेकर। पर अजित ने बहने नही दिया है उन्हें। उस समय भी नही बहने दिया था···लगता कि धारें बनकर उसके सीने पर भीतर कही खिचे हुए है···

वैसी ही धब्बेदार धारें, जैसी पाउडरवाले चेहरो पर उभरती हैं···फर्क यही है कि जया मौसी ने चेहरे पर पाउडर मल रखा था, और अजित ने दिल के भीतर···बहुत ज्यादा व्यावहारिक, संसारिक बननेवाले लोग ऐसे ही मन के भीतर पाउडर मले रहते हैं···अपने-दूसरे, सबके पुण्य-पापो का लेखा-जोखा करते हुए आसू उनके भीतर फूटते हैं, बहते है और हमेशा-हमेशा के लिए धारें छोड़ जाते है।

ये धारें अजित के भीतर भी हैं···अव्यक्त, चुप और अमिट धारें ! कभी न मिटनेवाले निशान।

जया मौसी अभी या सुबह के साथ अपने चेहरे की इन धारों को मिटा

सोचे गया था···

फिल्म नही देखा सका था पूरी। बस, लगता था कि कुछ कर डाले! अजब-सी खलबली मे भर उठा वह।

फिल्म खत्म हुई तो एकदम नही गया। उन्हें देखना होगा। कहां जाते हैं, क्या करते है? फिर कभी मिन्नी को अकेली पाकर एकदम से उसके मुंह पर थूक देगा! कहेगा—'तू मुझे चाहे जितनी भावुक कहानियां सुना दे!···पर मैं इस नतीजे पर पहुच चुका हूं कि तू रंडी ही है!···'

उस अपरिचित आदमी के दांये-बांये, दोनों ही हाथों में, अंगूठियां देखी थी अजित ने। पैसेवाला आसामी है।

दोनों निकले। सड़क से ही विपरीत दिशा में विदा हो गये थे। अजित दूर खड़ा देखता रहा था। उनकी नजर न पड़े इस तरह, फिर मिन्नी अकेली ही तेजी से चल पड़ी थी···अजित जल्दी-जल्दी लपक पड़ा था उसकी ओर···भूल ही गया था कि वह मिन्नी से कतराता है। कई महीनों तक कतराता ही रहा है···

एकदम पास आ गया था उसके, 'मिन्नी?'

वह थमी, चौंककर मुड़ी। अजित को देखकर कुछ सहज हो गयी। हंसकर बोली—'मैं तो बिलकुल ही घबरा गयी? रात मे···ऐसे कौन···?'

अजित उसके साथ हो लिया, 'सचमुच?' कड़वाहट से कहा था उसने, 'सचमुच घबरा गयी थी तू?'

'और नही तो? घबराने की बात नही है···इस सड़क पर कितनी गुन्डागर्दी है—क्या तुझे मालूम नही? इस पूरे रोड पर सिनेमाघर ही सिनेमाघर भरे हुए हैं···' वह चलने लगी। पहले की तरह तेजी नही थी चाल में। आश्वस्त हो गयी है शायद। साथ मिल गया।

अजित जैसे मन, दिमाग सभी में एक कड़वाहट महसूस कर रहा था—वही उगलेगा। पूछा, 'गुन्डों से तुझे डर लगता है?'

'क्यों, लगेगा नही?' उसने चकित होकर कहा था—'गुन्डो से कौन नही डरता?'

'तुझे तो नही डरना चाहिए।' अजित बोला।

'क्यों?' वह गंभीर हो गयी।

'तुझ जैसी औरतों का समाज ही कहां अलग है उनसे ?···डर लगे शरीफ लोगों को !'

मिन्नी थमी, ठिठकी, मुसकराई फिर चल पड़ी। कहा, 'यानी सक्सेना गोविल और तू—गुन्डों के समाज में है—क्यों ?'

भन्ना गया अजित, 'बक मत ! · मैं अभी-अभी देख चुका हूं। तू किसी आवारे के साथ फिल्म में घुसी थी।'

वह सहसा गंभीर हो गयी। एक मिनिट अजित को इस तरह देखा था जैसे थप्पड़ मार देगी, फिर चुप हो गयी। चल पडी।

'कौन था वह ?' अजित ने एकदम पूछ लिया था।

मिन्नी ने आहत होकर पूछा, 'किस अधिकार से पूछ रहा है तू ?'

अजित सकपका गया। अधिकार ?···क्या उत्तर देगा ? सच ही तो मिन्नी से किस अधिकार से पूछ-जान सकता है वह ? एकाएक बोल नहीं सका तो मिन्नी ने कहा था, 'ठीक है, बतलाये देती हू। उसका नाम है—करनामल पंजवानी। रेलवे मे गोदाम क्लर्क है।'

'···और तू माल की तरह उसके गोदाम चली गयी है—क्यो ?'

वह हंस पड़ी—'तू हमेशा ही एक तरह क्यों सोचता है अजित ?'

'और क्या सोचू ?'

'एक बात बतलाऊं तुझे ?'

'क्या ?'

'तूने कहा था ना कि दुनिया में सही आदमी मिल सकते है···मैंने उस समय माना नहीं था, पर अब लगता है कि तूने ठीक कहा था। करनो वैसा ही है शायद।' उसकी आवाज में चाशनी जैसी चिपचिपाहट आ गयी थी।

अजित चुप। अब पूछने को क्या रहा ? क्या इसके बाद भी व्यर्थ चिल्लाने-बौखलाने की जरूरत है। सहसा गड़बड़ाती आवाज में पूछने लगा था अजित, 'तो···तो तू उसके साथ शादी करनेवाली है ?'

'अभी तय नहीं किया, पर···उसने जरूर कहा है।'

अजित एक पल खामोश चलता रहा। गश्त के ताजिए वाला इलाका पार करके दौलतगंज में आ गये थे वे। अजित यू ही संकरी सड़क के दाये-

बांये बोर्ड देखता गया था। दस बज गये होंगे शायद···अचानक फिर से सवाल घुमड़ आया था उसके भीतर, 'यानी तेरे मन में शादी की बात पैदा हो गयी है ?'

'हां।' उसने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया था, 'ठीक हुआ ना ?'

'ठीक है।' अजित ने सन्तुष्ट होकर कहा, पर जाने क्यों उसे कन्नो का चेहरा अच्छा नहीं लगा था। पहली बार देखते ही मन हुआ था कि पीटे !···क्यों पीटे ? कारण नहीं। पर ऐसा हुआ। अक्सर हो जाता है। कुछ चेहरे, अकारण ही क्रोध से भर देते है। मन होने लगता है कि बस टूट पड़ो। क्यों होता है ? इसका तर्क कभी ढूंढा नहीं है अजित ने। एक बार छोटे बुआ से कहा था—'यार, मेरा मन किसी-किसी आदमी को देखकर अचानक होता है कि इसे पीट डालो !···खूब ! इतना कि स्साले को अधमरा कर दो।'

हंसा था छोटे, 'अच्छा ?···तो तेरा मन भी होता है ?'

'तेरा भी होता है क्या ?'

'हां, होता है। कभी-कभी किसी से मिलो—अच्छी तरिया मिलो। वो बेचारा भी ठीक से मिलेंगा, हंसेगा, बात करेंगा पन अपना मन होयेंगा कि मारो स्साले को !'

'बिलकुल ठीक !···' अजित ने खुश होते हुए कहा था, 'एकदम ऐसा ही। ऐसा ही मेरे साथ होता है। कोई बिचारा अपना कुछ न बिगाड़े, पहली बार मिले, पर दिल करता है कि एकदम गुस्सा हो जाओ ! भीतर से गुस्सा हो भी जाता हूं।'

दोनों चुप हो रहे थे। शायद अपने-अपने भीतर कारण खोजते हुए।

अजित ने थोड़ी देर बाद फिर पूछा था, 'क्यों होता है ऐसा ?'

'पत्ता नईं।' छोटे ने गंभीर होकर कहा था, 'मुझे तो लगता है कि जिसका अपना कोई पिछाड़ी के जनम का लेना-देना होता होयेंगा !··· जिसने कभी अपने को पिछले जनम में मारा होयेंगा, तो इस जनम में बदला लेने को दिल करता है !'

जवाब देकर वह खुद से समाधान पा गया था। आश्वस्त। अजित एकदम से हंस पड़ा था। उसने चौंककर पूछा, 'क्या हुआ तेरे को ?'

'अबे, ये कई जनमों का उधारी खाता होता है क्या ?···चूतिया !'

'तू-तू स्साले 'कमूनिस्ट' है !' छोटे बुआ नफरत से बोला था, फिर इस तरह नाक सिकोड़ी थी, जैसे अजित बदबू मार रहा हो ? पर अजित ने परवाह नहीं की। बराबर सोचता रहा था कि क्यों होता है ऐसा ?···जरूर कोई-न-कोई कारण तो होना ही चाहिए। होता भी होगा···

कन्नो को देखकर भी उसे ऐसा ही लगा था। एकदम गुस्सा हो गया था। मिन्नी उससे शादी करने जा रही है ?···अजित को अच्छा नहीं लगा था। पर बुरा भी क्यों लगना चाहिए ? उसने अपने को डपट लिया था। अजित एक पागलपन में गिरफ्तार होकर बेमतलब ही किसी पर गुस्सा होता है और उसे नापसन्द भी करता है। इसका मतलब यह तो नहीं कि वह खराब आदमी हुआ ?

मिन्नी ने कहा था—'अभी मैं कुछ तय नहीं कर पा रही हूं।'

'जल्दी में करना भी नहीं चाहिए।' जाने क्यों—न चाहकर भी कन्नो के प्रति अपने भीतर के बेतुके गुस्से पर काबू नहीं रख सका था वह।

वे चुपचाप चलते गए। दही मंडी का इलाका। अब घर ज्यादा दूर नहीं है। एक गली का मोड़ और अपनी गली शुरू।

'मैंने उसे सब कुछ बतला दिया है···' मिन्नी बुदबुदायी थी, 'कह दिया है कि यह सब जानने के बाद भी अगर वह अपने दिमाग़ में शादी सोच सकता है तो सोचे !'

अजित हैरत में आ गया ! बतला दिया है ? जरूर बतला दिया होगा। उस दिन भी कह रही थी बिना बतलाए बात नहीं कर सकेगी। पर वह स्साला कन्नो ?···अजित फिर से गुस्से में भर उठा। अपने को थामा। बेकार !···उसे इस पागलपन पर काबू करना चाहिए ! जिस आदमी को लेकर इस क़दर बिगड़ रहा है, अकारण चिढ़ रहा है, वह उसकी तुलना में कितना भला आदमी होगा, जिसने सब कुछ जानकर भी मिन्नी से शादी का प्रस्ताव किया है ? पर लगा था कि ज्यादा ही सोच गया। शादी की बात शायद उसने पहले की होगी, फिर मिन्नी के असलियत बतलाने पर चुप होकर सोचने लगा होगा कि वह भी 'लाइन में लग' जाए। अजित ने सवाल कर दिया था—'यह शादी की बात उसने तेरे बतलाने से पहले की

या बाद में ?'

'पहले भी और सब कुछ सुन लेने के बाद भी।'

'कमाल है !' वह बड़बड़ाने लगा था।

'क्यों, कमाल कैसा ? तूने खुद ही तो माना था कि ऐसे लोग कम हैं—लाखों में कोई एक होगा—पर हैं।'

'हां-अ्...शायद !'

'इस शायद पर ही मैं भी सोच रही हूं।' मिन्नी ने जवाब दिया था—'एकदम मन नही मानता अजित। कल को कोई गड़बड़ हुई तो बेकार ही...'

'यह करता क्या है ?'

'कहा ना गोदाम में क्लर्क है।'

'मिन्नी...पूछना तो नहीं चाहिए, पर...मुझे काफी पैसे वाला लग रहा था...मोटी-मोटी सोने की अंगूठियां, गले में लाकिट...'

'वह अपनी घरवाली के नाम रेलवे के छुटपुट ठेके लेता रहता है...'

अजित को धक्का लगा, 'घरवाली ?...पागल तो नहीं है तू ? यह...यह आदमी शादीशुदा है ?'

'हां।' उसकी आवाज शान्त थी।

वे गली में आ चुके थे...अजित ने उतावली से सवाल किया था, 'यह जानकर भी तू उसके साथ शादी करेगी ?...दिमाग तो नहीं फिर गया है तेरा ? सरासर देख रही है कि बासा आदमी है और...फिर भी...'

'मैं कहां ताजी हूं। बोल ?...कहां ताजी हूं मैं ?'

'मगर फिर भी मिन्नी...आखिर ये सौत का चक्कर...वह भी कैसे बैलन्स कर पाएगा...'

'तू कल आयेगा तो सब बतलाऊंगी !...बड़ा चक्कर है इसके पीछे।' कहकर मिन्नी घर की सीढ़ियों की ओर लपक गयी थी।

अजित अपने घर।

वड़े-वड़े और अजीव तर्क दिए ये उसने। पता नहीं कन्नो ने किस तरह, क्या कुछ समझा दिया था उसे? बोली थी—'वह वड़ा दुखी है अजित। एक-दो बार मैं खुद भी उसके घर जाकर देख चुकी हूं···वह औरत कन्नो को पीटती ही नहीं है, बाकी सब करम कर रखे हैं, वेचारे के!'

अजित स्तब्ध हो गया था। मिन्नी उतनी तेज, समझदार होते हुए भी किस तरह अपने आपको इस विचित्र स्थिति के लिए तैयार कर रही है? कितनी तरह तर्क नहीं खोजा था सहमति का? क्या मिन्नी एक ही घर में रहेगी! कन्नो की पहली पत्नी के साथ? और क्या वह मिन्नी को आमत्र अधिकार दे सकेगा, जिस तरह के अधिकार की प्यास एक पत्नी को होती है?···

लगता था कि सब कुछ असंभव है!···

असंभव है—फिर भी मिन्नी धीमे-धीमे ही सही—कन्नो के इस बेहूदा प्रस्ताव के प्रति रजामन्द होती जा रही है? आश्चर्य!···

अर्से तक वह उलझा रह गया था। वह भी उलझी हुई थी। लगा था कि एक-न-एक दिन इस खयाल को दिमाग से निकाल ही डालेगी मिन्नी! हर तरह तो वेतुका और असंभव है!

सारे मुहल्ले में कन्नो को पहचाना जाने लगा था। मोठे बुआ कहता—'यह नया टाका फंसाया है किसने!···पन, जानती नहीं है स्साली, कि ये सिन्धी लोग वड़ा चीसड़ होता है। हर चीज से नामा निकालने का जो फन इस जातवालों को मालूम है—किसीको नहीं।···'

अजित को अच्छा नहीं लगता, पर सुनना होता था। मिन्नी ने ही जो राह बनादी है? सुनना होता!···मन बुझ जाता। कभी-कभी अनचाहे ही बहस भी करना पड़ता था। नहीं चाहता था, पर अनजाने ही मिन्नी का पक्षधर बन जाता। कहा था—'मिन्नी की शादी में भी तुम सिन्धी जाति की नामा प्रवृत्ति ढूंढ़ रहे हो?···अजीव बात है!'

'बिलकुल अजीब बात नहीं है। एकदम खरोखर बात है।' मोठे ने जवाब दिया था, 'तू जानता ही नहीं है पंडीत!···इस जात को तू जानता ही नहीं है। पन मैं समझ गया हू स्सालों को!···बड़ी गुनी जात है यार!··· बच्चों के खाने की मीठी गोली से लेके मिट्टी तक से पैसा चूस निकालते

हैं !···मिन्नी पर ऊपर-नीचे हाथ फेरेंगे अन् झर्-झर् पैसा निकाल लेंगे ?···'

मोठे बुआ अपने ही तर्क पर हंसा था !···सन्तुष्ट होकर। अजित ने कुढ़कर कहा था—'तेरे दिमाग में कभी किसीके लिए अच्छी बात आयी है, जो आज ही आएगी ?···तू हर जगह कालिख ही कालिख देखता है !'

मोठे ने सहजता से उत्तर दिया था—'जमाना घूमता हूं। इसलिए अच्छी तरिया जानता हूं कि सब बगल कालिख ही कालिख है !···'

'तेरे दिमाग़ मे ही कालिख है !' चिढकर चला गया था अजित।

'अबे दिमाग़ मे तो तेरे भी कालिख ही है···' पीछे से मोठे की हंसी सुनी थी उसने। अजित आहत हुआ था। इसके बावजूद असहमत नही। सच ही तो कहता है। अजित हमेशा ही अपने तर्कों में जीता रहता है। शरत और प्रेमचन्द के उपन्यास पढ़कर आदमी के भीतर का सत् ढूंढ लेता है, पर यह सत् जिन्दगी मे तो किसी जगह नही दिखा ?···सबने लिखा है कि सत्-असत् का संघर्ष होता है। देर-अबेर सत् की विजय भी होती है। कहा होती है ?···किसके मामले मे हुई है ?

लगता था कि ढेर-ढेर लोग दिमाग मे उभर आए है। उनमे सत् की विजय ढूंढता है अजित। मास्साब, मिन्नी, बैजापुरकर, शामलाल, सुकुल जमनाप्रसाद की घरवाली सुनहरी, वैष्णवी, खुद अजित···कहा, किसने अपने सत् को विजयी पाया है ? हर बार घोट जरूर लिया है। न सिर्फ घोंटा है, बल्कि सार्वजनिक रूप से इस सत् की हत्या भी करने लगे है। रेशमा की पंचायत गवाह है !

शिव-छत्र को लेकर रेशमा सारे दिन घर-घर घूमी थी···हर देहरी पर पाप-पुण्य का रोना रोया, अपने राड-बेवा होने की दुहाई दी। कहा था, 'शाम को इकट्ठे होकर उसका न्याय करादें !···'

शामलाल की घरवाली सुरगो ने उसका साथ दिया था। बाद मे पता लगा था कि साथ का कारण अनसूयाबाई बैजापुरकर द्वारा सुरगो-

वाने के लिए दिया गया था। बाद में पाया गया कि उसकी जगह ताम्बे का छत्र लौटा और उस पर चांदी की पालिश है!'

'छत्र कहां है?' एक आवाज उठी। शायद चन्दनसहाय बोला था।

वैंजापुरकर ने अपने पीछे रखी पोटली खोली। छत्र सामने रख दिया था। कहा, 'यह रहा छत्र! ...'

लोग छत्र देखने लगे। हाथोंहाथ सारी भीड़ में घूम गया छत्र...

सहसा बदनसिंह ने टोक दिया था लोगों को, 'अरे रे, जो नहाया-धोया हुआ हो, वही देवता के छत्र से हाथ लगाये!...'

कई बढे हाथ सहमकर थम गये थे। जो छू चुके थे, उनमें से कुछ के चेहरों पर परेशानी उभर आयी थी। शायद नहाये-धोये हुए नही थे वह और छत्र छूने की भूल कर बैठे थे।

फुसफुसाहटें तेज हो रही थीं...

'...तो मामला रेशमा की तरफ से ये है, जबकि शंकरराव कहते हैं कि ऐसी कोई बात नही है। छत्र जैसा था, वैसा ही है...अब फैसला आप लोगों को करना है!' अजित बैठ गया था।

'पंच...?' किसीने कहा, 'पंच तो बनालो!'

'ठहरो-ठहरो!...' बदनसिंह की आवाज आयी थी। सब चौंककर उसे देखने लगे। बदनसिंह खड़ा हो गया। बोला, 'फैसला करने से पहले मामले की तह तो समझ लो!'

'सारी बात सामने तो है।' एक आवाज आयी। शायद शामलाल की। सुरगो ने उसके करीब बैठ, हौले से उसे टहोका दिया, कुछ फुस-फुसायी। शामलाल बड़बड़ाया, 'हां-हां, ठीक है।...पंच बनाओ और फिर वैंजापुरकर से पिन्डी पर हाथ रखवाकर सौगन्ध लो! अभी दूध का दूध पानी का पानी हो लेगा!'

'जरूर-जरूर!' कुछ आवाजें उठीं। फुसफुसाहटें तेज हो गयीं।

'सब होगा। सब होगा! जरा शान्ति रखिए!...' सबको शान्त करता हुआ बदनसिंह बोला था—'सवाल यह है कि छत्र नकली है रेशमा भाभी ये कहती है, जबकि शंकर काका कहते हैं कि छत्र वही है। सबसे पहले छत्र की जांच होनी चाहिए! क्यों, भाइयो?'

'हां-हां !···'

वदर्नसिंह ने मुसकराकर मोठे बुआ की ओर देखा था, फिर चेहरा मोड लिया, 'और आप लोगों को ये जानकर आश्चर्य होगा कि धोखा रेशमा भाभी को हुआ है। छत्र चांदी का ही है !···उस पर पालिश नही है। असल है !'

कई चेहरे स्तब्ध हो गये ! रेशमा ने एकदम से घूंघट उलट दिया था, 'क्याअ् ?'

अजित बुरी तरह सिटपिटा गया।

'हा, देख लीजिए !···'वदर्नसिंह ने छत्र की ओर सकेत किया।

वैंजापुरकर मुसकरा रहा था।

मोठे बुआ उठ खड़ा हुआ, 'फालतूच मे स्माला टैम खराब करना !··· ये रेशमा भाभी तो जब से रांड हुई है, इसका दिमाग घूम गया है !'

और एकसाथ कई-कई आवाजें उठी थी—'बिलकुल ठीक !·· छत्र असल चांदी का है !'

'जरा देखू !···' रेशमा को न आचल की परवाह रही थी, न बड़े-बूढों की। घुटनों से उठंग होकर छत्र अपनी ओर खींच लिया था···देखती रही, विस्मय घना और घना होता गया था। सहसा उदास हो गयी थी, लगभग रुआसी। बुदबुदायी थी, 'यह ··यह छत्र वह वाला नही है !···'

'अरे, दिमाग फिर गया है तेरा !···ऐसे कोई खेल हो रहा है कि पहले छत्र ताम्बे का हो जायेगा, फिर चादी का, फिर ताम्बे का !···बावरी कही की !' कोई बडबड़ाया था।

शामलाल ने सुरगो का टहोका फिर से पाया। मिनमिनाकर कहा था, 'हां-हा, ठीक कहा तूने !···' वह जोर से चिल्लाया था, 'भाइयो ! छत्र शंकरराव के पास ही था। वह बदला भी जा सकता है। आखिर पंच-परमेसुरों के सामने अच्छों-अच्छों की हवा खिसकती है !'

कुछ आवाजें उठी। छोटे और अजित भी चिल्लाये थे, 'हा-हां,हो सकता है !,

'नहीं, रेशमा झूठी है !' कुछ आवाजें।

'यह भी तो हो सकता है कि शंकरराव दांव खेल गया हो ! माल

'उसीके हाथ में था। जो चाहे कर सकता था !'

'नहीं !...'

'नहीं !...'

पचायत में एक गड़बड़ी फैल जाती है। अन्त में सरदार मराठे, जो अब तक एक ओर शांत बैठे थे, बाध्य होकर उठते हैं, 'सुनो, शात रहो। शात !...

सब चुप हो जाते है। कुछ फुसफियां।

काका कहते हैं, 'अब तो बात ही खतम हो जाती है। छत्र असल है। सबके सामने रेशमा को समलवादो और कहो कि इसकी-शंकरराव की नही बनती है तो मन्दिर का पूजा-पाठ किसी और को दे दे !...बस !'

'हां-हां, ठीक है !...ठीक है !'

रेशमा चुप हो गयी थी। जड़। फिर जो कुछ हुआ था जड भाव से ही देखती रही थी। छत्र उसे संभलवा दिया था पचायत ने। वैंजापुरकर ने घोषणा करदी थी कि अब इस पाप गृह से निकल जायेगा, जहा ऐसा झूठा लाछन लगा। पापी को भगवान दड देगा और क्या !...

सब उठे, विदा हो गये...

अनसूयाबाई कहती गयी थी—'राड !...खसम पर तो थूकती ही रही, अब भले आदमियो पर भी थूकती है !...बिसको कोढ़ होयेंगा !'

और रेशमा की बोलती बन्द थी !...शायद सोच रही होगी ! ऐसा कैसे हो सकता है ? जिस भगवान के लिए लड़ी थी, उस भगवान ने ही उसे नीचा दिखला दिया ?...लगा था कि भगवान कही है ही नहीं। सब तरफ वैंजापुरकर है, अनसूयाबाई है और है पाप !...

अजित भी अपने आपको धिक्कारता हुआ लौट पडा था। बकवास है 'पाप-पुण्य ! बेचारी रेशमा, जो सच्ची थी, सार्वजनिक रूप से झूठी पड़ गयी, हंसी की पात्र बनी ! अपमानित हुई।

वैंजापुरकर ठाठ से गली मे निकलता है। अनसूयाबाई सुबह-सुबह बेलपत्र लिए हुए संस्कृत श्लोक पढ़ती पीपल तक जाती है...आते में लोटे से जल छिड़कती जाती है राह पर, जाते में भी। पवित्रता को बनाये रखना है !

और रेशमा कई दिनों से घर के बाहर निकलते नहीं देखी गयी है···

अजित ने यह सब देखा है और अब कन्नो-मिन्नी का तमाशा भी देख रहा है! लगता है कि कहीं भगवान है ही नहीं!···जो है, सिर्फ आदमी है। आदमी में भी वही है, जो कन्नो है, मंच पर खड़ा झूठा और लफ्फाज, बेईमान नेता है, मोठे बुआ की तरह सिर तोड़ देनेवाला पुण्यात्मा है ·· सिर्फ आदमी!

जो भगवान है वह वहम! इस वहम को कुछ मूर्खों ने चेहरे भी दे रखे हैं···शिव, राम, विष्णु, कृष्ण···जाने क्या-क्या!

कुछ मूर्ख बन रहे हैं, कुछ बनाये जा रहे हैं···

अजित बुरी तरह चिढ़ने लगा था भगवान से। उन सबसे जो सत् की बात करते, उन सबसे जो रामायण, महाभारत, गीता का नाम लेते!··· सारा महल्ला मानता है कि अजित ब्राह्मण के घर में मानस से शूद्र पैदा हुआ!

छोटे बुआ की राय बनी थी—'कम्यूनिस्ट है स्साला!'

मोठे कहता—'वह न कम्यूनिस्ट है, न कांग्रेसी,!···बदमास! ये पण्डितों की जात ही बड़ी बदमाश होती है!···'

सहसा मिन्नी से सहमत होने लगा था वह। पिछली बहसें बेमानी लगती थीं, जो मिन्नी से कर आया था।

कहा था—'तू पाप करेगी!'

'कैसा?'

'तू औरत है और किसी औरत का घर बरबाद करेगी!···तुझे शान्ति नहीं मिलेगी मिन्नी। भगवान सब देखता है!'

'एक बात बतलायेगा?'

'बोल।'

'तेरा भगवान सिरफ कन्नो की कलहा औरत को ही क्यों देखेगा, मुझे नहीं देखेगा?···वह किसी एक का तो है नहीं। तू ही तो कहता है।'

'वह सिरफ न्याय पक्ष का है।' अजित भीतर से तर्क करता। धर्मा-धर्म, सत्यासत्य, पुण्य-पाप कुछ भी नहीं जानता। सम्बद्ध एक पुस्तक तो दरकिनार एक पंक्ति भी नहीं पढ़ी है, इसके बावजूद उसके भीतर बैठा

'दिन-रात का ब्राह्मणत्व जाग्रत होता है। संस्कार बहुत दूर तक तर्क करने की जन्मजात शक्ति दे देता है।

'मैं और कन्नो अगर ब्याह करेंगे तो न्याय पक्ष सिर्फ कन्नो की ब्याहता का ही तो नहीं होगा?' मिन्नी बहस करने लगती।

'सिर्फ उसका होगा।' अजित कहता। इस तरह जैसे शर्त लगा रहा हो।

'जरा बतला तो—क्यों?' वह पूछती।

'एक तो वह विवाहिता है। उसका कन्नो पर, उसके घरबार, जमीन-जायदाद पर पहला हक है। वह अपने प्यार का बंटवारा क्यों करे?···उसने किसी को तोड़ा नहीं, पर तू उसका अधिकार, जमीन-जायदाद, प्यार सभी कुछ बटवाने जा रही है···पाप तुझे लगेगा। ईश्वर उसका साथ देगा, तेरा नहीं!'

हंस पड़ती मिन्नी, 'ये सब फालतू बातें हैं। ईश्वर कन्नो का भी है। उस बेचारे ने क्या बिगाड़ा था कि वैसी कलहा औरत मिले। कि सुबह से ही बकना शुरू हो जाती है। हर बात पर कलह मचायेगी···उसका जीना-मरना दूभर कर दिया उसने! प्यार की तलाश में भटक रहा है बेचारा। सेक्स नहीं है उसके मन में। उसे प्यार चाहिए!··· इस प्यार के लिए आदमी किस कदर भटकता है क्या तुझे नहीं मालूम?'

'और वह प्यार तू देगी उसे—क्यों?' अजित कुढ़ता।

'हां, वह ऐसा ही कहता है।' मिन्नी जवाब देती, 'कहता है कि चार घड़ी मिन्नी के पास आकर जैसे जिन्दगी पा जाता है वह।···एक बार तो रो ही पड़ा था अजित···' बोलते-बोलते मिन्नी भावुक हो गयी थी। 'कहने लगा था—मिन्नी, मुझे सहारा दे! वरना कसम झूलेलाल की, सुसाइड कर लूंगा!···' एक गहरी सांस ली थी मिन्नी ने, 'बेचारा!'

'पता नहीं, वह बेचारा है या तू!' कहकर अजित चला आया था।

सुनते-सुनते जया मौसी ऊबने लगी थीं···या परेशान हो गयी थीं—

समझ नही सका था अजित। बस, जब अजित ने कहा था—'···पता नही उतनी सुलझी, समझदार मिन्नी भावुक कैसे हो गयी थी मौसी ··मुझे एक दिन शादी का कार्ड मिला था!···' तो बीच में ही बोल पड़ी थी—'तू अगर निरन्तर मिन्नी से उसी तरह मिलता रहा होता—जिस तरह मिला करता था—तो शायद वह सब न होता···'

अजित ने महसूस किया था—दोष थोप रही हैं!···कुछ आहत भी हुआ। आज वह सब घट जाने के बरसों बाद दोष थोप रही हैं! कुछ असंयत होकर बोल पड़ा था—'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः!···मैं तो उसी समय समझ चुका था मौसी, जब मिन्नी ने विवाहित कन्नो से सहानुभूति दर्शायी थी···मैं तो सोच ही नही सकता था कि मिन्नी-जैसी लड़की—जो बहुत कम समय मे ही यथार्थ की ढेर-ढेर कड़वाहटें भोग चुकी थी—इस कदर भावुक हो जायेगी?···प्यार के नाम पर वह इतनी बड़ी भूल करेगी?···'

'तू अब भी यही मानता है कि मिन्नी ने प्यार किया था?···' वह हैरत से पूछने लगी थी।

'हा···कन्नो के प्रति···'

'नही रे! ··वह प्यार नही था—थी सिर्फ प्यार की तलाश!···' जया मौसी ने एक गहरी सास लेकर पलों के लिए आखें मूंद ली थी—'ठीक मेरी तरह प्यार की तलाश ··! असल में रुधती सासों के दौर में जैसे इन्सान किसी एक जीवनदायी सास को ढूंढता है या फिर डूबते हुए में जैसे एक बार पूरी सास लेने की छटपटाहट होती है—कुछ वैसी ही छटपटाहट थी वह!···'

अजित ने बहस की थी—'हो सकता है पर जो लोग सांसों का उखड़ाव सहते है, या डूब रहे होते हैं—क्या उन्हें मालूम नहीं होता कि वे मरनेवाले हैं?···या कि एक तरह मर ही चुके हैं, फिर यह छटपटाहट···?'

'छटपटाहट तो होती ही तब है जब आदमी समझ लेता है कि वह मर रहा है, या मरनेवाला है···' वह बुदबुदायी थी, 'मिन्नी की कहानी मुझसे अलग होकर भी कहां अलग है?···शायद हम दोनों ही अलग-अलग तरह सही, पर उसी छटपटाहट में तड़पे थे···वह अलग तरह मर रही है! मैं

अलग तरह मर रही हूं…'

अजित स्तब्ध रह गया था।…स्तब्ध या निरुत्तर ? निरुत्तर कहना ही ठीक होगा। जया मौसी ने जिस तरह अपने और मिन्नी के गणित को समझा था—शायद कम लोग ही समझ पाते है !…वह सिर्फ देखता रह गया था उन्हें।

वे बुदबुदायी जा रही थी—'…ये जो आदमी है ना—अजीब ही है। जीने की कोशिश करते-करते जब असहाय होकर मरने तक आ पहुंचता है और मोह के लिए कुछ नहीं बचाता, तो फिर मरने से ही मोह करने लगता है…! सुरेश जोशी को नहीं देखा तूने ?…' सहसा हंस पड़ी थी वह…

हंस रही है ?…अजित को धक्का लगा था। हां, शायद हंस ही रही है…अपनी बेबसी पर भी तो आदमी हंसता ही है। कितना निजी रोना होता है यह हंसना ?

'…मर रहा है। या यों समझ कि मर ही चुका है—फिर भी मोह-ग्रस्त है ?…कम्बख्त अपनी ही मौत को प्यार करने लगा है !'

मिन्नी की कहानी से टूटकर अजित अनायास ही जया मौसी से जुड़ गया था। सुरेश जोशी ?…उसकी कहानी भी तो है। पूछना चाहता था—'मौसी, सुरेश आजकल रहते कहां है ?…' पर तभी जैसे नशे या तकलीफ की लहर चीरकर जया मौसी ने सवाल किया था—'…हां, कन्नो और मिन्नी के विवाह का कार्ड तो कहानी का एक पैरा हुआ ना—! आगे ?…'

• • •



रामकुमार भ्रमर

जन्म : 2 फरवरी 1938, ग्वालियर में। आधुनिक उपन्यासकारों में अग्रणी और लोकप्रिय कथाकार भ्रमर जी को रसिक पाठकों और छिद्रान्वेषी समीक्षकों ने समान रूप से स्नेहादर दिया है। युग के यथार्थ की विचारपूर्ण व्याख्या रोचक शैली और सहज प्रवाहपूर्ण भाषा भ्रमरजी की रचनाओं की खास पहचान है। उनके अनेक वृहदाकार उपन्यासों को मुक्तकंठ से सराहा गया है। इसी कड़ी में प्रतीक्षारत प्रेमी पाठकों को अब समर्पित है उनकी यह नवीनतम रचना – 'आंगन गलियां चौबारे'।

भ्रमर जी 1959 से 1965 तक 'युगधर्म' के साहित्य-सम्पादक रहे, फिर 'कादम्बिनी' के सम्पादकीय विभाग में, और आजकल स्वतंत्र लेखन में लगे हैं। दो बार अखिल भारतीय प्रेमचन्द पुरस्कार पा चुके भ्रमरजी की अनेक रचनाओं के अनुवाद देशी-विदेशी भाषाओं में हो चुके हैं। असंख्य पाठक उत्सुकता से इनकी आगामी रचनाओं की प्रतीक्षा ...